ज्ञानपीठ मूर्तिदेवी जैन-ग्रन्थमाला [अपभ्रंश ग्रन्[illegible]]
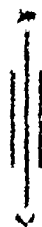
कविराज स्वयम्भूदेव विरचित

पउमचरिउ

[पद्मचरित]

हिन्दी अनुवाद सहित

द्वितीय भाग—अयोध्याकाण्ड

—अनुवादक—

श्री देवेन्द्रकुमार जैन एम० ए०, साहित्याचार्य

भारतीय ज्ञानपीठ काशी

प्रथम आवृत्ति
१००० प्रति

माघ वीर नि० सं० २४८४
वि० सं २०१४
जनवरी १९५८

मूल्य २ रु०

JÑĀNAPĪTH MŪRTIDEVĪ JAIN GRANT[HAMALA]

Apabhransha Grantha No. 2

PAUMCHHRIU

of

KAVIRĀJA SVAYAMBHŪDEVE

Vol. 2

WITH

HINDĪ TRANSL[ATION]

Translated by

Devendra Kumar Jain M. A., Sahityachar[ya]

Published by

Bhāratīya Jñānapītha Kāshī

First Edition
1000 Copies

MAGHA VIR SAMVAT 2484
VIKRAMA SAMVAT 2014
JANUARY 1958

Price

विषय-सूची

इक्कीसवीं संधि

बाईसवीं संधि

तीसवीं सन्धि

इकतीसवीं सन्धि

बत्तीसवीं सन्धि

तैंतीसवीं सन्धि

चौंतीसवीं सन्धि

उनतालीसवीं सन्धि

चालीसवीं सन्धि

[२]

पउमचरिउ

•

पद्मचरित

अयोध्याकाण्ड

इक्कीसवीं सन्धि

[१] एक दिन विभीषणने सागरबुद्धि भट्टारकसे पूछा कि "जयलक्ष्मीके प्रिय, रावणकी विजय, जीवन और राज्य, कितने समय तक अविचल रहेगा।" तब उन्होंने कहा—"सुनो, मैं बताता हूँ, अयोध्याके रघुवंशमें दशरथ नामका मुख्य राजा होगा, उसके दो पुत्र धुरंधर धनुर्धारी, वासुदेव और बलदेव होंगे, राजा जनककी कन्याको लेकर, होनेवाले महायुद्धमें रावण उनके द्वारा मारा जायगा"। यह सुनकर विभीषण एकदम उत्तेजित हो उठा मानो घीका घड़ा आगमें पड़ गया हो। उसने कहा—"लंकाकी बेल न सूखे और रावणका मरण न हो, इसलिए क्यों न मैं, भयभीषण दशरथ और जनकके सिरोंको तुड़वा दूँ"। यह जानकर कलहकारी नारद वर्धमान नगर पहुँचा। उसने दशरथ और जनकसे कहा कि आज विभीषण आयगा और तुम दोनोंके सिर तोड़ देगा। तब, वे दोनों अपनी लेपमयी मूर्ति स्थापित करवा कर वहाँसे चल दिये। विद्याधर आये और उन्हीं लेपमयी मूर्तियोंके सिर काटकर ले गये ॥ १–१० ॥

[२] जनक और दशरथ दोनों ही वहाँसे कौतुकमंगल नगर चले गये, उस नगरमें सूर्यकांतमणिकी आगमें पका हुआ भोजन, विना माँगे ही खानेके लिए मिलता था और चंद्रकांत मणियोंके झरनोंसे पानी। फूलोंसे ढके ऐसे पत्थर सोनेके लिए मिल जाते थे जो नूपुरोंसे झंकृत चरणों और पूजाके कुसुमोंके गिरनेसे सुन्दर हो रहे थे। चन्द्रमा वहाँके प्रासादोंके शिखरोंसे घिसकर टेढ़ा और काला हो गया था। उस नगरका शासक शुभमति था। वैसे ही जैसे सुरपुरका शासक इन्द्र है। उसकी सुन्दरी कुंभस्तनी पृथुश्री रानीसे दो सन्तान उत्पन्न हुईं। उनमेंसे कैकेयीका वर्णन किस प्रकार किया जाय। वह सभी कलाओंके कलापसे संपूर्ण थी। वह ऐसी जान पड़ती थी मानो साक्षात् लक्ष्मीने अवतार लिया हो। जिस प्रकार समुद्रकी महाश्रीके सम्मुख नदियोंके नाना प्रवाह आते हैं उसी प्रकार, उसके स्वयंवरमें हरिवाहन हेमप्रभ प्रभृति अनेक राजा आये ॥१-१०॥

[३] वह, हथिनीपर बैठकर ऐसे निकली मानो महालक्ष्मी ही हो। नरवर-समूहों, मनुष्य, तथा विद्याधर राजाओंके देखते-देखते, उसने दशरथके गलेमें माला ऐसे डाल दी, मानो कमनीय गतिवाली रतिने ही कामदेवके गलेमें माला डाल दी हो। उस अवसर पर हरिवाहन बिगड़ उठा, 'पकड़ो' यह कहकर, वह सेना सहित दौड़ा। वह फिर बोला, "इस राजासे कन्या वैसे ही छीन ले जैसे सर्पसे मणि छीन लिया जाता है।" तब दशरथने अपने ससुर शुभमतिको धीरज बँधाते हुए कहा, "आप ढाढ़स रक्खें। अणरण्णके पुत्र मेरे जीतेजी, कौन इसे चाँप सकता है।" वह रथ पर चढ़ गया—और कैकेयी धुरा पर सारथि बनकर जा बैठी। वह महारथियोंके बीच गया। उसने अपनी नई पत्नीसे

घत्ता

तो वोल्लिज्जइ दसरहेँण 'दूरयर-णिवारिय-रवियरइँ ।
रहु वाहेँवि तहिँ णेहि पियएँ वय-छत्तइँ जेत्थु णिरन्तरइँ ।। ९ ।।

[४]

त णिसुणेँवि परिओसिय-जणए । वाहिउ रहवरु पिहुसिरि-तणए ।। १ ।।
तेण वि सरहिँ परज्जिउ साहणु । भग्गु स-हेमप्पहु हरिवाहणु ।। २ ।।
परिणिय देक्कइ दिण्णु महा-वरु । चवइ अउज्झापुर - परमेसरु ।। ३ ।।
'सुन्दरि मग्गु मग्गु ज रुच्चइ' । सुहमइ-सुयएँ णवेप्पिणु वुच्चइ ।। ४ ।।
'दिण्णु देव पइँ मग्गमि जइयहुँ । णियय-सच्चु पालिज्जइ तइयहुँ' ।। ५ ।।
एम चवन्तइँ धण-कण-सकुलेँ । थियइँ वे वि पुरेँ कउतुकमङ्गलेँ ।। ६ ।।
वहु - वासरेँहिँ अउज्झ पइट्ठइँ । सइ-वासव इव रज्जेँ वइट्ठइँ ।। ७ ।।
सयल- कला - कलाव - सपण्णा । ताम चयारि पुत्त उप्पण्णा ।। ८ ।।

घत्ता

रामचन्दु अपरज्जियहेँ सोमित्ति सुमित्तिहेँ एक्कु जणु ।
भरहु धुरन्धरु केक्कइहेँ सुप्पहहेँ पुत्तु पुणु सत्तुहणु ।। ९ ।।

[५]

एय चयारि पुत्त तहोँ रायहोँ । णाइँ महा- समुद्द महि-भायहोँ ।। १ ।।
णाइँ दन्त गिव्वाण - गइन्दहोँ । णाइँ मणोरह सज्जण-विन्दहोँ ।। २ ।।
जणउ वि मिहिला-णयरेँ पइट्ठउ । समउ विदेहएँ रज्जेँ णिविट्ठउ ।। ३ ।।
ताहँ विहि मि वर-विक्कम-वायउ । भामण्डलु उप्पण्णु स-सीयउ ।। ४ ।।
पुव्व-वइरु सभरेँवि अ - खेवें । दाहिण सेढि हरेँवि णिउ देवें ।। ५ ।।
तहिँ रहणेउरचक्कवाल - पुरेँ । वहल-धवल-छुह - पङ्कापण्डुरेँ ।। ६ ।।
चन्दगइहेँ चन्दुज्जल - वयणहोँ । णन्दणवण-समीवेँ तहोँ सयणहोँ ।। ७ ।।
घत्तिउ पिङ्गलेण अमरिन्दें । पुप्फवइहेँ अल्लविउ णरिन्दे ।। ८ ।।

कहा "प्रिये रथ हाँककर वहाँ ले चलो जहाँ अपने तेजसे सूर्यको हटानेवाले अनेक छत्र और ध्वज है" ॥१-६॥

[४] यह सुनकर, जनोको संतुष्ट करने वाली कैकेयीने रथ हाँका। तब दशरथने भी बाणोसे शत्रु-सेनाको रोककर हेमप्रभु और हरिवाहनको भग्न कर दिया। कैकेयीसे विवाह हो चुकनेपर दशरथने उसे दो महा वर दिये। अयोध्याके अधिपति दशरथने उससे कहा "सुन्दरी माँगो माँगो, जो भी अच्छा लगता हो।" तब शुभमतिकी कन्या कैकेयीने माथा झुकाकर कहा, "देव, जब मै माँगू तब दे देना। तब तक अपने सत्यका पालन करते रहिए।" ऐसा कह सुनकर वे दोनो कुछ दिनो तक धन-धान्यसे व्याप्त कौतुकमंगल नगरमे रहे। फिर बहुत समयके बाद उन्होने अयोध्या नगरीमे प्रवेश किया। वे दोनो इन्द्र और शचीकी तरह राजगद्दी पर बैठे। दशरथ राजाके सकल कलाओसे संपूर्ण चार पुत्र उत्पन्न हुए, सबसे बड़ी कौशल्यासे रामचन्द्र, सुमित्रासे लक्ष्मण, कैकेयीसे धुरन्धर भरत, और सुप्रभासे शत्रुघ्न उत्पन्न एक पुत्र हुआ ॥ १-६ ॥

[५] राजा दशरथके वे चार पुत्र मानो भूमण्डलके लिए चार महासमुद्र, ऐरावत हाथीके दाँत या सज्जनोके मनोरथोके समान थे। जनक भी मिथिलापुरीमे जाकर विदेहका राज्य करने लगे। उनके भी दूसरे विक्रमकी तरह भामंडल, तथा सीता देवी उत्पन्न हुई। परन्तु भामंडलको, पिछले जन्मके वैरका स्मरणकर पिंगल देव उसे हरकर विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमे ले गया, और उसने उसे, स्वच्छ सुधा चूर्णसे सफेद रतनूपुरचक्रवाल-पुरमे चन्द्रमुख और चन्द्रगति नामके विद्याधरोके उपवनके समीप डाल दिया। विद्याधरने उठाकर उसे अपनी पत्नी पुष्पावतीको

घत्ता

ताव रज्जु जणयहों तणउ उद्दद्धु महाडइ-वासिऍहिँ ।
वव्वर-सवर-पुलिन्दऍहिँ हिमवन्त-विञ्झ-सवासिऍहिँ ।। ९ ।।

[६]

वेढिय जणय-कणय दुप्पेच्छेँहिँ । वव्वर-सवर-पुलिन्दा - मेच्छेँहिँ ।। १ ।।
गरुयासङ्कऍ वाल - सहायहोँ । लेहु विसज्जिउ,दसरह-रायहोँ ।। २ ।।
दूरइँ देवि सो वि सण्णज्झइ । रामु स-लक्खणु ताव विरुज्झइ ।। ३ ।।
'मइँ जीयन्तेँ ताय तुहुँ चल्लहि । हणमि वइरि छुडु हत्थुत्थल्लहि' ।। ४ ।।
वुत्तु णराहिवेण 'तुहुँ वालउ । रम्भा-खम्भ - गब्भ-सोमालउ ।। ५ ।।
किह आलग्गहि णरवर-विन्दहुँ । किह घड भञ्जहि मत्त-गइन्दहुँ ।। ६ ।।
किह रिउ-रहहँ महारहु चोयहि । किह वर-तुरय तुरङ्गहुँ ढोयहि' ।। ७ ।।
पभणइ रामु 'ताय पल्लट्टहि । हउँ जेँ पहुच्चमि काइँ पयट्टहि ।। ८ ।।

घत्ता

कि तुम हणइ ण वालु रवि किं वालु दवग्गि ण डहइ वणु ।
किं करि दलइ ण वालु हरि कि वालु ण डङ्कइ उरगमणु' ।।९।।

[७]

पहु पल्लट्टु पयट्टिउ राहउ । दूरासघिय - मेच्छ - महाहउ ।। १ ।।
दूसहु सो जि अण्णु पुणु लक्खणु । एक्कु पवणु अण्णेक्कु हुआसणु ।। २ ।।
विण्णि सि भिडिय पुलिन्दहोँ साहणेँ । रहवर - तुरय-जोह-गय-वाहणेँ ।। ३ ।।
दीहर - सरेँहिँ वइरि सताविय । जणय-कणय रणेँ उव्वेढाविय ।। ४ ।।
धाइउ समरङ्गणेँ तसु राणउ । वव्वर-सवर-पुलिन्द - पहाणउ ।। ५ ।।
तेण कुमारहोँ चूरिउ रहवरु । छिण्णु छत्तु दोहाइउ धणुहरु ।। ६ ।।

दे दिया। ठीक इसी समय, महाअटवी हिमवन्त, और विन्ध्याचलमें रहनेवाले बर्बर शबर, पुलिंद और म्लेच्छोंने राजा जनकके राज्यको छीनना शुरू कर दिया ॥ १-५ ॥

[६] बर्बर शबर, पुलिंद और म्लेच्छोसे अपनी सेना घिर जानेपर राजा जनकने बहुत भारी आशंकासे बालकोंकी सहायताके लिए राजा दशरथके पास लेखपत्र भेजा। उस पत्रसे यह जानकर राजा दशरथ स्वयं जानेकी तैयारी करने लगे। तब उसपर राम और लक्ष्मणने आपत्ति प्रकट की। रामने कहा, "मेरे जीवित रहते हुए आप जा रहे है। आप तो केवल यह आदेश दें कि मै शीघ्र शत्रुका संहार करूँ।" इसपर राजाने कहा, "तुम अभी बच्चे हो, केलेके गाभकी तरह अत्यन्त सुकुमार तुम बड़े-बड़े राजसमूहोंसे कैसे लड़ोगे? हाथियोंकी घटा कैसे विदीर्ण करोगे? महारथसे शत्रुओंके रथको कैसे प्रेरित करोगे? अपने उत्तम अश्वोंसे अश्वोंके निकट कैसे पहुँचोगे?" तब रामने कहा–"तात, आप लौट जाइये, हम लोग ही काफी हैं, आप क्यो प्रवृत्ति कर रहे हैं। क्या बालरवि अन्धकार नष्ट नहीं करता? क्या छोटी दावाग्नि जंगल नहीं जला देती? क्या सॉपका बच्चा नहीं काटता?" ॥ १-९ ॥

[७] तब दशरथ घर लौट आये। और राघव दूरसे ही म्लेच्छोंके महायुद्धकी सूचना पाकर चल पड़े। उनके साथ दूसरा केवल दुःसह लक्ष्मण था, मानो एक पवन था तो दूसरा आग। वे दोनों श्रेष्ठ रथ, अश्व, योधा और गजवाहनों सहित म्लेच्छोंसे लड़े। अपने लम्बे बाणोंकी मारसे शत्रु-सेनाको सन्त्रस्त कर उन्होंने सीताका उद्धार किया। तब शबर और पुलिन्दोंका प्रधानतम नामका राजा युद्धमें आया। उसने कुमारके रथको नष्ट कर दिया, और छत्र छिन्न-भिन्न। धनुषके दो टुकड़े कर दिये। तब रामने नाग

और नागिनीके आकारके वाणोंसे उसका सामना किया। तव उसकी सेना, तलवार झुकाये हुए इधर-उधर भागने लगी। युद्धमें आहत होकर भिल्लराज दशों ही घोड़ोंसे किसी तरह भाग निकला। तव जनकने उसी समय रामके लिए जानकी अर्पित कर दी॥ १–६॥

[८] वर्वर शवरोंकी सेना नष्ट होने पर जनककी धरा स्वतन्त्र हो गई। उन्होंने रामलक्ष्मण (वलभद्र और वासुदेव) का तरह-तरहके आभरणों और रत्नोंसे आदर-सत्कारकर उन्हें विदा किया लेकिन इस समय तक सीता देवीकी देह-ऋद्धि (यौवन) विकसित हो चुकी थी। तव एक दिन दर्पण देखते हुए उसने (दर्पणकी) परछाईमें महाभयंकर नारदको ऋषिवेषमें देखा। वह तुरन्त ही उसी तरह मूर्छित हो गई जिस तरह कुरंगी सिंहके आनेपर भीत हो जाती है। आशंकाके ग्रहसे अभिभूत सहेलियोंने "हाय माँ, हाय माँ" कहते हुए कोलाहल किया। (उसे सुनकर) अनुचर असर्प और क्रोधसे भरकर तलवार उठाये हुए दौड़े। नारदको पाकर मारा तो नहीं परन्तु तो भी गर्दनिया देकर वाहर निकाल दिया। अपमानित होकर देवर्षि चले गये। उन्होंने तव, पटपर सीताका चित्र अंकित किया। और जाकर, विपयुक्तिकी भाँति उस प्रतिमा को भामंडलके लिए 'गृहपत्नी' के रूपमें दिखाया॥१–६॥

[९] कुमार भी उस चित्र-प्रतिमाको देखकर कामदेवके पंचवाणोंसे आहत हो गया। उसका मुख सूखने लगा। मस्तक घूमने लगा। अंग-अंगमें जलन होने लगी। भुजा रूपी डालें मुड़ने लगीं। वाल वँधे हुए होने पर भी वक्षःस्थल खुला हुआ था। कामकी दशों दिशाएँ इस प्रकार साफ प्रकट होने लगी—पहली अवस्थामें चिंता, तो दूसरी अवस्थामें प्रियको देखनेकी अभिलाषा हो रही थी। तीसरीमें लम्बी साँसें खींचना और चौथीमें ज्वरका आ

जाना। पाँचवीमें जलनका अंगोंको नहीं छोड़ना, छठीमें मुहमे कोई भी चीज़ अच्छी नहीं लगना, सातवीमें एक कौर भी भोजन नहीं करना। आठवींमें चलना और जम्हाई लेना बंद हो जाना। नवींमे प्राणोंमे संदेह होने लगना और दशवींमें मृत्युका किसी भी तरह नही चूकना ॥१–८॥

उसकी यह हालत देखकर, अनुचरोंने जाकर राजासे कहा "देव, अब आपके पुत्रका जीवित रहना कठिन है। किसी लड़कीके (प्रेममे) वह कामकी दसवीं अवस्थाको पहुँच गया है" ॥९॥

[१०] जब विद्याधर चन्द्रगतिने, "नाग नर और अमर-कुलोंमें कलह करनेवाले नारदजीसे पूछा, "कहिए आपने कही कोई ऐसी भी कन्या देखी है जो मेरे पुत्रके हृदयमे वस सकती है।" यह सुनकर महर्षि बोले—"मिथिलामे चन्द्रकेतु नामका राजा हुआ था। उसके पुत्र जनककी कन्या सीता तीनों लोकोंमें सर्वश्रेष्ठ है। वही इस कुमारके योग्य है अतः पुरंदरराज जनकसे उसका अपहरण कर लाओ।" यह सुनकर, विद्याधरस्वामी चंद्रगतिने, अकुंठित-गतिवाले चपलवेग नामके विद्याधरसे कहा—"जाओ, विदेहराज जनकको हरकर ले आओ, मुझे उससे विवाह-सम्बन्ध करना है।" वह भी चन्द्रगतिका मुँह देखकर चला गया, और घोड़ा बनकर राजा जनकके भवनमे पहुँचा। राजा जनक कौतुकसे जैसे ही उस घोड़े पर चढ़ा, वैसे ही वह दक्षिण श्रेणीमें पहुँच गया। विद्याधर मिथिला-नरेश जनकको जिन-मंदिरमें छोड़कर, अपने सुन्दर नगरमें प्रविष्ट हुआ, और अपने स्वामीके पास जाकर कहा, "मै राजा जनकको ले आया हूँ।" यह सुनते ही, विरह-परवश अपने पुत्रके साथ चंद्रगति जिन-मंदिरमे, वंदना भक्तिके लिए गया ॥ १–११ ॥

[११] विद्याधर और मनुष्योंके नेत्रोंको आनन्द देनेवाले चंद्रगति और जनकमें बातें होने लगीं। संतुष्टमन चंद्रगतिने कहा, "हम दोनों स्वजनता (रिश्तेदारी) क्यों न कर ले, तुम्हारी लड़की और मेरा लड़का, यदि दोनोंका विवाह हो जाय तो मेरा मनोरथ सफल हो।" पर इस बातसे जनकका केवल क्रोध बढ़ा। उन्होंने कहा, "परंतु मैंने अपनी लड़की दशरथ-पुत्र रामको दे दी है, विजयश्री रूपी कामिनीमें आसक्त उन्होंने भीलोंकी सेनाको ध्वस्त किया है।" इस प्रसंग पर, चन्द्रगतिने अहंकारके स्वरमें कहा—"कहाँ विद्याधर और कहाँ धरतीवासी मनुष्य? इन दोनोंमें वही अन्तर है जो हाथी और मच्छरमें, और फिर मनुष्य क्षेत्र अत्यंत तुच्छ है। वहाँका जीवन स्तर भी कुछ विशेष ऊँचा नहीं है।" तब जनकने उत्तरमें कहा,—"विश्वमें मनुष्य क्षेत्र ही सबसे आगे और अच्छा है। उसमें ही तीर्थंकरोंने भी मुक्ति और केवलज्ञान प्राप्त किया है" ॥१–६॥

[१२] यह सुनकर भामंडलके पिता चन्द्रगतिने, जो विचार और शक्तिमें बड़ा था, कहा—"अच्छा हमारे नगरमें, मजबूत प्रत्यंचाके दो दुर्जेय धनुष हैं, उनके नाम हैं वज्रावर्त और समुद्रावर्त। यक्ष-राक्षसों द्वारा वे सुरक्षित हैं। भामंडल और राममेंसे जो उन्हें चढ़ानेमें समर्थ होगा, सीता उसीको ब्याही जाय।" जनकने यह शर्त मान ली। और उन धनुषोंको लेकर वह अपनी नगरीको चले गये। मंच (और मंडप) बनवाकर उन्होंने स्वयंवर बुलवाया। दुनियाके जिन राजाओंको मालूम हो सका, वे सब उसमें आये, परन्तु धनुषके प्रतापके आगे सबको पराजित होना पड़ा। उनमें एक भी ऐसा नहीं था जो धनुषको चढ़ा सकता। हजारों यक्ष भी अपना मुँह दिखाकर रह गये। वे दोनों धनुष, कुलीकी तरह शुद्धवंश (बांस और कुल) के और शोभन होते

[१३]

जं णरवइ असेस अवयाणिय । दसरह-तणय चयारि वि आणिय ॥१॥
हरि - वलएव पढुक्किय तेत्तहें । सीय-सयम्वर - मण्डउ जेत्तहें ॥ २ ॥
दूर-णिवारिय- णरवर - लक्खेंहिँ । धणुहराइँ अल्लवियइँ जक्खेंहिँ ॥ ३ ॥
'अप्पण - अप्पणाइँ सु-पमाणइँ । णिव्वाडेवि लेहु वर-चावइँ' ॥ ४ ॥
लइयइँ सायर - वज्जावत्तइँ । गामहणा इव गुणेंहिँ चडन्तइँ ॥ ५ ॥
मेल्लिउ कुसुम-वासु सुर-सत्थें । परिणिय जणय-तणय काकुत्थें ॥ ६ ॥
जे जे मिलिय सयम्वरें राणा । णिय-णिय णयरहों गय विद्दाणा ॥ ७ ॥
दिवसु वारु णक्खत्तु गणेप्पिणु । लग्गु जोग्गु गह-दुत्थु णिएप्पिणु ॥ ८ ॥

घत्ता

जोइसिएँहिँ आएसु किउ 'जउ लक्खण-रामहुँ स-रहसहुँ ।
आयहेँ कण्णहेँ कारणेंण होसइ विणासु वहु-रक्खसहुँ' ॥९॥

[१४]

'ससिवद्धणेण ससि - वयणियउ । कुवलय-दल-दीहर- णयणियउ ॥ १ ॥
कल - कोइल - वीणा - वाणियउ । अट्ठारह कण्णउ आणियउ ॥ २ ॥
दस लहु-भायरहुँ समप्पियउ । लक्खणहों अट्ठ परिकप्पियउ ॥ ३ ॥
दोणेण विसल्ला - सुन्दरिय । कण्हहों चिन्तविय मणोहरिय ॥ ४ ॥
वइदेहि अउज्झा-णयरि णिय । दसरहेंण महोच्छव-सोह किय ॥ ५ ॥
रह तिक - चउक्कहिँ चच्चरहिँ । कुङ्कुम - कप्पूर - पवर - वरहिँ ॥ ६ ॥
चन्दन - छडोह - दिज्जन्तऍहिँ । गायण - गीयहिँ गिज्जन्तऍहिँ ॥ ७ ॥
मणिमइयउ रइयउ देहलिउ । मोत्तिय कणऍहिँ रङ्गावलिउ ॥ ८ ॥
सोवण्ण - दण्ड - मणि -तोरणइँ । वद्धइँ सुरवर - मण - चोरणइँ ॥ ९ ॥

घत्ता

सीय-वलइँ पइसारियइँ जणें जय-जय-कारिज्जन्ताइँ ।
थियइँ अउज्झहेँ अवचलइँ रइ-सोक्खु-स यं भुञ्जन्ताइँ ॥१०॥

हुए भी, गुण (प्रत्यंचा और अच्छे गुण) पर नहीं चढ़ रहे थे, इसलिए अवश्य वे लोगोंको अनिष्टकर थे ॥ १–९ ॥

[१३] सब राजाओंके पराजित होनेपर बलभद्र और वासुदेव सीताके स्वयंवर-मंडपमें पहुँचे। तब लाखों राजाओंको दूरसे ही हटानेवाले रक्षक यक्षोंने दोनों धनुष बताते हुए उनसे कहा,— "लीजिये, अपने-अपने प्रमाणके अनुरूप इनमेंसे एक-एक चुन लें। उन्होंने समुद्रावर्त और वज्रावर्त धनुष हाथमें लेकर मामूली धनुषोंकी भाँति, उनपर डोरी चढ़ा दी, तब देववृंदने फूलोंकी वर्षा की। राम-सीताका विवाह हो गया, जो राजा स्वयंवरमें आये थे वे उदास होकर अपने-अपने नगर चले गये। दिन-वार-नक्षत्र गिन लगनके योग्य ग्रहोंको देखकर, ज्योतिषियोंने भविष्यवाणी की, "इस कन्याके कारण बहुतसे राक्षसोंका विनाश होगा" ॥१–९॥

[१४] शशिवर्द्धन नामक राजाकी अठारह लड़कियाँ थीं। सभी चन्द्रमुखी कमलदलकी तरह आयत नेत्रवाली, कोयल और बीणाकी तरह सुन्दर स्वरवाली थीं। उसने उनमेंसे दस रामके छोटे भाइयों (भरत और शत्रुघ्न) को तथा शेष आठ लक्ष्मणको विवाह दीं। द्रोणने भी अपनी सुन्दर कन्या लक्ष्मणको विवाह दी। वैदेहीके अयोध्या आनेपर राजा दशरथने धूमधामसे उत्सव किया। त्रिपथ चतुष्पथ और कथा-स्थान केशर और कपूर-धूलिसे पूरित थे। चन्दनका छिड़काव हो रहा था। तरह-तरहके गायन और गीत गाये जा रहे थे। देहली मणियोंसे रचित थी, और मोतियोंके दानोंसे 'रंगावली' बनाई जा रही थी। सुवर्ण और मणियोंसे बने, देवताओंका भी मन चुराने-वाले तोरण बाँधे जा रहे थे। सीता और रामके (गृह) प्रवेशपर लोगोंने जयजयकार किया। वे दोनों भी, साकेतमें अविचल रति सुखका आनन्द लेते हुए रहने लगे ॥ १–१० ॥

[२२. बावसमो संधि]

कोसलणन्दणेंण स-कलत्तें णिय-घरु आए ।
आसाढट्ठमिहिँ किउ ण्हवणु जिणिन्दहों राए ॥

[१]

सुर-समर-सहासेंहिँ दुम्महेण । किउ ण्हवणु जिणिन्दहों दसरहेण ॥ १ ॥
पट्ठवियइँ जिण-तणु-धोवयाइँ । देविहिँ दिव्वइँ गन्धोदयाइँ ॥ २ ॥
सुप्पहहेँ णवर कञ्चुइ ण पत्तु । पहु पभणइ रहसुच्छलिय-गत्तु ॥ ३ ॥
'कहेँ काइँ णियम्बिणि मणेँ विसण्ण । चिर-चित्तिय भित्ति व थिय विवण्ण' ॥४॥
पणवेप्पिणु वुच्चइ सुप्पहाएँ । 'किर काइँ महु त्तणियएँ कहाएँ ॥५॥
जइ हउँ जेँ पाणवल्लहिय देव । तो गन्ध-सलिलु पावइ ण केम' ॥ ६ ॥
तहिँ अवसरेँ कञ्चुइ ढुक्कु पासु । छण-ससि व णिरन्तर-धवलियासु ॥ ७॥
गय-दन्तु अयगमु (?) दण्ड-पाणि । अणियच्छिय-पहु पक्खलिय-वाणि॥८॥

घत्ता

गरहिउ दसरहेंण 'पइँ कञ्चुइ काइँ चिराविउ ।
जलु जिण-वयणु जिह सुप्पहहेँ दवत्ति ण पाविउ' ॥ ९ ॥

[२]

पणवेप्पिणु तेण वि वुत्तु एम । 'गय दियहा जोव्वणु ल्हसिउ देव ॥१॥
पढमाउसु जर धवलन्ति आय । पुणु असइ व सीस-वलग्ग जाय ॥ २ ॥
गइ तुट्टिय विहडिय सन्धि-बन्ध । ण सुणन्ति कण्ण लोयण णिरन्ध ॥ ३ ॥
सिरु कम्पइ मुहेँ पक्खलइ वाय । गय दन्त सरीरहों णट्ट छाय ॥ ४ ॥
परिगलिउ रुहिरु थिउ णवर चम्मु । महु एत्थु जेँ हुउ ण अवरु जम्मु ॥५॥

बाईसवीं संधि

अपने घर आकर, कौशल्यानन्दन रामने सपत्नीक, आषाढ़की अष्टमीके दिन जिनेन्द्रका अभिषेक किया।

[१] हजारो देवयुद्धोमे अजेय राजा दशरथने भी जिनका अभिषेक किया, उन्होने जिन-प्रतिमाके प्रक्षालनका दिव्य गंधोदक रानियोंके पास भेजा। परन्तु बूढ़ा कंचुकी रानी सुप्रभाके पास उसे नहीं ले गया। इतनेमे राजा दशरथ रानीके पास पहुँचे, और उसे (दीनमुद्रामे) देख, हर्षसे गद्गद स्वरमे बोले "हे नितम्बिनी, तुम खिन्नमन क्यो हो ? चिर चित्रित दीवालकी तरह तुम्हारा मुँह फीका क्यो हो रहा है।" इसपर प्रणाम करके रानी सुप्रभा बोली—"देव मेरी कहानीको सुननेसे क्या, यदि मै भी औरोकी तरह प्रिय होती तो गंधोदक मुझे भी मिलता। ठीक इसी समय कंचुकी उसके पास आया। चेहरा पूर्ण चन्द्रकी तरह एकदम सफेद, दॉत लम्बे, हाथमे दण्ड, बोली लड़खड़ाती हुई, राजाको भी देखनेमे असमर्थ। देखते ही राजाने उसे खूब डॉटा, कंचुकी तुमने इतनी देर क्यो की, जिससे जिन-वचनकी तरह ही पवित्र गंधोदक रानीको शीघ्र नहीं मिल सका ॥१–६॥

[२] तब प्रणाम करके कंचुकीने निवेदन किया, "महाराज, मेरे दिन अब चले गये, मेरा यौवन ढल चुका है। पहलेकी अवस्थापर सफेदी पोतती हुई यह जरा आ रही है। और दुराचारिणी स्त्रीकी तरह जबर्दस्ती मेरे सिरसे लग रही है, मेरी गति टूट चुकी है, हड्डियोके जोड़ ढीले पड़ गये है, कान सुनते नहीं, ऑखे देखती नहीं (अन्धी हो चुकी है), सिर कांप रहा है; और बोली मुँहमे ही लड़खड़ा जाती है, दॉत भी चले गये और शरीरकी कांति भी क्षीण हो गई। खून सब गल गया है, केवल

गिरि-णइ-पवाह ण वहन्ति पाय । गन्धोवउ पावउ केम राय' ॥ ६ ॥
वयणेण तेण किउ पहु-वियप्पु । गउ परम-विसायहों राम-वप्पु ॥ ७ ॥
चञ्चसउलु, जीविउ कवणु सोक्खु । त किज्जइ सिज्जइ जेण मोक्खु ॥ ८ ॥

घत्ता

सुहु महु-विन्दु-समु दुहु मेरु-सरिसु पवियम्भइ ।
वरि त कम्मु हिउ ज पउ अजरामरु लब्भइ ॥ ९ ॥

[३]

कं दिवसु वि होसइ आरिसाहुं । कञ्चुइ-अवत्थ अम्हारिसाहुं ॥१॥
को हउँ का महि कहों तणउ दव्वु । सिंहासणु छत्तइं अथिरु सव्वु ॥२॥
जोव्वणु सरीरु जीविउ धिगत्थु । ससारु असारु अणत्थु अत्थु ॥३॥
विसु विसय वन्धु दिढ-वन्धणाइं । घर-दारइं परिहव-कारणाइं ॥४॥
सुय सत्तु विढत्तउ अवहरन्ति । जर-मरणहँ किङ्कर कि करन्ति ॥५॥
जीवाउ वाउ हय हय वराय । सन्दण सन्दण गय गय जॅ णाय ॥६॥
तणु तणु जॅ खणद्धे खयहों जाइ । धणु धणु जि गुणेण वि वङ्कु थाइ ॥७॥
दुहिया वि दुहिय माया वि माय । सम-भाउ लेन्ति किर तेण भाय ॥८॥

घत्ता

आयइं अवरइ मि सव्वइँ राहवहों समप्पेवि ।
अप्पुणु तउ करमि' थिउ दसरहु एम वियप्पेवि ॥९॥

[४]

तहिं अवसरॅ आइउ सवण-सङ्घु । पर-समयसमीरण-गिरि-अलङ्घु ॥१॥
दुम्महमह-वम्मह-महण-सीलु । भय-भङ्गुर-भुअणुद्धरण-लीलु ॥२॥
अहि-विसम-विसय-विस-वेय-समणु । खम-दम-णिसेणि-किय-मोक्ख-गमणु ॥३॥

चमड़ी ही चमड़ी है यहाँ मै ऐसा ही हूँ जैसे दूसरा जन्म हो। अब पहाड़ी नदीके वेगकी तरह मेरे पैर सरपट नहीं चलते, अब आप ही बताइए देव! गंधोदक सभीको कैसे मिलता ॥१-६॥

कंचुकीके वचन सुनकर राजा दशरथने जब उनपर विचार किया तो वह गहरे विषादमे पड़ गये। उन्हें लगा-सचमुच जीवन अस्थिर है, कौन सा सुख है इसमे। इसलिए मुझे वह काम करना चाहिए जिसमें मोक्ष सध सके" (दुनियामे) सुख मधुकी बूँदकी तरह है और दुख मेरु पर्वतकी तरह फैल जाता है। अतः वही कर्म करना ठीक है जिससे मोक्षकी सिद्धि हो ॥७-९॥

[३] किसी दिन मेरी भी, इस बूढ़े कंचुकीकी तरह हालत हो जायगी, कौन मै? किसकी यह धरती? किसका धन? छत्र और सिंहासन? सभी कुछ अस्थिर है, यौवन शरीर और जीवनको धिक्कार है। संसार असार है और धन अनर्थकर है। विषय विष है, और बंधुजन दृढ़बन्धन। घरकी स्त्रियाँ अपमानकी कारण है। पुत्र केवल विघ्न करनेवाले शत्रु हैं, बुढ़ापे और मौतमे ये नौकर चाकर क्या करते है, जीवकी आयु वायु है, हय भी बेचारे हत हो जाते है। रथ खण्डित हो जाते है। और गज भी रोगको जानते है। तन तृणकी तरह है जो आधे पलमें ही नष्ट हो जाता है। धन धनुषकी तरह है जो गुण (डोरी) से भी टेढ़ा होता है। दुहिता दुष्ट हृदय ही होती है। माताको माया ही समझो। समभाग (धनका) बॅटानेवाले होनेसे भाई भाई है। यह, और जो भी है वह सब 'राम' को अर्पितकर मै तप करूँगा" राजा दशरथने यह विकल्प अपने मनमे स्थिर कर लिया ॥१-९॥

[४] ठीक इसी समय एक श्रमणसंघ वहाँ आया। जो परमत-रूपी पवनके लिए अलंघ्य पर्वत, दुर्दम कामदेवको मथनेवाला, भयभीत जनोका उद्धारक, विषयरूपी सॉपके विषका शमन

करनेके लिए गरुड़, शम और दमकी सीढ़ियोंसे मोक्षगामी, तप लक्ष्मीरूपी उत्तम स्त्रीका आलिगन करनेवाला, कलियुगके पाप-जल का शोषण करनेके लिए सूर्य, तीर्थंकरोंके चरणकमलोंके लिए भ्रमर और मोहरूपी महासुरकी नगरीके लिए भयंकर था। उसमे संसार समुद्रकी थाहको जाननेवाले सत्यभूति नामक एक साधु थे जो कभी मगध शासक थे। वह पुत्र और स्त्रीके प्रेमसे दूर हो चुके थे। वह धीरतामे मन्दराचल और गम्भीरतामे समुद्र थे, संघपति वह भट्टारक सत्यभूति, अयोध्यामे, मानो राजा दशरथको यही चेतावनी देने आये थे कि शिवपुरीके लिए चल ॥१-६॥

[५] उधर रथनूपुरचक्रवालपुरमे भामंडल (सीताके वियोगमे) अपनी श्रेणीका राजपाट छोड़कर, सिद्धिके ध्यानमे रत मुनिकी तरह धूनी रमाये बैठा था। सीताके वियोगको किसी प्रकार सहन करते हुए उसके कामकी अवस्थाएँ प्रगट होने लगीं, उसे किसी भी विचारधाराकी इच्छा नही थी। वह भोजन पान सब कुछ छोड़ बैठा, न ठण्डा पानी, न चन्दन, न कमलोकी सेज, कुछ भी उसे अच्छा नहीं लगता। वैद्य आते और देखकर चले जाते, वह दुःसहविरहसे पीड़ित हो रहा था, जो किसी भी दवासे नष्ट नहीं हो सकता था। लम्बी लम्बी साँसे छोड़ता हुआ वह थक कर ऐसा बैठा था, मानो सिंह ही बैठा हो। "मैं उस मानवीका बलपूर्वक अपहरण कर भोग करूँगा," यह सोचकर वह सेनाके साथ तैयार होकर निकल पड़ा, परन्तु जैसे ही विदग्ध नगर पहुँचा, उसे देखते ही उसे जाति-स्मरण हो आया। पिछले जन्ममें मै इसी नगरमें राजा था ॥१-६॥

[६] उस प्रदेशको देखकर वह मूर्छित हो गया। और फिर सब भवान्तरोंका स्मरण कर उसने तातसे श्रद्धापूर्वक कहा, "मै पहले यहाँ कुण्डलमंडित नामका अत्यन्त अहंकारी राजा था। और एक

पिंगल नामका कुबेरभट्ट था। वह राजा चन्द्रध्वजकी लड़कीका अपहरणकर एक कुटियामें रहता था। परन्तु मैंने उसकी पत्नीको छीन लिया। वह मरकर किसी प्रकार देव हुआ। मैं भी मरकर विदेह स्वर्गमे पहुँचा। वहाँसे आकर सीताके साथ जुड़वा भाई उत्पन्न हुआ। वनमें फेंके जाने पर भी मुझे एक कांटा तक नहीं लगा, और आपने आदरके साथ मुझे अपनी पत्नी पुष्पावतीको सौंप दिया। फिर आपके घरमें किस प्रकार बड़ा हुआ। यह सब लोग जानते हैं, जनक मेरे पिता, माँ विदेही और सीता बहन है॥१-६॥

[७] (इस प्रकार) समस्त वृत्तान्तको कहकर वह (भामण्डल) उस प्रदेशकी वन्दना-भक्तिके लिए गया, जहाँ महाऋषि सत्यभूति रहते थे। जहाँ जिनवरके स्नान (अभिषेक) की महाविभूति हो रही थी। जहाँ महाराज दशरथका वैराग्य काल था। जहाँ सीता देवी, राम और लक्ष्मणका (लीला) विलास हो रहा था, और जहाँ शत्रुघ्न तथा भरतके मिलनेकी (संभावना) थी (ऐसे उस स्थानको) भामण्डल अपने पिता (चन्द्रगति) को लेकर गया। उसने (वहाँ) मोक्षके आधार-स्तम्भ जिनकी वंदना कर फिर गुरु और श्रमण-संघकी परिक्रमा दी, और उनके साथ संभाषण किया। (इसके बाद) शत्रुघ्न, भरत, राम और लक्ष्मणको उसने यह बताया कि किस प्रकार वह सीताका भाई और रामका अपराधी साला है। विद्याधर चन्द्रगतिने भी शुभभावसे परमधर्म सुनकर तपस्या अंगीकार कर ली॥१-८॥

दूसरे दिन दशरथने जब रामको राज्य अर्पित किया तो कैकेयी अपने मनमें वैसे ही संतप्त हो उठी जैसे ग्रीष्मकालमें धरती तप उठती है॥९॥

[८]

णरिन्दस्स सोऊण पव्वज्ज-यज्ज । स-रामाहिरामस्स रामस्स रज्ज ॥ १ ॥
ससा डोणरायस्य भग्गाणुराया । तुलाकोडि-कन्ती-लयालिद्ध-पाया ॥ २ ॥
स-पालम्ब-कञ्ची-पहा-भिण्ण-गुज्झा । थणुत्तुङ्ग-भारेण जा णित्त-मज्झा ॥३॥
णवासोय-वच्छच्छयाछाय-पाणी । वरालाविणी-कोइलालाव-वाणी ॥ ४ ॥
महा-मोरपिच्छोह-सकास-केसा । अणङ्गस्स भल्ली व पच्छण्ण-वेसा ॥५॥
गया केक्कया जत्थ अत्थाण-मग्गो । णरिन्दो सुरिन्दो व पीढ वलग्गो ॥६॥
वरो मग्गिओ 'णाह सो एस कालो । मह णन्दणो ठाउ रज्जाणुपालो ॥७॥
पिए होउ एव तओ सावलेवो । समायारिओ लक्खणो रामएवो ॥८॥

घत्ता

'जइ तुहुँ पुत्तु महु, तो एत्तिउ पेसणु किज्जइ ।
छत्तइँ वइसणउ, वसुमइ भरहहोँ अप्पिज्जइ ॥९॥

[९]

अहवइ भरहु वि आसण्ण-भव्वु । सो चिन्तइ अथिरु असारु सव्वु ॥१॥
घरु परियणु जीविउ सरीरु वित्तु । अच्छइ तवचरण-णिहित्त-चित्तु ॥२॥
तइँ मुएँवि तासु जइ दिण्णु रज्जु । तो लक्खणु लक्खइँ हणइ अज्जु ॥३॥
ण वि हउँ ण वि भरहु ण केक्कया वि । सत्तुहणु कुमारु ण सुप्पहा वि' ॥४॥
त णिसुणेँवि पप्फुल्लिय-मुहेण । वोल्लिज्जइ दसरह-तणुरुहेण ॥५॥
'पुत्तहोँ पुत्तत्तणु एत्तिउ जे । जं कुलु ण चडाइ वसण-पुञ्जेँ ॥६॥
ज णिय-जणणहोँ आणा-विहेउ । ज करइ विवक्खहोँ पाण-छेउ ॥ ७ ॥
कि पुत्ते पुणु पयपूरणेण । गुण-हीणेँ हियय-विसूरणेण ॥ ८ ॥

[८] राजा दशरथके दीक्षायज्ञ और लक्ष्मीके अभिराम रामको राज्य (मिलनेकी) बात सुनकर द्रोणराजकी बहन कैकेयीका अनुराग भग्न हो उठा। नूपुरोंकी कांतिलतासे उसके चरण लिप्त हो रहे थे। उसका मध्य लम्बी करधनीके प्रभावसे उद्विग्न हो रहा था। ऊँचे स्तनोंके भारसे कमर झुकी जा रही थी। उसके हाथ नव-अशोक वृक्षकी कान्ति समान आरक्त थे। वह कोयलके आलापकी तरह बहुत ही मधुर बोलती थी। श्रेष्ठ मोरके पंख समूहके सदृश उसकी केशराशि (अत्यन्त चमकीली) थी। प्रच्छन्न वेष, कामदेवकी भल्लिकाके समान थी वह। कैकेयी वहाँ गई जहाँ दरबारका मार्ग था, और राजा दशरथ, इन्द्रकी तरह सिंहासनपर बैठे हुए थे। उसने (उनसे) वर माँगा, "स्वामी यही वह समय है (कि जब) आप मेरे पुत्र (भरत) को राज्यपाल बनाएँ। तब दशरथने यह कहकर कि प्रिये तुम्हारी यह अपराधपूर्ण (बात) होगी, लक्ष्मण और रामको बुलाया ॥१–८॥

उन्होंने कहा, "यदि तुम मेरे पुत्र हो तो इस आज्ञाको मानो। छत्र सिंहासन और सारी धरती भरतको सौंप दो" ॥९॥

[९] अथवा भरत आसन्न भव्य है, वह समस्त संसार, घर-परिजन, जीवन शरीर और धनको असार समझता है। उसका मन तो तपश्चरणमें रखा है। यदि मैं तुम्हें छोड़कर उसे राज्य दे दूँ तो लक्ष्मण आज ही लाखोंको साफ कर देगा। तब न मैं, न न भरत, न कैकेयी, न कुमार शत्रुघ्न और न सुप्रभा, कोई भी उससे नहीं बचेगा।" यह सुनकर प्रफुल्ल मुखसे रामने कहा— "पुत्रका पुत्रत्व तो इसीमें है कि वह अपने कुलको संकटके मुखमें न डाले, और अपने पिताकी आज्ञा न टाले। शत्रुपक्षका संहार करे। अन्यथा, हृदयपीडक, गुणहीन, पुत्र शब्दकी पूर्ति करनेवाले

घत्ता

लक्खणु ण वि हणइ तवु भावहों सच्चु पयासहों ।
भुञ्जउ भरहु महि हउँ जामि ताय वण-वासहों' ॥ ९ ॥

[१०]

हक्कारिउ भरहु णरेसरेण । पुणु वुच्चइ णेह-महाभरेण ॥ १ ॥
'तउ छत्तइँ तउ वइसणउ रज्जु । साहेवउ मइँ अप्पणउ कज्जु' ॥ २ ॥
त वयणु सुणेँवि दुम्मिय-मणेण । धिक्कारिउ केकय-णन्दणेण ॥ ३ ॥
'तुहुँ ताय धिगत्थु धिगत्थु रज्जु । मायरि धिगत्थु सिरेँ पडउ वज्जु ॥४॥
णउ जाणहुँ महिलहँ को सहाउ । जोव्वण-मएण ण गणन्ति पाउ ॥ ५ ॥
णउ वुज्झहि तहुँ मि महा-मयन्धु । किं रामु मुएँवि महु पट्ट-वन्धु ॥ ६ ॥
सप्पुरिस वि चञ्चल-चित्त होन्ति । मणेँ जुत्ताजुत्त ण चिन्तवन्ति ॥ ७ ॥
मा णिक्कु मुएँवि को लेइ कच्चु । कामन्धहों किर कहिँ तणउ सच्चु ॥ ८ ॥

घत्ता

अच्छहु पुणु वि घरेँ सत्तुहणु रामु हउँ लक्खणु ।
अलिउ म होहि तुहुँ महि भुञ्जेँ भडारा अप्पुणु' ॥ ९ ॥

[११]

सुय-वयण-विरमेँ दससन्दणेण । वुच्चइ अणरण्णहों णन्दणेण ॥ १ ॥
'केक्कयहेँ रज्जु रामहों पवासु । पव्वज्ज मज्झु एउ जगेँ पगासु ॥ २ ॥
तुहुँ पालेँ धरासउ परम-रम्मु । णउ आयहों पासिव को वि धम्मु ॥३॥
दिज्जइ जइवरहुँ महप्पहाणु । सुअ - भेसह-अभयाहार-दाणु ॥ ४ ॥
रक्खिज्जइ सीलु कुसील-णासु । किज्जइ जिणु-पुज्ज महोववासु ॥ ५ ॥
जिण-वन्दण वारापेक्ख-करणु । सल्लेहण-कालु समाहि-मरणु ॥ ६ ॥
एहु सव्वहुँ धम्महुँ परम-धम्मु । जो पालइ तहों सुर-मणुय-जम्मु' ॥७॥
त वयणु सुणेवि सइत्तणेण । वुच्चइ सुहमइ-दोहित्तएण ॥ ८ ॥

पुत्रसे क्या लाभ ? हे तात ! लक्ष्मण भी बात नहीं करेगा। आप तप साधें और सत्यको प्रकाशित करें। भरत धरतीको भोगे, और मैं वनवासके लिए जाता हूँ ॥१–९॥

[१०] तब स्नेहसे भरे हुए राजाने भरतको बुलाकर कहा—"यह छत्र सिंहासन और राज्य तुम्हारा है, अब मैं अपना काम साधूँगा। यह सुनते ही कैकेयीपुत्र भरतने धिक्कारते हुए कहा—"पिताजी, तुम्हे और तुम्हारे राज्यको धिक्कार है। माँको धिक्कार है। उसके सिर पर वज्र क्यो नही गिर पड़ा ? पर क्या आप भी नही जानते, महिलाओंका क्या स्वभाव होता है ? यौवनके मदसे वे पाप नहीं गिनती। महामदान्ध तुम भी यह नहीं समझ सके कि रामको छोड़कर राज्यपट्ट मुझे बाँधा जायगा ? सज्जन पुरुष भी चञ्चलचित्त हो जाते है और उचित-अनुचितका विचार नही कर पाते ? माणिक्य छोड़कर कॉच कौन लेगा, कामान्धके लिए सच कैसा ? अथवा आप घर पर ही रहें, शत्रुघ्न, राम, लक्ष्मण और मै वनको जाते है, आप धरतीका भोग करें, आपका वचन भी झूठा नही होगा ॥१–९॥

[११] भरतके कह चुकनेपर, अण रण्णके पुत्र दशरथ बोले, "जगमें प्रकट है कि भरतको राज्य, रामको प्रवास और मुझे संन्यास मिलेगा। अतः घर रह कर तुम धरतीका पालन करो। इससे बढ़-कर दूसरा धर्म नही हो सकती। यतिवरोको बड़प्पन देना, शास्त्र, औषध, अभय और आहार दान करते रहना, अपना शील रखना, कुशीलका नाश करना, जिन पूजा उत्सव और उपवास करते रहना, जिन वंदनाके बाद द्वार पर अतिथिकी बाट देखना, सल्ले-खनाके समय समाधिमरण करना, बस, सब धर्मोंमे यही परम-धर्म है, जो इसका पालन करता है वह देव या मनुष्य योनिमे उत्पन्न होता है।" यह वचन सुनकर सहृदय भरतने फिर कहा

घत्ता

'जइ घर-वासेँ सुहु एउ जेँ ताय वडिवज्जहि ।
तो तिण-समु गणेँवि कज्जेण केण पव्वजहि' ॥ ९ ॥

[१२]

तो खेड्डु मुएँवि दसरहेँण वुत्तु । 'जइ सच्चउ तुहुँ महु तणउ पुत्तु ॥१॥
तो कि पव्वज्जहेँ करहि विग्घु । कुलवस-धुरन्धरु होहि सिग्घु ॥ २ ॥
केक्कयहेँ सच्चु ज दिण्णु आसि । त णिरिणु करहि गुण-रयण-रासि' ।३।
तो कोशल - दुहिया - दुल्लहेण । वोल्लिज्जइ सीया - वल्लहेण ॥ ४ ॥
'गुणु केवलु वसुहहँ भुत्तियाएँ । कि खणेँ खणेँ उत्त-पउत्तियाएँ ॥ ५ ॥
पालिज्जउ तायहोँ तणिय वाय । लइ महु उवरोहेँ पिहिवि भाय' ॥ ६ ॥
तो एम भणन्तेँ राहवेण । णिव्वूढाणेय-महाहवेण ॥ ७ ॥
खीरोवमइण्णव-णिम्मलेण । गिव्वाण-महागिरि-अविचलेण ॥ ८ ॥

घत्ता

पेक्खन्तहोँ जणहोँ सुरकरि-कर-पवर-पचण्डेँहिँ ।
पट्टु णिवद्धु सिरेँ रहु-सुऍण स यं भुव-दण्डेँहिँ ॥ ९ ॥

●

[२३. तेवीसमो संधि]

तहिँ मुणि-सुव्वय-तित्थेँ वुहयण-कण्ण-रसायणु ।
रावण-रामहुँ जुज्झु तं णिसुणहु रामायणु ॥

[१]

णमिऊण भडारउ रिसह-जिणु । पुणु कव्वहोँ उप्परि करमि मणु ॥१॥
जगेँ लोयहुँ सुयणहुँ पण्डियहुँ । सद्दत्थ-सत्थ परिचड्डियहुँ ॥ २ ॥
किं चित्तइँ गेण्हेँवि सक्कियइँ । वासेण वि जाइँ ण रञ्जियइँ ॥ ३ ॥

तात, आपने जो यह कहा कि घरमें रहनेमे सुख है, तो आप उसे तिनकेके समान छोड़कर संन्यास क्यो ग्रहण कर रहे है ? ॥१-६॥

[१२] इसपर अपनी खिन्नता दूर करते हुए दशरथने कहा, "यदि तू मेरा सच्चा पुत्र है, तो प्रव्रज्यामे विघ्न क्यो करता है। तुम अपने कुलवंशके धुरन्धर तुम सिंह बनो, कैकेयीको जो सच्चा वचन मै दे चुका हूँ, उसे हे गुणरत्नराशि, तुम पूरा करो। तब (बीचमे टोककर) कोशल नरेशकी पुत्री अपराजिताके लिए दुर्लभ सीतापति रामने कहा, "अब तो धरतीका भोग करनेमे ही भलाई है, क्षण-क्षणमे उक्ति प्रति उक्तिसे क्या लाभ ? अपने पिताका वचन पालो, अच्छा भाई मेरे अनुरोधसे ही तुम यह पृथ्वी स्वीकार कर लो," यह कहकर, अनेक महायुद्धोको निपटानेवाले, क्षीरसागरकी तरह निर्मल, मंदराचलकी तरह अविचल, रघुसुत रामने लोगोंके देखते-देखते, अपने प्रचंड हाथो (ऐरावतकी सूँड़ की तरह विशाल) से भरतके सिरपर राजपट्ट बॉध दिया ॥१-६॥

•

तेईसवीं संधि

इसके बाद, मुनिसुव्रत तीर्थंकरके तीर्थ-कालमे राम और रावणका भयंकर युद्ध हुआ। अतः बुधजनोके कानोंके लिए 'रसायन स्वरूप' उस रामायणको सुनो।

[१] भट्टारिक जिनको नमन करके मैं—काव्यके ऊपर अपना मन कर रहा हूँ। शब्दार्थ समूहसे अच्छी तरह परिचित, संसारमे जो सज्जन और पण्डित है, और जिनके चित्तका अनुरञ्जन व्यास भी नहीं कर पाते क्या वे इस काव्यको मनसे ग्रहण कर सकेंगे ? अथवा व्याकरण और आगमसे हीन हम जैसे लोगोका [काव्यका]

तो कवणु गहणु अम्हारिसेँहिँ । वायरण-विहूणेँहिँ आरिसेँहिँ ॥४॥
कइ अत्थि अणेय भेय-भरिय । जे सुयण-सासेँहिँ आयरिय ॥५॥
चक्कलएँहिँ कुलएँहिँ खन्दएँहिँ । पवणुद्धुअ-रासालुद्धएँहिँ ॥ ६ ॥
मञ्जरिय - विलासिणि - णक्कुडेँहिँ । सुह-छन्देँहिँ सहेहिँ खडइडेँहिँ ॥ ७ ॥
हउँ किं पि ण जाणमि मुक्खु मणेँ । णिय बुद्धि पयासमि तो वि जणेँ ॥८॥
ज सयलेँ वि तिहुवणेँ वित्थरिउ । आरम्भिउ पुणु राहवचरिउ ॥ ९ ॥

घत्ता

भरहहोँ वद्धएँ पट्टेँ तो णिव्वूढ-महाहउ ।
पट्टणु उज्झ मुएवि गउ वण-वासहोँ राहउ ॥ १० ॥

[२]

ज परिवद्धु पट्टु परिओसे । जय - मङ्गल - जय - तूर - णिघोसें ॥ १ ॥
दसरह-चरण-जुयलु जयकारेँवि । ढाइय-मच्छरु मणेँ अवहारेँवि ॥ २ ॥
सम्पय रिद्धि विद्धि अवगण्णेँवि । तासहोँ तणउ सच्चु परिमण्णेँवि ॥ ३ ॥
णिग्गउ वलु वलु णाइँ हरेप्पिणु । लक्खणो वि लक्खणइँ लएप्पिणु ॥ ४ ॥
सचल्लेहिँ तेहिँ विद्दाणउ । ठिउ हेट्ठामुहु दसरहु राणउ ॥ ५ ॥
हियवएँ णाइँ तिसूलें सल्लिउ । 'राहउ किह वण-वासहोँ चल्लिउ ॥ ६ ॥
धिगधिगत्थु' जणएण पवोल्लिउ । 'लङ्घिउ कुल-कमु वि सुमहल्लउ ॥ ७ ॥
अहवइ जइ मइँ सच्चु ण पालिउ । तो णिय-णामु गोत्तु मइँ मइलिउ ॥ ८ ॥
वरि गउ रासु ण सच्चु विणासिउ । सच्चु महन्तउ सव्वहोँ पासिउ ॥ ९ ॥
सच्चेँ अम्वरेँ तवइ दिवायरु । सच्चेँ समउ ण चुक्कइ सायरु ॥१०॥
सच्चे वाउ वाइ महि पच्चइ । सच्चेँ ओसहि खयहोँ ण वच्चइ ॥११॥

ग्राहक कौन हो सकता है ? फिर कवियोंके अनेक भेद हैं और जो हजारों सज्जनों द्वारा आदरणीय है। जो चक्रलक, कुलक, स्कन्धक, पवनोद्धत, रासालुब्धक, मञ्जरीक, विलासिनी, नक्कुड, और खडहड शुभछन्द तथा शब्दमें निपुण हैं। मैं कुछ भी नहीं जानता, मनमें मूर्ख हूँ तो भी लोगोंके सम्मुख अपनी बुद्धिको प्रकाशित करता हूँ। तीनों लोकोंमें जो प्रसिद्ध है मै उस राघव-चरितको आरम्भ करता हूँ ॥१—६॥

भरतको राज्यपट्ट बाँधे जानेपर महायुद्धमें समर्थ राम अयोध्य। नगरी छोड़कर वनवासके लिए चले गये ॥१०॥

[२] जय मंगल और जय तूर्यके निर्घोषके साथ, रामने परितोषपूर्वक [भरतको] राजपट्ट बाँध दिया। अपने पिताके चरणोंकी जय बोल, मनमे दैव-मत्सर, और ऋद्धि-वृद्धिकी उपेक्षाकर, केवल अपने पिताके सत्य वचनको मानते हुए, राम अपने भवनसे निकल पड़े, उन्होंने अपना साहस नही खोया। सब लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मण भी उनके साथ हो लिया। उन दोनों भाइयोंके जाते ही, खिन्न दशरथ नीचा मुख करके रह गये। मानो किसीने उनके हृदयमें त्रिशूल ही छेद दिया हो। उन्होंने कहा, "रामको वनवास कैसे दे दिया धिक्कार—है।" दशरथने] महान् कुल परम्पराका उल्लंघन किया है। अथवा यदि मै अपने सत्य वचनका पालन नहीं करता, तो अपने नाम और गोत्रको कलंक लगाता, अच्छा हुआ जो राम वनको चले गये, मेरा सत्य तो नष्ट नही हुआ। सबकी अपेक्षा सत्य ही महान् है। सत्यसे ही आकाशमे सूरज तपता है, सत्यसे ही समुद्र अपनी मर्यादा नही छोड़ता। सत्यसे ही हवा चलती है और सत्यसे ही धरती सब कुछ सहन कर लेती है। जो मनुष्य सत्यका पालन

घत्ता

जो ण वि पालइ सच्चु मुहें दाढियउ वहन्तउ ।
णिवडइ णरय-समुद्दे वसु जेंम अलिउ चवन्तउ' ॥१२॥

[३]

चिन्तावण्णु णराहिउ जावेंहिं । बलु णिय-णिलउ पराइउ तावेंहिं ॥ १ ॥
दुम्मणु एन्तु णिहालिउ मायएँ । पुणु विहसेवि वुत्तु पिय-वायएँ ॥ २ ॥
'दिवें दिवें चढहि तुरङ्गम-णाएँहिं । अज्जु काइँ अणुवाहणु पाएँहिं ॥ ३ ॥
दिवें दिवें वन्दिण-विन्देंहिं थुव्वहि । अज्जु काइँ थुव्वन्तु ण सुव्वहि ॥ ४ ॥
दिवें दिवें धुव्वहि चमर-सहासेंहिं । अज्जु काइँ तउ को वि ण पासेंहिं ॥ ५ ॥
दिवें दिवें लोयहिं वुच्चहि राणउ । अज्जु काइँ दीसहि विद्दाणउ ॥ ६ ॥
तं णिसुणेवि वलेण पजम्पिउ । 'भरहहों सयलु वि रज्जु समप्पिउ ॥ ७ ॥
जामि माएँ दिढ हियवएँ होज्जहि । ज दुम्मिय त सव्वु खमेज्जहि' ॥ ८ ॥

घत्ता

जें आउच्छिय माय 'हा हा पुत्त' भणन्ती ।
अपराइय महएवि महियलें पडिय रुयन्ती ॥ ९ ॥

[४]

रामे जणणि ज जें आउच्छिय । णिरु णिच्चेयण तक्खणें मुच्छिय ॥ १ ॥
लज्जियाहिं 'हा माएँ' भणन्तिहिं । हरियन्दणेण सित्त रोवन्तिहिं ॥ २ ॥
चमरुक्खेवेंहिं किय पडिवायण । दुक्खु दुक्खु पुणु जाय स-चेयण ॥ ३ ॥
अङ्गु वलन्ति समुट्ठिय राणी । सप्पि व दण्डाहय विद्दाणी ॥ ४ ॥
णालक्खण णीरासुम्माहिय । पुणु वि सदुक्खउ मेल्लिय धाहिय ॥ ५ ॥
'हा हा काइँ वुत्तु पइँ हलहर । दसरह-वस-दीव जग-सुन्दर ॥ ६ ॥
पइँ विणु को पल्लङ्के सुवेसइ । पइँ विणु को अत्थाणें वईसइ ॥ ७ ॥
पइँ विणु को हय-गयहुँ चडेसइ । पइँ पइँ विणु को भिन्दुएँण रमेसइ ॥८॥

नहीं करता वह मुँहमें दाढ़ी रखकर भी, नरक-समुद्रमे उसी प्रकार पड़ता है जिस प्रकार राजा वसुको झूठ बोलकर नरक जाना पड़ा था ॥१-१२॥

[३] इधर राजा दशरथ चिन्तातुर थे, और उधर राम अपने भवनमे पहुँचे। मॉने दुर्मन आते हुए उन्हें देख लिया। फिर भी वह हँसकर प्रियवाणीमे बोली, "प्रति-दिन तुम घोड़ो और हाथियोंकी सवारीपर चढ़कर आते थे। परंतु आज पैदल ही कैसे आये ? प्रतिदिन बंदीजन तुम्हारी स्तुति करते थे, परंतु आज तुम्हारी स्तुति क्यो नहीं सुन रही हूँ ? प्रतिदिन तुम्हारे ऊपर सैकड़ो चमर डुलाये जाते थे; परंतु आज तुम्हारे निकट कोई भी नही है; प्रतिदिन लोग तुम्हें 'राजा' कहकर पुकारते थे; पर आज तुम्हारा मुख मलीन क्यों है ?" यह सुनकर रामने कहा, "मॉं ! भरत को सब राज्य अर्पित कर दिया, मैं जा रहा हूँ। अपना हृदय दृढ़ कर लो और जो भी अविनय मुझसे हुई हो उसे क्षमा करो।" रामने जो यह पूछा उससे अपराजिता महादेवो "हा पुत्र हा पुत्र"—कहकर रोती हुई धरतीपर गिर पड़ीं ॥१-६॥

[४] रामने मॉसे जो पूछा, उससे वे तत्काल चेतनाहीन हो मूर्छित हो गई। तब 'हा मॉं' यह कहती हुई दासियोंने हरि-चन्दनका उनपर लेप किया। चमरधारिणी स्त्रियोंके हवा करनेपर वह धीरे-धीरे बड़े दुखसे सचेतन हुई। अपने अंगोंको मोड़तीं हुई,, दंडाहत म्लान नागिनकी तरह रानी उठी। उसकी आंखे नीली और अश्रुजलसे डबडबाई हुई थीं। फिर वह दुखके आवेगसे डाढ़ मार कर रोने लगीं—हे बलभद्र, तुमने यह सब क्या कहा ? दथरथकुलके दीपक, जगसुंदर राम ! तुम्हारे बिना अब कौन पलंगपर सोयेगा। तुम्हारे बिना कौन अब दरबारमें बैठेगा। तुम्हारे बिना कौन अब हाथी-घोड़े पर

पइँ विणु रायलच्छि को माणइ । पइँ विणु को तम्बोलु समाणइ ॥ ६ ॥
पइँ विणु को पर-वलु भञ्जेसइ । पइँ विणु को मइँ साहारेसइ' ॥ १० ॥

घत्ता

त कुवारु सुणेवि अन्तेउरु मुह-वुण्णउ ।
लक्खण-राम-विओए धाह मुएवि परुण्णउ ॥ ११ ॥

[५]

ता एत्थन्तरेँ असुर-विमद्दें । धीरिय णिय-जणेरि वलहद्दे ॥ १ ॥
'धीरिय होहि माएँ किं रोवहि । लुहि लोयण अप्पाणु म सोयहि ॥ २ ॥
जिह रवि-किरणेंहिँ ससि ण पहावइ । तिह मइँ होन्तें भरहु ण भावइ ॥ ३ ॥
ते कज्जे वण-वासेँ वसेवउ । तायहों तणउ सच्चु पालेवउ ॥ ४ ॥
दाहिण-देसेँ करेविणु थत्ति । तुम्हहँ पासेँ एइ सोमित्ति' ॥ ५ ॥
एम भणेप्पिणु चलिउ तुरन्तउ । सयलु वि परियणु आउच्छन्तउ ॥ ६ ॥
धवल-कसण-णीलुप्पल-सामेंहिँ । घरु मुच्चन्तउ लक्खण-रामेंहिँ ॥ ७ ॥
सोह ण देइ ण चित्तहों भावइ । णहु णिच्चन्दाइच्चउ णावइ ॥ ८ ॥
ण किय-उद्ध-हत्थु धाहावइ । वलहों कलत्त-हाणि ण दावइ ॥ ६ ॥
भरह णरिन्दहों ण जाणावइ । 'हरि-वल जन्त णिवारहि णरवइ' ॥१०॥
पुणु पाआर-भुअउ पसरेप्पिणु । णाइँ णिवारइ आलिङ्गेप्पिणु ॥११॥

घत्ता

चाव-सिलीमुह-हत्थ वे वि समुण्णय-माणा ।
तहों मन्दिरहों रुयन्तहों णाइँ विणिग्गय पाणा ॥१२॥

[६]

तो एत्थन्तरेँ णयणाणन्दें । सच्चल्लन्ते राहवचन्दें ॥ १ ॥
सीयाएवि हेँ वयणु णिहालिउ । ण चित्तेण चित्तु सचालिउ ॥ २ ॥

चढ़ेगा? तुम्हारे बिना गेंद कौन खेलेगा ? तुम्हारे बिना जलक्ष्मी को कौन मानेगा? तुम्हारे बिना ताम्बूलका आनन्द कौन करेगा? तुम्हारे बिना कौन शत्रुसेनाको परास्त करेगा? तुम्हारे बिना अब कौन मुझे सहारा देगा, रानीका करुण क्रन्दन सुनकर अन्तःपुरका मुख म्लान हो गया। राम और लक्ष्मणके वियोगमे वह अन्तःपुर डाढ़ मारकर रो पड़ा ॥ १–११ ॥

[५] इसी बीच असुरसंहारक रामने अपनी माँको धीरज बँधाते हुए कहा, "मां, धीरज धारण करो। रोती क्यों हो? आँखे लाल लालकर अपने आपको शोकमे मत डालो। सूर्यकी किरणोंके रहते जैसे चन्द्रमा शोभायुक्त नही हो पाता वैसे ही मेरे रहनेसे भरतकी शोभा नही होगी। केवल इसीलिए मै वनवासके लिए जा रहा हू। मै वहीं रहकर तातके वचनका पालन करूँगा। दक्षिण देशमे निवास बनाकर, लक्ष्मण तुम्हारे पास आ जायगा।" यह कहकर राम तुरन्त, सब परिजनोंसे पूछकर चल पड़े। धवल और कृष्ण नील कमलकी तरह लक्ष्मण और रामके छोड़ते ही, घर न तो सोहता था और न मनको ही भाता था, वैसे ही जैसे सूर्य और चन्द्रसे रहित आकाश अच्छा नही लगता। वह भवन हाथ ऊपर उठाकर और डाढ़ मारकर चिल्लाता हुआ, मानो रामको उसकी पत्नीका हरण दिखा रहा था या नरेन्द्र भरतको यह जता रहा था कि जाती हुई रामकी सेनाको रोको। या फिर मानो अपनी प्राकाररूपी भुजाओंको फैलाये हुए, आलिंगन कर, उसका निवारण कर रहा था। धनुष-बाण हाथमे लेकर उन्नतमान वे दोनो उस रोते हुए राजभवनसे ऐसे चले गये मानो उसके प्राण ही चले गये हो।" ॥१–१२॥

[६] इसी अंतर मे, जाते समय, नयनप्रिय रामने सीताका मुख कमल देखा, मानो चित्तने चित्त ही को संचारित कर दिया

णिय-मन्दिरहोँ विणिग्गय जाणइ । ण हिमवन्तहोँ गङ्ग महा-णइ ॥ ३ ॥
ण छन्दहोँ णिग्गय गायत्ती । ण सद्दहोँ णीसरिय विहत्ती ॥ ४ ॥
णाइँ कित्ति सप्पुरिस-विमुक्की । णाइँ रम्भ णिय-थाणहोँ चुक्की ॥ ५ ॥
सुललिय-चलण-जुयल मल्हन्ती । ण गय-घड भड-थड विहडन्ती ॥ ६ ॥
णेउर-हार-डोर-गुप्पन्ती । वहु-तम्वोल-पङ्कँ खुप्पन्ती ॥ ७ ॥
हेट्ठा-मुह कम-कमलु णियच्छेँवि । अवराइय-सुमित्ति आउच्छेँवि ॥ ८ ॥

घत्ता

णिग्गय सीयाएवि सिय हरन्ति णित-भवणहोँ ।
रामहो दुक्खुप्पत्ति असणि णाइँ दहवयणहोँ ॥ ९ ॥

[७]

राय-वारु वलु वोलिउ जावँहिँ । लक्खणु मणेँ आरोसिउ तावँहिँ ॥ १ ॥
उट्ठिउ धगधगन्तु जस-लुद्धउ । णाइँ घिएण सित्तु धूमद्धउ ॥ २ ॥
णाइँ महिन्दु महा-वण-गज्जिएँ । तिह सोमित्ति कुविउ गमेँ सज्जिएँ ॥ ३ ॥
'केँ धरणिन्द-फणा-मणि तोडिउ । केँ सुर-कुलिस-दण्डु भुएँ मोडिउ ॥ ४ ॥
केँ पलयाणलेँ अप्पउ ढोइउ । केँ आरुट्ठउ सणि अवलोइउ ॥ ५ ॥
केँ रयणायरु सोसेँवि सक्किउ । केँ आइच्चहोँ तेउ कलङ्किउ ॥ ६ ॥
केँ महि-मण्डलु वाहहिँ टालिउ । केँ तइलोक्क-चक्कु सचालिउ ॥ ७ ॥
केँ जिउ कालु कियन्तु महाहवेँ । को पहु अण्णु जियन्तएँ राहवेँ ॥ ८ ॥

घत्ता

अहवइ कि वहुएण भरहु धरेप्पिणु अज्जु ।
रामहो णीसावण्णु देमि सहत्थे रज्जु ॥ ९ ॥

[८]

तो फुरन्त-रत्तन्त-लोयणो । कलि कियन्त-कालो व भीसणो ॥ १ ॥

हो, वह भी अपने भवनसे वैसे ही निकल पड़ी, जैसे, हिमालय से गंगा, छंदसे गायत्री, शब्दसे विभक्ति, सत्पुत्रसे कीर्ति, या अपने स्थानसे चूककर अप्सरा रंभा ही निकल पड़ी हो। वह सुललित अपने सुघर पैरोंसे ऐसी अल्हड़ चल रही थी—मानो गजघटा भटसमूहको पराजित कर रही हो। नूपुर और हार डोरसे व्याकुल, प्रचुर ताम्बूलोंकी लालीमें निमग्न अपना मुँह वह नीचे किये थी। अपराजिता और सुमित्राके पैर पड़कर और उनसे पूछकर सीता देवी भी घरसे निकल आईं। अपने भवनकी शोभा का हरण करती हुई सीता देवी इस तरह निकल आईं मानो वह रामके लिए दुख का उत्पत्ति और रावणके लिए वज्र थीं ॥१–६॥

[७] रामके राजाज्ञा सुनाते ही लक्ष्मणको मन ही मन असह्य वेदना हुई। यशका लोभी वह तमतमाता हुआ उठा, मानो किसीने आगको घीसे सींच दिया हो। जैसे महामेघ गरजते हैं, वैसे ही लक्ष्मण जानेकी तैयारी करने लगा। उसने कहा, "किसने आज धरणेंद्रके फनसे मणिको तोड़ लिया है? देववज्रदंडको किसने हाथसे मोड़ दिया है? प्रलयकाल मे कौन अपनेको बचा सका है, शनिको देखकर कौन उचित हो सका है, समुद्रका शोषण कौन कर सकता है? सूर्यको कौन कलंक लगा सकता है? कौन पृथ्वीमंडलको अपनी भुजाओंसे टाल सकता है, त्रिलोक चक्रको कौन चला सकता है, यमका काल पूरा हो चुकनेपर महायुद्धमें कौन बचा सकता है, ठीक इसी प्रकार रामके जीतेकी राजा दूसरा कौन हो सकता है? अथवा बहुत बकवादसे क्या, मैं ही आज भरतको पकड़ कर, अशेष राज्य अपने हाथसे रामको अर्पित किये देता हूं।

[८] लक्ष्मणकी लाल-लाल आँखे फड़क रही थी, वह कलि, यम

दुण्णिवारु दुव्वार-वारणो । सुउ चवन्तु ज एम लक्खणो ॥ २ ॥
भणइ रामु तइलोक्क-सुन्दरो । 'पइँ विरुद्धें कि को वि दुद्धरो ॥ ३ ॥
जसु पडन्ति गिरि सिंह-णाएँण । कवणु गहणु वो भरह राएँण ॥ ४ ॥
कवणु चोज्जु ज दिवि दिवायरे । अमिउ चन्दें जल-णिवहु सायरे ॥ ५ ॥
सोक्खु मोक्खें दय-धम्मु जिणवरे । विसु भुयङ्गें वर लील गयवरे ॥ ६ ॥
धणएँ रिद्धि सोहग्गु वम्महे । गइ मरालें जय-लच्छि महुमहे ॥ ७ ॥
पउरुस च पइँ कुविएँ लक्खणे । भणँवि एम करें धरिउ तक्खणे ॥ ८ ॥

घत्ता

'रज्जें किज्जइ काइँ तायहों सच्च-विणासें ।
सोलह वरिसइँ जाम वे वि वसहुँ वण-वासें' ॥ ९ ॥

[९]

एह वोल्ल णिम्मविय जावेंहिं । ढुक्कु भाणु अत्थवणहों तावेंहिं ॥ १ ॥
जाइ सञ्झ आरत्त पदीसिय । ण गय-घड सिन्दूर-विहूसिय ॥ २ ॥
सूर - मस - रुहिरालि - चच्चिय । णिसियरि व्व आणन्दु पणच्चिय ॥ ३ ॥
गलिय सञ्झ पुणु रयणि पराइय । जगु गिलेइ ण सुत्तु महाइय ॥ ४ ॥
कहि मि दिव्व दीवय-सय वोहिय । फणि-मणि व्व पजलन्त सु-सोहिय ॥ ५ ॥
तित्थु कालें णिरु णिच्च दुग्गमें । णीसरन्ति रयणिहें चन्दुग्गमें ॥ ६ ॥
वासुएव - वलएव महव्वल । साहम्मिय साहम्मिय-वच्छल ॥ ७ ॥
रण - भर-णिव्वाहण णिव्वाहण । णिग्गय णीसाहण णीसाहण ॥ ८ ॥
विगयपओलि पवोलेंवि खाइय । सिद्धकूडु जिण-भवणु पराइय ॥ ९ ॥
ज पायार - वार - विप्फुरियउ । पोत्थासित्थ-गन्थ-वित्थरियउ ॥ १० ॥
गङ्ग - तरङ्गहँ रङ्गसमुज्जलु । हिमइरि-कुन्द-चन्द-जस-णिम्मलु ॥ ११ ॥

घत्ता

तहों भवणहों पासेहिँ विविह महा-दुम दिट्ठा ।
णं ससार-भएण जिणवर-सरणें पइट्ठा ॥ १२ ॥

और कालसे भी अधिक भयंकर हो रहा था। दुर्वार हाथीकी तरह दुर्वार, लक्ष्मणको ऐसा कहते सुनकर रामने कहा—"तुम्हारे विरुद्ध होनेपर भला क्या कोई दुर्द्धर हो सकता है, पहाड़ सिंह और हाथीतक गिर पड़ते हैं, तो फिर भरत राजाको पकड़नेमें क्या रक्खा है? यदि सूर्यमें दीप्ति, चंद्रमामें अमृत, समुद्रमें जल का समूह, मोक्षमें सुख, जिनवरमें दया धर्म, साँपमें विष, गजवर में वरलीला, धनमें ऋद्धि, वामामें सौभाग्य, मरालमें गति, विष्णुमें जयलक्ष्मी, और कुपित होनेपर तुममें पौरुष रहता है, तो इसमें अचरजकी कोई बात नहीं"—यह कहकर रामने भाई लक्ष्मणका हाथ पकड़ लिया। वह बोले, "तातनाशक राज्यके करनेसे क्या? चलो सोलह वर्षतक हम दोनों वनवासमें रहें" ॥१-६॥

[६] जब राम यह वचन कह ही रहे थे कि सूर्यका अस्त हो गया, आरक्त सन्ध्या ऐसी दिखाई दी मानो सिंदूरसे अलंकृत गजघटा हो या वीरके रक्तमांससे लिपटी हुई निशाचरी आनन्दसे नाच रही हो। सांझ बीती और रात आ गई मानो वरिष्ठ उसने सोते हुए विश्वको लील लिया हो। कहींपर सैकड़ों जलते हुए दीपक शेषनागके फणमणियोंकी तरह चमक रहे थे। रातके उस सतत दुर्गमकालमें जब चाँद उग आया, तो महाबली, युद्धभार उठानेमें समर्थ राम और लक्ष्मणने माताओं तथा स्नेहीजनोंसे बिदा माँगी, और सवारी, शृङ्गार तथा प्रसाधनसे हीन वे नगरका मुख्यद्वार और खाई लाँघकर सिद्धवरकूट जिन-भवनमें पहुँचे। वह मंदिर परकोटा और द्वारोंसे शोभित, और पोथियों तथा ग्रन्थोंसे भरा था। गंगाकी तरंगोंके समान उज्ज्वल, तथा हिमगिरि कुंद पुष्प चन्द्रमा और यशकी तरह निर्मल था। उसके चारों ओर लगे, बड़े-बड़े पेड़ ऐसे मालूम होते थे मानो संसारके भयसे वे जिनकी शरणमें आ गये हों ॥१-१२॥

[१०]

त णिएँवि भुवणु भुवणेसरहों । पुणु किउ पणिवाउ जिणेसरहों ॥ १ ॥
जय गय-भय राय-रोस-विलय । जय मयण-महण तिहुवण-तिलय ॥ २ ॥
जय खम-दम-तव-वय-णियम करण । जय कलि-मल-कोह-कसाय-हरण ॥३॥
जय काम-कोह-अरि-दप्प-दलण । जय जाइ-जरा-मरणत्ति-हरण ॥ ४ ॥
जय जय तव-सूर तिलोय-हिय । जय मग-विचित्त-अरुणे सहिय ॥ ५ ॥
जय धम्म - महारह - वीढेँ ठिय । जय सिद्धि-वरङ्गण-रण्ण-पिय ॥ ६ ॥
जय सजम - गिरि-सिहरुग्गमिय । जय इन्द-णरिन्द-चन्द-णमिय ॥ ७ ॥
जय सत्त - महाभय - हय-दमण । जय जिण-रवि णाणम्बर-गमण ॥ ८ ॥
जय दुक्किय - कम्म - कुसुय-डहण । जय चउ-गइ-रयणि-तिमिर-महण ॥६॥
जय इन्दिय - दुम्म - दणु-दलण । जय जक्ख-महोरग-थुय-चलण ॥१०॥
जय केवल - किरणुज्जोय - कर । जय - भविय - रविन्दाणन्दयर ॥११॥
जय जय भुवणेक्क-चक्क-भमिय । जय-मोक्ख-महाहरेँ अत्थमिय ॥१२॥

घत्ता

भावें तिहि मि जणेहिं वन्दण करेँवि जिणेसहो ।
पयहिण देवि तिवार पुणु चलियइँ वण-वासहों ॥१३॥

[११]

रयणिहेँ मज्झेँ पयट्टइ गहवु । ताम णियच्छिउ परमु महाहवु ॥ १ ॥
कुन्दहँ विन्दइँ पुलय-विसट्टइँ । मिहुणहँ चलइँ जेम अब्भिटइँ ॥ २ ॥
'वलु वलु' गय-मेघ कोक्कन्तइँ । 'मरु मरु पहरु पहरु' जम्पन्तइँ ॥ ३ ॥

[१०] भुवनेश्वरके उस भवनको देखकर, उन्होंने जिनेश्वर की वंदना शुरू की—"गतभय तथा राग और रोषको विलीन करने-वाले आपकी जय हो, कामका मथन करनेवाले त्रिभुवनतिलक आपकी जय हो, क्षमा दम तप व्रत और नियमोंका पालन करने-वाले आपकी जय हो, कलियुगके पाप क्रोध और कषायोंका हरण करनेवाले आपकी जय हो। काम क्रोधादि शत्रुओंका दर्प दलन करनेवाले आपकी जय हो, जन्म जरा और मरणके कष्टोंका हरण करनेवाले आपकी जय हो। त्रिलोक हितकर्ता और तपसूर्य आपकी जय हो। मनःपर्यय रूपी विचित्र सूर्यसे सहित आपकी जय हो। धर्मरूपी महारथकी पीठपर स्थित आपकी जय हो। सिद्धिरूपी वधूके अत्यन्त प्रिय आपकी जय हो। संयमरूपी गिरिके शिखरसे उदित आपकी जय हो। इन्द्र नरेन्द्र और चन्द्र द्वारा वंदनीय आपकी जय हो। सात महाभयरूपी अश्वोंका दमन करनेवाले आपकी जय हो। ज्ञानरूपी गगनमें विचरनेवाले जिन रवि आपकी जय हो। पापरूप कुमुदोंके लिए दहनशील, और चतु-र्गतिरूपी रातके तमको उच्छिन्न करनेवाले आपकी जय हो, इन्द्रियरूपी दुर्दम दानवोंका दलन करनेवाले आपकी जय हो। यक्ष और नागेश द्वारा स्तुत चरण आपकी जय हो। केवलज्ञानकी किरणसे प्रकाश करनेवाले और भव्यजन रूपी कमलोंको आनन्द देनेवाले आपकी जय हो। विश्वमें अद्वितीय धर्मचक्रके प्रवर्तक आपकी जय हो। मोक्षरूपी अस्ताचलमें अस्त होने वाले आपकी जय हो। इस प्रकार भावसे जिणेशकी वन्दना और तीन प्रदक्षिणा देकर वे तीनों पुनः वनवासके लिए चल पड़े ॥१-९॥

[११] रातके मध्यमें राम जैसे ही आगे बढ़े वैसे ही उन्हें एक महायुद्ध दिखाई दिया। कुपित विद्ध और रोमांच सहित जोड़े, सेनाकी तरह आपसमें लड़ रहे थे। 'वल-बल' कहकर एक

मर हुङ्कार - मार मेल्लन्तइँ । गरुअ - पहारहँ उरु उड्डन्तइँ ॥ ४ ॥
खणेँ ओवडियइँ अहर डसन्तइँ । खणे किलिकिणिड हिण्डि लग्गिन्तइँ ॥५॥
खणेँ वट्टु वालालुञ्छि करन्तइँ । खणेँ णिप्फन्दइँ सेउ फुसन्तइँ ॥ ६ ॥
त पेक्खेप्पिणु सुरय-महाहउ । सीयहेँ वयणु पजोयइ राहउ ॥ ७ ॥
पुणु वि हसन्तइँ केलि करन्तइँ । चलियइँ हट्ट-मग्गु जोयन्तइँ ॥ ८ ॥

घत्ता

जे वि रमन्ता आसि लक्खण-रामहुँ सङ्केंवि ।
णावइ सुरयासत्त आवण थिय मुद्दु ढक्केवि ॥ ९ ॥

[१२]

उज्झहे दाहिण-दिसएँ विणिग्गय । णाइँ णिरङ्कुस मत्त महा-गय ॥ १ ॥
ण सहइ पुरि वल-लक्खण-मुक्की । मुक्क कु-णारि व पेमण चुक्की ॥ २ ॥
पुणु धावन्तरेँ विसयय-णामहाँ । तरुवर णमिय सुभिच्च व सामहाँ ॥ ३ ॥
उट्ठिय विहय वमालु करन्ता । ण वन्दिण मङ्गलइँ पढन्ता ॥ ४ ॥
अद्ध-कोसु सपाइय जावेँहिँ । विमल विहाणु चउदिसु तावेँहिँ ॥ ५ ॥
णिसि-णिसियरिएँ आसि ज गिलियउ । णाइँ पडीवउ जउ उग्गिलियउ ॥ ६ ॥
रेहइ सूर-बिम्बु उग्गन्तउ । णावइ सुकइ-कन्चु पह-वन्तउ ॥ ७ ॥
पच्छएँ सारणु ताम पधाइउ । लहु हलहेइहेँ पासु पराइउ ॥ ८ ॥

घत्ता

सीय-सलक्खणु रामु पणमिउ णरवर-विन्देहिँ ।
ण वन्दिउ अहिसेएँ जिणु चत्तीसहिँ इन्देहिँ ॥ ९ ॥

[१३]

हेमन्त - तुरङ्गम - वाहणेण । परियरिउ रामु णिय-साहणेण ॥ १ ॥
ण दिग्ग-गउ लीलएँ पयडे दन्तु । त देसु पराइउ परियत्तु ॥ २ ॥
अण्णु वि थोवन्तरु जाइ जाम । गम्भीर महाणइ दिट्ठ ताम ॥ ३ ॥

दूसरोंको पुकार रहे थे। कभी 'मारो-मारो, प्रहार करो प्रहार करो' यह कह रहे थे। हुंकार करनेमें श्रेष्ठ वे कामोत्पादक शब्द कर रहे थे, गुरुप्रहारसे वे उसे उड़ा रहे थे, कभी क्षणमें गिर कर अधर काटने लगते, तो दूसरे ही क्षणमे किलकारी भरकर शरीरयुद्ध दिखाने लगते। क्षण भरमें बाल नोचने लगते और क्षणभरमें ही निष्पन्द होकर प्रस्वेद पोंछने लगते, ऐसे उस काम-महायुद्धको देखकर रामने सीताके मुखकी ओर ताका और फिर हँसते क्रीड़ा करते बाजार-मार्ग देखते हुए वे चल पड़े। सुरतासक्त रमण करती हुई जितनी भी आपण स्त्रियॉं थीं, राम लक्ष्मणकी आशंकासे मानो वे मुँह ढक कर रह गईं ॥१-६॥

[१२] निरंकुश महागजकी तरह वे लोग अयोध्यासे दक्षिण दिशाकी ओर निकले। परन्तु राम और लक्ष्मणसे मुक्त अयोध्या नगरी, सेवासे भ्रष्ट कुनारीकी तरह नहीं सोह रही थी। थोड़ी दूर चलनेपर प्रसिद्धनाम रामको पेड़ोंने, अच्छे अनुचरकी तरह नमस्कार किया। कलकल करते हुए पक्षी उसमेंसे ऐसे उठने लगे मानो बन्दीजन मंगलगान पढ़ रहे हों, जब वे लोग आधा कोश और चले तो चारों ओर सुंदर सबेरा फैल गया। रात रूपी निशाचरीने जो सूरजको पहले निगल लिया था उसने अब उसे उगल दिया। बादमें रामकी सेना भी उनके पीछे दौड़ी और शीघ्र ही उनके पास जा पहुँची। नरवरोंके समूहने लक्ष्मण और सीता सहित रामको उसी प्रकार प्रणाम किया जिस प्रकार अभिषेकके समय बत्तीस तरहके इन्द्र जिनको नमन करते है ॥ १-६ ॥

[१३] राम हँसते हुए घोड़ोंकी सवारीसे सहित अपनी सेनासे घिर गये। पर वह दिग्गजकी भाँति अल्हड़तासे पैर रखते हुए पारियात्र देशमे पहुँचे। उससे आगे थोड़ा और चलनेपर

परिहच्छ - मच्छ - पुच्छुच्छलन्ति । फेणावलि - तोय-तुसार देन्ति ॥ ४ ॥
कारण्ड - डिम्भ - डुम्भिय-सरोह । वर-कमल-करग्गिय-जलपओह ॥ ५ ॥
हंसावलि - पक्ख - समुल्हसन्ति । कल्लोल - वोल - आवत्त दिन्ति ॥ ६ ॥
सोहइ बहु-वणगय-जूह-सहिय । डिण्डीर-पिण्ड दरिसन्ति अहिय ॥ ७ ॥
उच्छलइ वलइ पडिखलइ धाइ । मलहन्ति महागय-लीलणाइँ ॥ ८ ॥

घत्ता

ओहर-मयर-रउद्द सा सरि णयण-कडक्खिय ।
दुत्तर-दुप्पइसार ण दुग्गइ दुप्पेक्खिय ॥ ९ ॥

[१४]

सरि गम्भीर णियच्छिय जावेंहिं । मयलु वि सेण्णु णियत्तिउ तावेंहिं ॥१॥
'तुम्हेंहिं एवहिं आणवडिच्छा । भरहहों भिच्च होह हियइच्छा ॥ २ ॥
उज्झ मुएप्पिणु दाहिणएसहों । अम्हेंहिं जाएवउ वण-वासहों' ॥ ३ ॥
एम भणेप्पिणु समर-समत्था । सायर - वज्जावत्त - विहत्था ॥ ४ ॥
पइसरन्ति तहिँ सलिलेँ भयङ्करेँ । रामहो चडिय सीय वामएँ करेँ ॥ ५ ॥
सिय अरविन्दहों उप्परि णावइ । णावइ णियय-कित्ति दरिसावइ ॥ ६ ॥
ण उज्जोउ करावइ गयणहों । णाइँ पदरिसइ धण दहवयणहों ॥ ७ ॥
लहु जलवाहिणि-पुलिणु पवण्णइँ । णं भवियइँ णरयहों उत्तिण्णइँ ॥ ८ ॥

घत्ता

वलिय पडीवा जोह जे पहु-पच्छलेँ लग्गा ।
कु-मुणि कु-बुद्धि कु-सील ण पव्वज्जहेँ भग्गा ॥ ९ ॥

[१५]

वलु बोलावेवि राय णियत्ता । णावइ सिद्धि कु-सिद्ध ण पत्ता ॥ १ ॥
वलिय के वि णीसासु मुअन्ता । खणेँ खणेँ 'हा हा राम' भणन्ता ॥ २ ॥

उन्हें गम्भीर नामको महानदी मिली। वेगशील मछलियोंकी पूँछे उसमें उछल रही थीं। फेनधारासे युक्त जलकण हिमकण उड़ा रहे थे, तरंगमाला गजशिशुओंसे आन्दोलित हो रही थी। जल-प्रवाह कमलोंके समूहसे भरा हुआ था। हंसमालाके पंख उसमे उल्लसित हो रहे थे। तरंगोंके प्रहारसे आवर्त पड़ रहे थे। वन-गजोंके बहुतसे झुण्डोंसे वह शोभित हो रही थी। फेनका समूह अधिक दिखाई पड़ रहा था, वह नदी, महागजकी तरह लीला करती हुई, गिरती-पड़ती उछलती-मुड़ती दौड़ती हुई बह रही थी। ओहर और मगरोंसे भयंकर, और दुष्प्रवेश्य उस नदीको रामने ऐसे देखा मानो वह दुर्गति हो ॥१–६॥

[१४] रामने गम्भीर नदीको देखकर अपनी सेनाको लौटा दिया। वह बोले, "आज्ञापालक तुम लोग आजसे भरतके सैनिक बनो। हमलोग भी अयोध्या छोड़कर, वनवासके लिए दक्षिण देशकी ओर जायँगे।" यह कहकर, समरमें समर्थ रामने नदीके भयंकर जलमें प्रवेश किया। समुद्रावर्त और वज्रावर्त धनुष उनके हाथमें थे। तब सीता उनके बायें हाथ पर चढ़ गईं, वह ऐसी जान पड़ रही थीं मानो लक्ष्मी कमलपर बैठकर अपनी कीर्ति दिखा रही हों, या आकाशको आलोकित कर रही हो या राम ही अपनी धन्या सीता, रावणको दिखा रहे हो। शीघ्र ही वे नदीके दूसरे तटपर पहुँच गये मानो भव्यो ही को नरकसे किसीने तार दिया हो। रामके पीछे लगे योधा लोग भी अयोध्याके लिए उसी प्रकार लौट गये जिस प्रकार संन्यास ग्रहण करनेपर कुमति कुशील और कुबुद्धि भाग खड़ी होती है ॥१–६॥

[१५] रामको विदा देते हुए राजा लोग बहुत व्यथित हुए। ठीक उसी तरह जिस प्रकार सिद्धि प्राप्त न होनेपर खोटे साधक दुखी होते हैं। कोई निश्वास छोड़ रहा था। कोई 'हा राम' कहता

के वि महन्तें दुक्खें लइया । लोउ करेवि के वि पव्वइया ॥ ३ ॥
के वि तिमुण्ड-धारि बम्भारिय । के वि तिकाल-जोइ वय-धारिय ॥ ४ ॥
के वि पवण-सुय-धवल-विसालऍ । गम्पिणु तहिँ हरिसेण-जिणालऍ ॥ ५ ॥
थिय पव्वज्ज लएप्पिणु णरवर । सढ - कढोर - वर - मेढु-महीहर ॥ ६ ॥
विजय-वियड्ढ-विओय-विमद्दण । धीर - सुवीर - सच्चे-पियवद्धण ॥ ७ ॥
पुरिस - पुण्डरीय - पुरिसुत्तम । विउल - विसाल-रणुग्गिय उत्तम ॥ ८ ॥

घत्ता

इय एकेक-पहाण जिणवर-चलण णमंसेंवि ।
जम-णियम गुणेहिँ अप्पउ थिय सइँ भूसेंवि ॥ ९ ॥

०

[२४. चउवीसमो सन्धि]

गऍ वण-वासहों रामें उज्झ ण चित्तहों भावइ ।
थिय णीसास मुअन्ति महि उण्हालऍ णावइ ॥

[१]

सयलु वि जणु उम्माहिज्जन्तउ । रणु वि ण थक्कइ णामु लयन्तउ ॥ १ ॥
उव्वेल्लिज्जइ गिज्जइ लक्खणु । मुरव - वज्जें वाइज्जइ लक्खणु ॥ २ ॥
सुइ-सिद्धन्त-पुराणेंहिँ लक्खणु । ओङ्कारेण पढिज्जइ लक्खणु ॥ ३ ॥
अण्णु वि जं जं किं वि स-लक्खणु । लक्खण-णामें वुच्चइ लक्खणु ॥ ४ ॥
का वि णारि सारङ्गि व रुण्णी । वड्डी धाह मुएवि परुण्णी ॥ ५ ॥
का वि णारि जं लेइ पसाहणु । तं उल्हावइ जाणइ लक्खणु ॥ ६ ॥
का वि णारि जं परिहइ कङ्कणु । धरइ सु गाढउ जाणइ लक्खणु ॥ ७ ॥
का वि णारि जं जोयइ दप्पणु । अण्णु ण पेक्खइ मेल्लेंवि लक्खणु ॥ ८ ॥
तो एयन्तरें पाणिय-हारिउ । पुरें वोल्लन्ति परोप्परु णारिउ ॥ ९ ॥
सो पहु तं जें उवहाणउ । सेज्ज वि स जें त जें पच्छाणउ ॥ १० ॥

कहता हुआ लौट रहा था। कोई घोर दुःख पाकर प्रव्रजित हो गये। कोई त्रिपुण्ड लगाकर सन्यासी हो गये। कोई व्रत धारण करनेवाले त्रिकाल योगी वन गये। कोई जाकर हरिषेण राजाके विशाल धवल जिनालयमें ठहर गये। वहाँ पर मेरु महीधर विजय वियद्धं वियोगविमर्दन धीर सुवीर सत्य प्रियवर्द्धन पुंगम पुण्डरीक पुरुषोत्तम विपुल विशाल और रणोन्मद और उत्तम प्रकृतिके राजाओंने दीक्षा ग्रहण कर ली। इस प्रकार सभी राजाओंने जिन चरणोकी वन्दनाकर अपने आपको संयम नियम और गुणोकी साधनामे अर्पित कर दिया।

•

चौवीसवीं सन्धि

रामके वन जानेपर, अयोध्या नगरी किसीको भी अच्छी नही लग रही थी। ग्रीष्मकी संतप्त धरतीकी भाँति, वह उच्छ्वास छोड़ती हुई जान पड़ रही थी।

[१] उन्मादग्रस्त सभी लोग रामका नाम लेकर भी क्षण भरको नहीं रह पा रहे थे। नृत्य और गानमे लक्खण (लक्ष्मण-लक्षण) ही कहा जा रहा था। मृदंगमें भी लक्खण वजाया जा रहा था। श्रुति सिद्धान्त और पुराणमें भी लक्खणकी ही चर्चा थी। ओंकारके साथ भी लक्खण पढ़ा जारहा था। और जो भी लक्षण सहित था, वह लक्ष्मणके नामसे ही कहा जाता था। कोई नारी हरिनीकी तरह विपण्ण हो, डाढ़ मारकर रो रही थी। कोई नारी प्रसाधन करती हुई लक्ष्मण समझकर उल्लसित हो उठती। कोई स्त्री कंगन पहनते समय उसे ही लक्ष्मण समझकर उसे और मजवूतीसे पकड़ लेती। कोई नारी दर्पण देखती, पर उसमे लक्ष्मणके सिवा उसे और कुछ दीखता नहीं था। नगरमे पनहारिने भी आपसमें यही चर्चा कर रही थीं कि वही पलंग वे ही उपधान वही सेज और वही प्रच्छादन (चादर), वही घर,

घत्ता

त घरु रयणइँ ताइ त चित्तयम्मु स-लक्खणु ।
णवर ण दीसइ माएँ रामु ससीय-सलक्खणु ॥ ११ ॥

[२]

ताम पहु पडह टडिपहय पहु-पङ्गणे । णाइँ सुर-दुन्दुही दिण्ण गयणङ्गणे ॥१॥
रसिय सय सद्द जाय महा-गोन्दल । टिविल-टण्टन्त-घुम्मन्त-वरमन्दल ॥२॥
ताल-कंसाल-कोलाहल काहल । गीय सगीय गिज्जन्त-वर-मङ्गल ॥३॥
डमरु-तिरिडिक्किया-झल्लरी-रउरव । भम्म-भम्भीस गम्भीर-भेरी-रव ॥४॥
घण्ट-जयघण्ट-सघट्ट-टङ्कारव । घोल-उल्लोल-हल्बोल-मुहलारव ॥५॥
तेण सद्देण रोमञ्च-कञ्चुइआ । गोन्दलुद्दाम-बहु-वहल-अचक्खुआ ॥६॥
सुहड-सघाय सव्वा य थिय पङ्गणे । मेरु सिहरेसु ण अमर जिण-जम्मणे ॥७॥
पणइ-फम्फाय-णड-छत्त-कइ वन्दण । 'णन्द जय भद्दजय जयहि'वर सद्दण ॥८॥

घत्ता

लक्खण-रामहुँ वप्पु णिय-भिच्चेंहिँ परियरियउ ।
जिण-अहिसेयहों कज्जें ण सुरवइ णीसरियउ ॥ ६ ॥

[३]

ज णीसरिउ राउ आणन्दें । वुत्तु णवेप्पिणु भरह-णरिन्दें ॥ १ ॥
'हउ मि देव पइँ सहुँ पव्वज्जमि । दुग्गइ-गामिउ रज्जु ण भुञ्जमि ॥ २ ॥
रज्जु असारु वारु संसारहों । रज्जु खणेण णेइ तम्बारहों ॥ ३ ॥
रज्जु भयङ्करु इह-पर-लोयहों । रज्जें गम्मइ णिच्च- णिगोयहों ॥ ४ ॥
रज्जें होउ होउ महु सरियउ । सुन्दरु तो किं पइँ परिहरियउ ॥ ५ ॥

वे ही रतन, लक्षण सहित वही चित्रकारी सब कुछ वही है। हे माँ, केवल लक्ष्मण और सीता सहित राम नहीं दीख पड़ते ॥१-११॥

[२] इतने ही में राजा दशरथके आँगनमें नगाड़े बज उठे मानो गगनांगनमें देवोंकी दुंदुभि ही बज उठी हो। सैकड़ों शंख गूँज उठे। उससे खूब कोलाहल हुआ। टिविलकी टंकारसे मंदराचल हिल उठा। ताल और कंसालका कोलाहल मच गया। उत्तम मंगलोंसे युक्त गीत और संगीत हो रहा था। डमरु तिरिडिक्कि और झल्लरीसे भयंकर, भम्भ भम्भीस और गंभीर भेरीका शब्द गूँज उठा। घंट और जयघंटोंके संघर्षकी टंकार तथा घोल उल्लोल हलबोल और मुहलकी ध्वनि फैल गई। इस ध्वनिको सुनकर युद्धमें उत्कट पुलकित कवच पहने और अत्यंत आश्चर्यसे भरे हुए सभी सुभट-समूह राजाके आँगनमें आकर ऐसे एकत्र हो गये मानो जिनजन्मके समय, सुमेरु पर्वतके शिखरपर देवसमूह ही आ गये हों। प्रणत चारण नट छत्र कवि और वंदीजन कह रहे थे—"बढ़ो, जय हो, कल्याण हो, जय हो"। अपने अनुचरोंसे घिरे हुए राम लक्ष्मणके बाप (दशरथ) ऐसे जान पड़ते थे मानो जिनेंद्रका अभिषेक करनेके लिए इन्द्र ही निकल पड़ा हो ॥१-६॥

[३] राजा जैसे ही आनन्दपूर्वक निकलने को हुआ वैसे ही भरतने प्रणाम करके कहा, "हे देव, मैं भी आपके साथ संन्यास ग्रहण करूँगा। दुर्गतिमें ले जानेवाले इस राज्यका मैं भोग नही करूँगा। राज्य असार और संसारका कारण है। राज्य क्षणभरमें विनाशकी ओर ले जाता है। दोनों लोकमें राज्य भयंकर होता है। राज्यसे नित्य निगोदमें जाना पड़ता है। राज्य रहे। यदि यह सुन्दर और मधुकी तरह मीठा होता तो आप क्यों

रज्जु अकज्जु कहिउ मुणि - देयहिँ । दुट्ठ-कलत्तु व भुत्तु अणेयहिँ ॥ ६ ॥
दोसवन्तु मयलञ्छण - बिम्बु व । बहु-दुक्खाउरु दुग्ग-कुडुम्बु व ॥ ७ ॥
तो वि जीउ पुणु रज्जहों कङ्खइ । अणुदिणु आउ गलन्तु ण लक्खइ ॥ ८ ॥

घत्ता

जिह महुबिन्दुहेँ कज्जेँ करहु ण पेक्खइ कक्करु ।
तिह जिउ विसयासत्तु रज्जे गउ सय- सक्करु' ॥ ९ ॥

[४]

भरहु चवन्तु णिवारिउ राएं । 'अज्ज वि तुज्झु काइँ तव-वाएं ॥ १ ॥
अज्ज वि रज्जु करहि सुहु भुञ्जहि । अज्ज वि विसय-सुक्खु अणुहुञ्जहि ॥ २ ॥
अज्ज वि तुहुँ तम्बोलु समाणहि । अज्ज वि वर-उज्जाणइँ माणहि ॥ ३ ॥
अज्जु वि अङ्गु स-इच्छऍं मण्डहि । अज्ज वि वर-विलयउ अवरुण्डहि ॥ ४ ॥
अज्ज वि जोग्गउ सव्वाहरणहों । अज्ज वि कवणु कालु तव-चरणहों ॥ ५ ॥
जिण-पव्वज्ज होइ अइ-दुसहिय । के बावीस परीसह विसहिय ॥ ६ ॥
के जिय चउ-कसाय-रिउ दुज्जय । के आयामिय पञ्च महव्वय ॥ ७ ॥
के किउ पञ्चहुँ विसयहुँ णिग्गहु । के परिसेसिउ सयलु परिग्गहु ॥ ८ ॥
को दुम- मूलें थक्किउ वरिसालऍं । को एक्कङ्गे थिउ सीयालऍं ॥ ९ ॥
के उण्हालऍं किउ अत्तावणु । एउ तव-चरणु होइ भीसावणु ॥ १० ॥

घत्ता

भरह म वड्डिउ वालि तुहुँ सो अज्ज वि वालु ।
भुञ्जहि विसय सुहाइँ को पव्वज्जहेँ कालु' ॥ ११ ॥

[५]

तं णिसुणेवि भरहु आरुट्ठउ । मत्त - गइन्दु व चित्ते दुट्ठउ ॥ १ ॥
'किं यउ ताय वयणु पइँ वुत्तउ । किं वालहों तव-चरणु ण जुत्तउ ॥ २ ॥

उसे छोड़ते, और फिर राज्य तो अन्तमें अनर्थकारी होता है। दुष्ट स्त्री की तरह अनेकोंने उसका भोग किया है। चन्द्रबिम्बकी तरह वह दोषयुक्त है और दरिद्र कुटुम्बकी तरह बहुतसे दुखोंसे भरा है। फिर भी मनुष्य राज्यकी ही कामना करता है, प्रति दिन गलती हुई अपनी आयुको नहीं देखता। जिस तरह मधुकी बूँदके लिए करभ कंकड़ नहीं देखता, उसी तरह जीव भी राज्यके कारण अपने सौ-सौ टुकड़े करवा डालता है ॥१-६॥

[४] तब दशरथ राजाने भरतको बोलतेमें ही टोककर कहा—"अभी तुझे तपकी बात करनेसे क्या! अभी तुम राज्य और विषय-सुखका भोग करो। अभी तुम ताम्बूलका सम्मान करो। अभी अच्छे उद्यानोंको मानो। अभी अपनी इच्छासे शरीरको सजाओ। अभी, उत्तम बालाका आलिंगन करो। अभी तुम सभी तरहके अलंकार पहनने योग्य हो। अभी तुम्हारे तपका यह कौन-सा समय है। फिर यह जिन-दीक्षा अत्यंत कठिन है। बाईस परीषह कौन सहन कर सकता है? चार कषाय रूपी अजेय शत्रुओंको कौन जीत सकता है? पाँच महाव्रतोंका पालन करनेमें कौन समर्थ है? पांच इन्द्रिय विषयोंका निग्रह कौन कर सका है? समस्त परिग्रहका त्याग करनेमें कौन समर्थ है? वर्षा-कालमें कौन वृक्षके मूलमें निवास कर सकता है? शीतकालमें कौन नग्न रह सकता है? ग्रीष्मकालमें तप कौन साध सकता है? यह तपश्चरण सचमुच भीषण है, भरत बढ़-चढ़कर मत बोलो, तुम अभी बच्चे हो! अभी विषयसुखका आनन्द लो, यह संन्यास लेने का कौन-सा समय है।" ॥१-११॥

[५] यह सुनकर, भरत रूठ गया, मत्तगजकी तरह उसका मन विकृत हो गया। वह बोला, "तात, आपने अत्यंत अशोभन

कि वालत्तणु सुहेहिं ण मुच्चइ । कि वालहों दय-धम्मु ण रुच्चइ ॥ ३ ॥
कि वालहों पव्वज्ज म होओ । कि वालहों दूसिउ पर-लोओ ॥ ४ ॥
कि वालहों सम्मत्तु म होओ । कि वालहों णउ इट्ठ-विओओ ॥ ५ ॥
कि वालहों जर-मरणु ण ढुक्कइ । कि वालहों जमु दिवसु वि चुक्कइ ॥ ६ ॥
तं णिसुणेवि भरहु णिब्भच्छिउ । 'तो कि पहिलउ पट्टु पडिच्छिउ ॥ ७ ॥
एवहिँ सयलु वि रज्जु करेवउ । पच्छलें पुणु तव-चरणु चरेवउ' ॥ ८ ॥

घत्ता

एम भणेप्पिणु राउ सच्चु समप्पेंवि भज्जहें ।
भरहहों बन्धेवि पट्टु दसरहु गउ पव्वज्जहें ॥९॥

[६]

सुरवर-वन्दिएँ धवल-विसालएँ । गम्पिणु सिद्धकूडें चइतालएँ ॥ १ ॥
दसरहु थिउ पव्वज्ज लएप्पिणु । पञ्च मुट्ठि सिरें लोउ करेप्पिणु ॥२॥
तेण समाणु सणेहें लइयउ । चालीसोत्तरु सउ पव्वइयउ ॥ ३ ॥
कण्ठा-कडय-मउड अवयारेंवि । दुद्धर पञ्च महव्वय धारेंवि ॥ ४ ॥
थिय णीसङ्ग णाण ण विसरहिँ । अट्ठ वि समय-वाल ण विम्हरहिँ ॥ ५ ॥
ण वि केसरि गय-मासाहारिय । ण परदार-गमण परदारिय ॥ ६ ॥
केण वि कहिउ ताम भरहेसहों । गय सोमित्ति-राम वण-वासहों ॥ ७ ॥
तं णिसुणेवि वयणु भुय-वाहउ । पडिउ महीहरो व्व वज्जाहउ ॥ ८ ॥

घत्ता

जं मुच्छाविउ राउ सयलु वि जणु दुह कायरु ।
पलयाणल-सन्तत्तु रोवेंवि लग्गु ण सायरु ॥ ९ ॥

[७]

चन्दणेण पवालिज्जन्तउ । चमरुक्खेवेंहिं विज्जिज्जन्तउ ॥ १ ॥

कहा, क्या बालकको तपस्या युक्त नहीं। क्या अल्लकपन सुखोंसे वंचित नहीं होता ? क्या बालकको दया धर्म नहीं रुचता ? क्या बालकको संन्यास नहीं होता ? बालकका परलोक आप क्यों दूषित करते है ? क्या बालकको सम्यग् दर्शन नही होता ? क्या बालकको इष्ट-वियोग नहीं होता, क्या बालकके पास बुढ़ापा और मृत्यु नहीं फटकती, क्या उसे यमका दिन छोड़ देता है ?" तब भरतको डॉटते हुए दशरथने कहा, "तो फिर तुमने पहले राज्य पदकी कामना क्यों की ? इस समय समस्त राज्यको सम्हालो, तप फिर बादमें साध लेना !" यह कह, कैकेयीको वरदान दे, और भरत को राज्यपट्ट बॉधकर दशरथ दीक्षा लेनेके लिए चल दिये ॥१-६॥

[६] वह, देववंदित, धवल बिशाल सिद्धकूट चैत्यालयमें पहुँचे। और पञ्चमुष्टि केशलोंचकर उन्होंने दीक्षा ग्रहण कर ली। उनके प्रेमके वशीभूत होकर एक सौ चालीस दूसरे राजाओंने भी दीक्षा ग्रहण की। कंठहार, मुकुट और कटक उतारकर, पंच महाव्रत धारणकर वे तप साधने लगे। अनासंग वे मुनि नागकी तरह, विषधर (धर्म या विष धारण करनेवाले) थे, अथवा वर्षा-कालके समान विषधर (जलचर धर्मवाले) थे। सिहकी तरह मांसाहारी (एक माहमे भोजन करनेवाले मासाहारी) थे। परदार-गामीकी तरह परदारगामी (मुक्तिगामी) थे। इतनेमें किसीने आकर भरतको यह खबर दी कि लक्ष्मण और राम वनको चले गये है। यह सुनते ही कांतशरीर भरत मूर्छित होकर, वज्राहत पहाड़की तरह गिर पड़े। उनके मूर्छित होते ही, सब लोगोंके मुख कातर हो उठे। मानो प्रलयकी आगसे संतप्त होकर समुद्र ही गरज उठा हो।"

[७] चन्दनका लेप और चामरधारिणी स्त्रीके हवा करनेपर,

दुक्खु दुक्खु आसासिउ राणउ । जरढ-मियङ्कु व थिउ विहाणउ ॥ २ ॥
अविरल-असु-जलोल्लिय-णायणउ । एम पजम्पिउ गग्गर-वयणउ ॥ ३ ॥
णिवडिय अज्जु असणि आयासहोँ । अज्जु अमङ्गलु दसरह-वसहो ॥ ४ ॥
अज्जु जाउ हउँ मूडिय-पक्खउ । दुह-भायणु पर-मुहहँ उवेक्खउ ॥ ५॥
अज्जु णयरु सिय-सम्पय-मेल्लिउ । अज्जु रज्जु पर-चक्कें पेल्लिउ ॥ ६ ॥
एम पलाउ करेवि सहग्गएँ । राहव-जणणिहेँ गउ ओलग्गएँ ॥ ७ ॥
केस-विसण्ठुल दिट्ठ रुअन्ति । असु-पवाह धाह मेल्लन्ती ॥ ८ ॥

घत्ता

धीरिय भरह-णरिन्दे होउ माएँ महु रज्जें ।
आणमि लक्खण-राम रोवहि काइँ अकज्जें ॥९॥

[८]

एम भणेवि भरहु सञ्चल्लिउ । तुरिउ गवेसहोँ हत्थुत्थल्लिउ ॥ १ ॥
तिण्णु सहासु जय-पडहु पवज्जिउ । ण चन्दुग्गमेँ उवहि पगज्जिउ ॥ २ ॥
पहु-मग्गेण णराहिउ लग्गउ । जीवहोँ कम्मु जेम अणुलग्गउ ॥ ३ ॥
छट्ठएँ दिवसेँ पराइउ तेत्तहेँ । सीय स-लक्खणु राहउ जेत्तहेँ ॥ ४ ॥
सुठु सुठु मलिलु पिएवि णिविट्ठइँ । सरवर-तीरेँ लयाहरेँ दिट्ठइँ ॥ ५ ॥
चलणेहिँ पडिउ भरहु तग्गय-मणु । णाइँ जिणिन्दहोँ दसमय-लोयणु ॥६॥
'थण्णु देव म जाहि पवासहोँ । होहि तरण्डउ दसरह-वसहो ॥ ७ ॥
हउँ सत्तुहणु भिच्च तउ बे वि । लक्खणु मन्ति सीय महएवि ॥ ८ ॥

घत्ता

जिह णक्खत्तेंहिँ चन्दु इन्दु जेम सुर-लोए ।
तिह तुहुँ भुञ्जहि रज्जु परिमिउ बन्धव-लोए ॥९॥

राजा भरत बड़ी कठिनाईसे आश्वस्त हुए। परंतु वह राहु ग्रस्त चन्द्रमाकी तरह म्लान दीख पड़ रहे थे। नेत्रोंसे अविरल अश्रु धारा प्रवाहित हो रही थी। गद्गद स्वरमें उन्होंने कहा, "आज आकाशसे वज्र टूट पडा है। आज दशरथ-कुलका अमंगल आ गया है। आज, अपने पक्षका नाश होनेसे मैं परमुखापेक्षी और दीन हो गया हूँ। आज इस नगरकी श्री और सम्पदा जाती रही। आज हमारे राज्य पर शत्रु-चक्र घूम गया है।" ऐसा प्रलाप कर वह शीघ्र ही रामकी माताकी सेवामें पहुँचे। उन्होंने देखा कि कौशल्याके बाल बिखरे है, आँसुओंकी धारा वह रही है। वह, डाढ़ मारकर रो रही हैं। उन्होंने धीरज बँधाते हुए कहा—"मां लो, मैं राज्य करनेसे रहा, अभी जाकर राम लक्ष्मणको ले आता हूँ। रोती किसलिए हो।" ॥१–९॥

[८] यह कहकर, भरतने (अनुचरोंको) आदेश दिया "शीघ्र खोजो।" वह स्वयं भी चल पड़ा। उसने शंख और जय-पटह बजवा दिये, मानो चन्द्रोदयमे समुद्र ही गरज उठा हो। राजा भरत प्रभु रामके मार्ग पर उसी तरह लग गये जैसे जीवके पीछे पीछे कर्म लगे रहते है। छठे दिन वह वहां पहुँच सके, जहां सीता और लक्ष्मणके साथ राम थे। सरोवरके किनारे पर लतागृहमे, शीघ्र ही पानी पीकर निवृत्त हुए उन्हें भरतने देखा। तल्लीन भरत दौड़कर प्रभु रामके चरणोंमें उसी तरह गिर पड़े जिस तरह इन्द्र जिनेन्द्रके चरणोमे गिर पड़ता है। वह बोले, "देव, ठहरिये, प्रवासको मत जाइये, नहीं तो दशरथकुलका नाश हो जायगा, शत्रुघ्न और मै आपके सेवक है, लक्ष्मण मंत्री, और सीता महादेवी! आप अपने बन्धुजनोंसे घिरे हुए उसी तरह राज्यका भोग करें, जैसे नक्षत्रोंसे चंद्र और सुरलोकसे घिरकर इन्द्र शासन करता है ॥१–९॥

[९]

तं वयणु सुणेंवि दसरह-सुएण । अवगूढु भरहु हरिसिय-भुएण ॥ १ ॥
सच्चउ माया-पिय-परम-दासु । पइँ मेल्लेंवि अण्णहों विणउ कासु' ॥२॥
अवरोप्परु ए आलाव जाम । तहिँ जुवइ-सयहिँ परियरिय ताम ॥३॥
लक्खिज्जइ भरहहों तणिय माय । ण गय-घड भद्द भअन्ति आय ॥ ४ ॥
णं तिलय-विहूसिय वच्छराइ । स-पओहर अम्बर-सोह णाइँ ॥ ५ ॥
ण भरहहों सम्पय-रिद्धि-विद्धि । ण रामहों गमणहों तणिय सिद्धि ॥६॥
ण भरहहों सुन्दर-सोक्ख-खाणि । ण रामहों इट्ठ-कलत्त-हाणि ॥ ७ ॥
जं भणइ भरहु 'तुहुँ आउ आउ । वण-वासहो राहउ जाउ जाउ' ॥ ८ ॥

घत्ता

सु-पय सु-सन्धि सु-णाम वयण-विहत्ति-विहूसिय ।
सह वायरणहो जेम केक्कय एन्ति पदीसिय ॥ ९ ॥

[१०]

सहुँ सीयएँ दसरह-णन्दणेहिँ । जोक्कारिय राम-जणद्दणेहिँ ॥ १ ॥
पुणु वुच्चइ सीर-प्पहरणेण । 'किं आणिउ भरहु अकारणेण ॥ २ ॥
सुणु माएँ महारउ परम-तच्चु । पालेवउ तायहों तणउ सच्चु ॥ ३ ॥
णउ तुरएँहिं णउ रहवरेंहिं कज्जु । णउ सोल्लह वरिसइँ करमि रज्जु ॥४॥
जं दिण्णु सच्चु ताएँ ति-वार । तं मइ मि दिण्णु तुम्ह सय-वार' ॥५॥
एउ वयणु भणेप्पिणु सुह-समिद्धु । सइँ हत्थें भरहहो पट्टु बद्धु ॥ ६ ॥
आउच्छेंवि पर-बल-मद्दण-वट्टु । वण-वासहो राहउ पुणु पयट्टु ॥ ७ ॥
गउ भरहु गियन्तु सु-पुज्जमाणु । जिण-भवण पत्तु भिच्चेंहिँ समाणु ॥८॥

[९] यह सुनकर दशरथ-पुत्र रामने अपनी प्रसन्न भुजाओंसे भरतको हृदयसे लगा लिया, और कहा, "भरत, तुम ही माता-पिताके सच्चे सेवक हो। भला इतनी विनय तुम्हें छोड़कर और किसमें हो सकती है ?" आपसमें उनकी इस तरह बातें हो ही रही थीं कि इतनेमें उन्हें सैकड़ों स्त्रियोंने घेर लिया। उनके बीच आती हुई, भरतकी माँ ऐसी दीख पड़ी मानो भटसमूहको चीरती हुई गजघटा ही आ रही हो। या तिलक वृक्षसे विभूषित वृक्ष राजि हो। या सपयोधर (मेघ और स्तन) अम्बर, कपड़ा, आकाश, की शोभा हो। या मानो भरतकी रिद्धि और वृद्धि हो। या रामके वन-गमनकी सिद्धि हो। या भरतके सुन्दर सुखोंकी खान हो और रामके इष्ट तथा स्त्रीकी हानि हो। मानो वह कह रही थी— "भरत तुम आओ आओ और राम तुम वनवासको जाओ, जाओ।" रामने कैकेयीको व्याकरण-शास्त्रकी तरह जाते हुए देखा, वह, सुपद (पद और पैर) सुसंधि (अंगोंके जोड़ और शब्दोंकी संधिसे युक्त) तथा वचन विभक्ति (तीन वचन, सात विभक्तियाँ, और वचन विभागसे) विभूपित थी ॥१–९॥

[१०] तब दशरथ-पुत्र जनार्दन रामने सीतासहित उसका अभिनन्दन किया। वह बोले, "माँ, भरत तुम्हें अकारण क्यों लाया। माँ, मेरा परमतत्त्व (सिद्धांत) सुनो। मै पिताके वचनका पालन करूँगा। न तो मुझे घोड़ोंसे काम है, और न श्रेष्ठ रथोंसे। तातने जो वचन तुम्हें तीन बार दिया है, उसे मै सौ बार देता हूँ।" यह वचन कहकर, सुख और समृद्धिसे सपन्न उन्होंने राज पट्ट भरतके सिरपर बाँध दिया। तदनन्तर, शत्रु-बलनाशक राम, माँसे पूछकर वहाँसे आगे बढ़ गये। व्यथित मन भरत भी, अपने अनुचरोंके साथ पूज्य जिन-चैत्यमें पहुँचा। भरत तथा

घत्ता

तिहुँ मुणि-धवलहुँ पासेँ भरहे लइउ अवग्गहु ।
'दिट्ठएँ राहवचन्दें मइँ णिवित्ति हय-रज्जहों' ॥९॥

[११]

एम चवेँवि उच्चलिउ महाइउ । राहव-जणणिहेँ भवणु पराइउ ॥१॥
विणउ करेप्पिणु पासु पढुक्किउ । 'रामु माएँ मइँ धरेँवि ण सक्किउ ॥२॥
एवें तुम्हेंवहिँ आणवडिच्छउ । पेसणयारउ चलण-णियच्छउ' ॥३॥
धीरेँवि एम जणणि दणु-दमणहों । भरहु णराहिउ गउ णिय-भवणहों ॥४॥
जाणइ हरि हलहर विहरन्तइँ । तिण्णि मि तावस-वणु संपत्तइँ ॥५॥
तावस के वि दिट्ठ जड-हारिय । कु-जण कु-गाम जेम जड-हारिय ॥६॥
के वि तिडण्डि के वि धाडीसर । कुविय णरिन्द जेम धाडीसर ॥७॥
के वि रुद्द रुद्दक्ख-हत्था । मेट्टु जेम रुद्दक्ख-हत्था ॥८॥

घत्ता

तहिँ पइसन्तें सीय लक्खण-राम-विहूसिय ।
तिहिँ परमेट्ठिहिँ समाण पुण्णिम णाइँ पदीसिय ॥९॥

[१२]

अण्णु वि थोवन्तरु विहरन्तइँ । वणु धाणुक्कहँ पुणु संपत्तइँ ॥१॥
जहिँ णागरउ सय-सव-णियधउ । वरहिण-पिञ्छ-पसाहिय-हत्थउ ॥२॥
दन्त-मुत्त-चडु-रणरुञ-भुञ्जउ । सिरेँ-चड-माल बद्ध गलेँ गुञ्जउ ॥३॥
जहिँ पुवउ हुहु जाय विराहउ । मयसरि-रय वग्घट्ठिय-चाहउ ॥४॥
सयपहि-कुम्भु करेप्पिणु उसलु । लेवि विसाण-सुसलु धवलुज्जलु ॥५॥
मोत्तिय-चाउल-दण्णोवइयउ । चुम्बिय-वयणउ सयणब्भइयउ ॥६॥

शत्रुघ्न, दोनोंने धवल मुनिके पास जाकर यह प्रतिज्ञा ग्रहण की कि रामके देखनेपर (वनसे वापस आते ही।) हय और राज्यसे निवृत्त हो जायँगे।"

[११] (उक्त व्रत लेकर) भरतने वहाँसे प्रस्थान किया और वह सोधे रामकी माताके भवनमे पहुँचे। पास जाकर उन्होंने विनय की, "माँ, मै रामको नहीं ला सका, मैं तुम्हारा आज्ञाकारी, सेवक और चरणोंका दास हूँ।" उन्हे इस तरह धीरज बँधाकर, भरत अपने भवनको चले गये। इधर राम जानकी और लक्ष्मण तीनों ही घूमते हुए तापस वनमे जा पहुँचे। उसमे तरह-तरहके तपस्वी थे। वहाँ पर कितने ही तपस्वी जटाधारी दिखाई दिये जो कुजन और खोटे गाँवकी तरह-जड़हारिय (मूर्ख और जटाधारी) थे। कोई त्रिदंडी और धाड़ीश्चर थे जो कुपित राजाकी तरह धाड़ीसर (तीर्थ जानेवाले, जोरसे चिल्लानेवाले !!!) कोई त्रिशूल हाथमे लिये रुद्र थे, जो महावतकी तरह रुद्राकुंश (अंकुश और त्रिशूल लिये थे। वहाँपर लक्ष्मण और रामसे विभूषित सीता इस प्रकार प्रतिष्ठित हो रही थी जिस प्रकार समान दोनों पक्षोंके मध्य पूर्णिमा प्रतिष्ठित हो ॥१-६॥

[१२] थोड़ी दूर और आगे जानेपर उन्हें धानुष्क वन मिला, वहाँके लोग मृगचर्म और कांबलीसे अपनेको ढके हुए थे, उनके हाथ मोर पंखोंसे सजे थे। कंदमूल और बहुतसे वनफल ही उनका भोजन था, उनके सिरपर वटकी माला, और गलेमे गुञ्जे पड़े थे। वहाँ युवतियोंकी शादी छुटपनमे शीघ्र हो जाती थी। उनके हाथोंमे हाथीदाँतकी चूड़ियाँ थी। वे हाथियोंके कुंभ-स्थलोंकी ओखलियोंमें हाथीदांतके बने सफेद मूसलोंसे मोतीरूपी चावलोंको कूट रही थी। कामसे उत्तेजित होकर वे शीघ्र मुँह

तं तेहउ वणु भिल्लहुँ केरउ । हरि-बलएवेंहिँ किउ विवरेरउ ॥७॥

घत्ता

तं मेल्लेंवि घरवार लोयहिँ हरिसिय-देहेहिँ ।
छाइय लक्खण-राम चन्द-सूर जिम मेहेहिँ ॥८॥

[१३]

स-हरि स-भज्जउ रामु धणुद्धरु । अण्णु वि जाम जाइ थोवन्तरु ॥१॥
दिट्ठ गोट्ठय णाइँ सु-धेनइँ । णं णरवइ-मन्दिरइँ सु-वेसइँ ॥२॥
जुज्झन्तइँ डेक्कार मुअन्तइँ । णलिणि-मुणाल-सण्ड तोडन्तइँ ॥३॥
कत्थइ वच्छ-हणइँ णीसङ्कइँ । पव्वइयाइँ व णिरु णीसङ्कइँ ॥४॥
कत्थइ जणवउ सिसिरें चच्चिउ । पढम-सूइ सिरें धरेंवि पणच्चिउ ॥५॥
कत्थइ मन्था-मन्थिय-मन्थणि । कुणइ सद्दु सुरउ व विलासिणि ॥६॥
कत्थइ णारि-णियम्बें सुहासिउ । णावइ कुडउ कुणइ सुहवासिउ ॥७॥
कत्थइ डिम्भउ परियन्दिज्जइ । अब्भाहीरउ गेउ झुणिज्जइ ॥८॥

घत्ता

तं पेक्खेप्पिणु गोट्ठु णारायण-परियरियउ ।
णावइ तिहि मि जणेंहिँ बालत्तणु सम्भरियउ ॥९॥

[१४]

तं मेल्लेप्पिणु गोट्ठु रवण्णउ । पुणु वणु पइसरन्ति आरण्णउ ॥ १ ॥
जं फल-पत्त-रिद्धि-सम्पण्णउ । सरल-तमाल-ताल-संछण्णउ ॥ २ ॥
वण जिणालय जहा स-चन्दणं । जिणिन्द-सासण जहा स-सावय ॥ ३ ॥
महा-रणङ्गणं जहा सवारण । मइन्द-कन्धरं जहा स केसर ॥ ४ ॥
फणिन्द-मन्दिर जहा स-माउय । सुमङ्ग-णच्चिय जहा स-तालय ॥ ५ ॥

चूम लेती थीं। भीलोंकी ऐसी उस बस्तीमें राम और लक्ष्मणने निवास किया। उन्हें देखकर भील बहुत प्रसन्न हुए, और पुलकित होकर उन्होंने उनकी कुटियाको ऐसे घेर लिया, मानो सूर्य और चन्द्रको मेघोंने घेर लिया हो ॥१-८॥

[१३] भाई लक्ष्मण और पत्नी सीताके साथ थोड़ी दूर और जानेपर रामको सुवेश गोठ ऐसे दीख पड़े मानो शोभन द्वार और झंपन सहित राजभवन ही हो। कहीं पशु ढेक्कार ध्वनि करके लड़ रहे थे। कही पर सींग रहित बछड़े ऐसे जान पड़ते थे मानो निसंग (परिग्रह रहित) नये दीक्षित साधु ही हों। कहीं लोग दधिसे अर्चित थे, कही नई धानोंके अंकुरको सिरपर रखकर नाच रहे थे। कहीं मट्ठा विलोनेवाली मथानी, विलासिनी स्त्रीकी सुरतिकी तरह मधुर ध्वनि कर रही थी, कहीपर नारी-नितम्ब ऐसे शोभित थे मानो मुख सुवासित नागवृक्ष ही हो। कहीं पालने में बच्चे झुलाये जा रहे थे। और उनकी सुंदर लोरियाँ सुनाई पड़ रही थीं। स्त्रियोंसे घिरे हुए उस गोठको देखकर, उन तीनोंको जैसे अपने बचपनकी याद आ गई ॥१-९॥

[१४] उस गोठ स्थानको छोड़कर, भयानक वनके भीतर उन्होंने प्रवेश किया। वह वन फल और पत्तोंसे संपन्न था। तरला तमाल और तालके पेड़ोंसे आच्छन्न था। वह वन जिनालयके समान चंदन (चंदन और पीपल) से सहित था, जिनशासनकी तरह सावय (श्रावक और श्वापद—कुत्ता) से युक्त था। महायुद्धके आँगनकी तरह, वासन (मांस और वृक्षविशेष) से सहित था। सिंहके कंधेकी तरह, केशर (अयाल और एक वृक्ष लता) से युक्त था, राजभवनकी तरह माउय (मंजरी और वृक्ष विशेष) से सहित था, सुनिबद्ध नाट्यकी तरह, ताल (ताल और इस नामका

पेड़) से युक्त था। जिनेन्द्रके अभिषेककी तरह महासर (स्वर, और सरोवर) से सहित था। कुतापसके तपकी तरह, मदासव (मद्य और मृग) से युक्त था। मुनीन्द्रके वचनकी तरह, मोक्ष (मुक्ति और इस नामके वृक्ष) से सहित था। आकाशके आँगनकी तरह सोम (चंद्र और वृक्षविशेष) से सहित था। चंद्रबिम्बकी तरह मयासय (मद और मृग) से आश्रित था, विलासिनीके मुखकी तरह महारस (लावण्य और जल) से युक्त था। उस वनको इसी तरह छोड़ते हुए वे लोग इन्द्रकी दिशासे अग्रसर हुए और दो माहमें ही चित्रकूटमें पहुँच गये ॥१–६॥

[१५] चित्रकूटको भी तुरत छोड़कर उन लोगोंने दसपुर नगरकी सीमाके भीतर प्रवेश किया। वहाँ उन्हें कमलोंसे भरा सरोवर मिला। वह सरोवर सारस हंसमाला और बगुलोंसे चुम्बित हो रहा था। उद्यान बढ़िया पत्तोंसे शोभित थे, मुनिवरों-की तरह जो अच्छे फलों और पत्तोंवाले थे, सुविभाजित शालि उपवन सुभक्तकी तरह ऐसे प्रणाम कर रहे थे मानो जिन-भक्तिसे भरे हुए श्रावक हों। लम्बे आकारवाले ईखके वन खोटी स्त्रीकी तरह, णियवइ (पति और वाटिका) का उल्लंघन कर रहे थे। कमल और नव नीलोत्पलके समान राम और लक्ष्मणने उसमें प्रवेश करते हुए एक सीरकुटुम्बिक नामके आदमीको देखा। वह शिकारीसे भयभीत हिरनकी तरह विपन्न था। उसके बाल बिखरे हुए थे और आखें चंचल। उसके प्राण सहमे-से थे और चेहरा विद्रूप था। कुमार लक्ष्मण, सूँडके समान प्रचंड अपने हाथों पर, मरते हुए उसे उठाकर रामके पास ले आये ॥१–६॥

२५. पञ्चवीसमो संधि

धणुहर-हत्थेँण दुव्वार-वइरि-आयामें ।
सीरकुडुम्बिउ मम्भीसेँवि पुच्छिउ रामें ॥ १ ॥

[१]

दुद्दम-दाणविन्द-मद्दण-महाहवेण ।
भो भो कि पिसन्थुलो वुत्तु राहवेण ॥ १ ॥

त णिसुणेवि पजम्पिउ गहवइ । वज्जयण्णु णामेण सु-णरवइ ॥ २ ॥
सीहोयरहों भिच्चु हियइच्छिउ । भरहु व रिसहहों आणवडिच्छिउ ॥३॥
दसउर - णाहु जिणेसर - भत्तउ । पियवद्धणह पासेँ उवसन्तउ ॥४॥
जिणवर - पडिमङ्गुट्ठएँ लेप्पिणु । अण्णहों णवइ ण णाहु मुएप्पिणु ॥५॥
ताम कु-मन्तिहिँ कहिउ णरिन्दहों । "पइँ अवगण्णेँवि णवइ जिणिन्दहों"॥६॥
त णिसुणेवि वयणु पहु कुद्धउ । ण खय-कालेँ कियन्तु विरुद्धउ ॥७॥
कोवाणल - पलित्तु सीहोयरु । ण गिरि-सिहरेँ मइन्द-किसोयरु ॥८॥
'जो मइँ मुएँवि अण्णु जयकारइ । सो कि हय गय रज्जु ण हारइ ॥९॥

घत्ता

अह कि वहुएँण कल्लएँ दिणयरेँ अत्थन्तएँ ।
जइ ण वि मारमि तो पइसमि जलणेँ जलन्तएँ ॥१०॥

[२]

पइज करेवि जाम पहु आहवे अभङ्गो ।
ताम पइट्ठु चोरु णामेण विज्जुलङ्गो ॥ १ ॥

पइसन्ते रयणिहेँ मज्झयालेँ । अलिउल-कज्जल-सण्णिह-तमालेँ ॥२॥
तें दिट्ठु णराहिउ विप्फुरन्तु । पलयाणलो व्व धगधगधगन्तु ॥ ३ ॥

२५. पच्चीसवीं सन्धि

दुर्वार बैरीके लिए समर्थ, हाथमे धनुप लिये हुए रामने, अभय देकर सीरकुटुम्बिकसे पूछा।

[१] दुर्दम दानवेंद्रका मर्दन करनेवाले महायोधा रामने उससे पूछा, "तुम विपन्न क्यों हो ?" यह सुनकर वह गृहपति बोला—"वज्रकर्ण नामका एक अच्छा राजा है, वह सिंहोदरका उसी तरह अधीन अनुचर है जिस तरह भरत ऋषभ जिनका आज्ञाकारी था। "दशपुरका वह शासक जिनेन्द्र-भक्त है। एक बार उसने प्रियवर्धन मुनिके पास, जिन-प्रतिमाका अंगूठा छूकर यह प्रतिज्ञा की कि मैं जिनवरको छोड़कर किसी दूसरेको प्रणाम नहीं करूँगा। यह बात किसी (चुगलखोर) कुमंत्रीने जाकर राजा सिंहोदरसे जड़ दी कि वज्रकर्ण आपकी अवहेलना करके केवल जिनको ही नमस्कार करता है।" यह सुनकर राजा सिंहोदर क्रोधकी आगसे ऐसे उबल पड़ा मानो किसी पर्वतकी चोटीपर कोई सिंह-शावक ही गरजा हो। उसने कहा, "जो मुझे छोड़कर किसी दूसरेकी जय करता है, उसे अपने हय गय राज्यसे क्यो न वंचित किया जाय। अधिक कहनेसे कोई लाभ नही। यदि कल सूर्यास्त होनेके पहले मै उसे न मार पाया तो (निश्चय) ही आगमे प्रवेश-कर लूँगा।" ॥१–१०॥

[२] युद्धमे अचल सिंहोदर जब यह प्रतिज्ञा कर ही रहा था कि विद्युदंग नामका चोर (उसके महलमे) घुस आया। भ्रमर-समूह या काजलकी तरह अत्यंत काली उस भव्य निशामे प्रवेश करते हुए विद्युदंगने राजा सिंहोदरको प्रलयाग्निकी तरह धधकते

रोमञ्च - कञ्चु - कञ्चुइय - देहु । जल-गब्भिणु ण गज्जन्तु मेहु ॥ ४ ॥
सण्णद्ध - बद्ध - परियर - णिबन्धु । रण-भर-धुर-धोरिउ दिण्ण-खन्धु ॥५॥
वलिवण्ड-मण्ड - णिड्डुरिय - णयणु । दट्ठोट्ठु सुद्धु-विप्फुरिय - वयणु ॥ ६ ॥
"मारेवउ रिउ' जम्पन्तु एम । खय-कालें सणिच्छरु कुविउ जेम ॥७॥
'त पेक्खेंवि चिन्तइ भुअ - विसालु । "किं मारमि ण ण सामिसालु ॥८॥
साहम्मिय - वच्छलु किं करेमि । सव्वायरेण गम्पिणु कहेमि" ॥ ९ ॥
गउ एम भणेवि कण्टइय - गत्तु । णिविसद्धें दसउर-णयरु पत्तु ॥ १० ॥

घत्ता

दुद्दु अरुणुग्गमें सो विज्जुलङ्गु धावन्तउ ।
दिट्ठु णरिन्दें जस-पुञ्जु णाइँ आवन्तउ ॥११॥

[३]

पुच्छिउ वज्जयण्णेंण हसेवि विज्जुलङ्गो ।
"भो भो कहिँ पयट्टु वहु-बहल-पुलइयङ्गो" ॥१॥

तं णिसुणेप्पिणु वयण - विसाले । वुच्चइ वज्जयण्णु कुसुमाले ॥ २ ॥
"कामलेह - णामेण विलासिणि । तुङ्ग-पओहर जण-मण-भाविणि ॥३॥
तहेँ आसत्तउ अत्थ - विवज्जउ । कारणें मणि-कुण्डलहेँ विसज्जिउ ॥४॥
पुणु विज्जाहर - करणु करेप्पिणु । गउ सत्त वि पायार कमेप्पिणु ॥५॥
फिर वर - भवणु पईसमि जावँहिँ । पइज करन्तु राउ सुउ तावँहिँ ॥६॥
हउँ वयणेण तेण आदण्णउ । वट्टइ वज्जयण्णु उच्छण्णउ ॥ ७ ॥
साहम्मिउ जिण - सासण - दीवउ । एम भणेप्पिणु वलिउ पडीवउ ॥८॥
पुणु वि वियड - पय-छोहेंहिँ धाइउ । णिविसें तुम्हहुँ पासु पराइउ ॥ ९ ॥

घत्ता

किं ओलग्गएँ जाणन्तु वि राय म मुज्झहि ।
पाण लएप्पिणु जेंम णासहि रणेँ जुज्झहि ॥ १० ॥

हुए उद्दीप्त देखा। उसका शरीर रोमांचसे कटीला हो रहा था। वह इस प्रकार गरज रहा था मानो सजल मेघ ही गरज रहा हो। अत्यंत समर्थ उसने समूचा परिकर बाँध रखा था। युद्धकी सामग्रीसे सजी हुई सेना तैयार खड़ी थी। उसके नेत्र (सचमुच) बलशाली जबर्दस्त और डरावने थे। वह अपने होठ चबा रहा था। उसका चेहरा तमतमा रहा था। क्षय कालके शनि देवता की तरह अत्यन्त क्रुद्ध वह कह रहा था कि शत्रु को मारो। तब विद्युदंगने सोचा कि मैं इसे मार दूँ। नहीं नही, यह श्रेष्ठ स्वामी है, पर वज्रकर्ण भी मेरा साधर्मी भाई है। तब क्या करना चाहिए। क्या फौरन जाकर उसे बता दूँ। यह विचार कर पुलकित शरीर वह चल पड़ा। आधे ही पलमे दशपुर पहुँच गया। सूर्योदय बेलामे राजा वज्रकर्णने देखा कि विद्युदंग इस तरह दौड़ता हुआ आ रहा है, मानो उसका यशपुंज ही हो ॥१–११॥

[३] वज्रकर्णने हँसकर उससे पूछा "इतने अधिक प्रसन्न और पुलकित कहाँसे आ रहे हो"। यह सुनकर, विशालमुख विद्युदंग चोर ने कहा, "तुंग पयोधरा और जनमनको लुभानेवाली, कामलेखा नाम की एक वेश्या है। मैं उस पर आसक्त हूँ। पर धनके अभाव मे जब मैं उसके लिए मणिकुंडल नहीं बनवा सका तो उसने मुझे ठुकरा दिया। तब मैं मन्त्रका प्रयोग कर, सातों ही परकोटोंको लांघता (राजा सिंहोदर) के महलमें घुस गया। घुसते ही राजा सिंहोदरकी प्रतिज्ञा सुनकर मैं विकल हो उठा। (मैं समझ गया) कि अब वज्रकर्णका अन्त होने वाला है। यह सोचकर कि तुम साधर्मी और जिनधर्मके दीपक हो, मैं (यह कहनेके लिए) लौट पड़ा। और परक्षोभसे दौड़कर पलमात्रमे तुम्हारे पास आया हूँ। उसकी सेवामें क्या रक्खा है। यह समझ लो और उससे ऐसा युद्ध करो कि वह समाप्त ही हो जाय ॥१–१०॥

[४]

अहवइ काइँ बहु जम्पिएण राया ।
पर-बलेँ पेक्खु पेक्खु उट्ठन्ति धूलि-छाया ॥१॥

पेक्खु पेक्खु आवन्तउ साहणु । गलगज्जन्तु महागय-वाहणु ॥ २ ॥
पेक्खु पेक्खु हिसन्ति तुरङ्गम । णहयलेँ विउलेँ भमन्ति विहङ्गम ॥३॥
पेक्खु पेक्खु चिन्धइँ धुव्वन्तइँ । रह-चक्कइँ महियलेँ खुप्पन्तइँ ॥ ४ ॥
पेक्खु पेक्खु वज्जन्तइँ तूरइँ । णाणाविह-णिणाय-गम्भीरइँ ॥ ५ ॥
पेक्खु पेक्खु सय सङ्ख रसन्ता । णाइँ सदुक्खुउ सयण रुअन्ता ॥६॥
पेक्खु पेक्खु पचलन्तउ णरवइ । गह-णक्खत्त-मज्झे रवि णावइ" ॥७॥
दसउर-णाहु णिहालइ जावेँहिँ । पर-बलु सयलु विहावइ तावेँहिँ ॥८॥
"साहु साहु" तो एम भणेप्पिणु । विज्जुलङ्गु णिउ आलिङ्गेप्पिणु ॥ ९ ॥
थिउ रण भूमि पसाहेँवि जावेँहिँ । सयलु वि सेण्णु पराइउ तावेँहिँ ॥१०॥

घत्ता

असरिस-कुद्धेँहिँ चउपासेँहिँ णरवर-विन्देँहिँ ।
वेढिउ पट्टणु जिम महियलु चउहिँ समुद्देँहिँ ॥ ११ ॥

[५]

किय जय मारि-सज्ज पक्खरिय वर-तुरङ्गा ।
कवय-णिबद्ध जोह अब्भिट्ट पुलइयङ्गा ॥ १ ॥

अब्भिट्टु जुज्झु विण्ह वि बलाहँ । अवरोप्परु वड्ढिय-कलयलाहँ ॥ २ ॥
वज्जन्त-तूर-कोलाहलाहँ । उब्बोह-चडाविय-मयगलाहँ ॥ ३ ॥
सुरकम्मेल्ल-सर-सव्वलाहँ । भुअ-छिण्ण-भिण्ण-वच्छत्थलाहँ ॥४॥
लोट्टाविय-धय-मालाउलाहँ । पडिपहर-विहुर-विहलङ्घलाहँ ॥५॥
णिठ्ठुरिय-णयण-डसियाहराहँ । असि-झस-सर-सत्ति-पहरण-धराहँ ।६।
सुपमाण-चाव-कड्ढिय-कराहँ । गुण-दिट्ठि-मुट्ठि-सन्धिय-सराहँ ॥७॥
दुव्वोट्ट-थट्ट-लोट्टावणाहँ । कायर-णर-मण-सन्तावणाहँ ॥ ८ ॥

[४] अथवा इस तरह बहुत कहनेसे क्या लाभ? देखो देखो, राजन्, शत्रु-सेनाकी धूलि-छाया उठ रही है। देखो देखो, सेना आ रही है। महागजोंके वाहन गरज रहे हैं। देखो, देखो, घोड़े हींस रहे हैं और पक्षी आकाशमें उड़ रहे हैं। देखो देखो, पताकाएँ उड़ रही हैं और रथ-चक्र धरतीमें गड़े जा रहे हैं। देखो देखो, नाना स्वरोंसे गंभीर तूर बाजे बज रहे हैं और सैकड़ों शखोंकी ध्वनि हो रही है मानो दुखी स्वजन ही रो रहे हों। देखो देखो, नरपति ऐसे चला आ रहा है, मानो ग्रह और नक्षत्रोंके बीचमें शनि ही हो।" दशपुर-स्वामी वज्रकर्णने ज्यों ही मुड़ा, तो उसे शत्रु सेना आती हुई दिखाई दी। "साधु-साधु" कहकर उसने विद्युदंग को अपने हृदयसे लगा लिया। सज्जित होकर जैसे ही वह रणक्षेत्रमें पहुँचा वैसे ही समस्त सेना आ पहुँची। अमर्ष और क्रोधसे भर राजाओंने नगरको चारों ओरसे वैसे ही घेर लिया जैसे समुद्र धरती को घेरे हुए है॥ १–११॥

[५] अम्बारीसे सजे हाथी और कवच पहने घोड़े तैयार थे। सनद्ध योधा पुलकित होकर भिड़ गये। दोनों दलोंमें लड़ाई ठन गई। बजते हुए नगाड़ोंका कोलाहल होने लगा। हाथी फूलोंसे सजे हुए थे। वे एक दूसरे पर सव्वल और वाण फेंक रहे थे; हाथोंसे वक्षःस्थल छिन्न-भिन्न हो रहे थे। पताकाओंकी पंक्तियाँ लोट-पोट हो रही थीं। प्रहार और प्रति प्रहारोंसे सैनिक खिन्न और विकलांग हो रहे थे। दोनोंके नेत्र भयंकर थे। उनके ओठ काँप रहे थे। तलवार झष सर और शक्ति आदि आयुधोंसे दोनों ही लैस थे। वे डोरी खींचे हुए और तलवार निकाले हुए थे। उनकी दृष्टि डोरी मुट्ठी और तीरोंके संधान पर थी। गजघटाओंको लोट-पोट कर देनेवाले वे कायरोंके मनको अधिक सताने वाले थे।

जयकारहों कारणें दुद्धराहँ । रणु वज्जयण्ण-सीहोयराहँ ॥ ९ ॥

घत्ता

बिहि मि भिडन्तहिँ समरङ्गणेँ दुन्दुहि वज्जइ ।
बिहि मि णरिन्दहँ रणेँ एक्कु वि जिणइ ण जिज्जइ ॥ १० ॥

[६]

"हणु हणु [हणु]" भणन्ति हम्मन्ति आहणन्ति ।
पउ वि ण ओसरन्ति मारन्ति रणेँ मरन्ति ॥ १ ॥

उहय-बलेँहिँ पडियग्गिम-खन्धइँ । उहय-बलेँहिँ णच्चन्ति कबन्धइँ ॥२॥
उहय-बलेँहिँ मुसुमूरिय धयवड । उहय-बलेँहिँ लोट्टाविय भड-थड ॥३॥
उहय-बलेँहिँ हय गय विणिवाइय । उहय-बलेँहिँ रहिरोह पधाइय ॥४॥
उहय-बलेँहिँ णित्तसिय खग्गइँ । उहय बलेँहिँ डेवन्ति विहङ्गइँ ॥ ५ ॥
उहय-बलेँहिँ णीसद्दइँ तूरइँ । उहय-बलइँ पहरण-खर-विहुरइँ ॥६॥
उहय-बलइँ गय-दन्तेँहिँ भिण्णइँ । उडय-बलइँ रण-भूमि-णिसण्णइँ ॥७॥
उहय-बलइँ रुहिरोल्लिय-गत्तइँ । हक्क-टक्क-लल्लक्क मुअन्तइँ ॥ ८ ॥
एम पवत्तु वट्टइ सङ्गामहों । अक्खइ सीरकुडुम्बिउ रामहों ॥९॥

घत्ता

त णिसुणेप्पिणु मणि-मरणय-किरण-फुरन्तउ ।
दिण्णु ज हत्थेँण कण्ठउ कडउ कडिसुत्तउ ॥ १० ॥

[७]

पुणु मचल वे वि बलएव-वासुएवा ।
जाणइ-करिणि-सहिय गय गिल्ल-गण्ड जेवा ॥ १ ॥

णाय-विहूय महन्य महाइय । सहसकूडु जिणभवणु पराइय ॥२॥
ज छुट्टाल-धवल-छुह-पङ्किउ । सज्जण-हियउ जेम अकलङ्किउ ॥३॥
ज उत्तुङ्ग-सिहरु सुर-कित्तिउ । वण्ण-विचित्त-चित्त-चिर-चित्तिउ॥४॥

वज्रकर्ण और सिंहोदर दोनोंका विजयके लिए अत्यन्त कठोर युद्ध हो रहा था। युद्ध छिड़ने पर दोनोकी दुंदुभि बज रही थी। उन दोनों राजाओंमें से एक भी न तो जीत रहा था और न जीता जा रहा था ॥ १–१० ॥

[६] योधा 'मारो मारो' कहकर, मरते और मारते, परन्तु वे एक भी कदम पीछे नहीं हटाते थे, भले ही युद्धमे मारते-मारते मरते जा रहे थे। दोनों ही दल आगे बढ़ते हुए धड़ोको नचा रहे थे। दोनों दलोंने एक दूसरेके ध्वजपटोको मसल दिया। भट-समूह को गिरा दिया, और अश्व-गजोको भूमिसात् कर दिया। रक्तकी धारा प्रवाहित हो उठी। दोनो दलोंने अपनी अपनी तीखी तलवारें निकाल लीं, दोनोने पत्तियोको कॅपा दिया। दोनो दलोने अपने तीखे प्रहारोसे दुंदुभियोंको छिन्न-भिन्न कर, निःशब्द कर दिया। हाथियोंके दंतप्रहारसे दोनो छिन्न-भिन्न हो गये। दोनो दल युद्ध-भूमिमे सो-से गये। दोनो दल रक्तरंजित शरीर थे। दोनो दल, एक दूसरे पर हुंकारते ललकारते और चुनौती देते हुए मरने लगे।" सीरकुटुम्बिकने रामसे कहा, "इस प्रकार युद्ध होते-होते एक पखवाड़ा हो गया है।" कि यह सुनकर रामने उसे अपने हाथ से मणि और हीरोकी किरणोसे जगमगाता हुआ कंठहार तथा कटक और कटिसूत्र दिया ॥१–१०॥

[७] फिर वे दोनों (वासुदेव और बलभद्र) सीताको साथ लेकर उसी प्रकार चले जिस प्रकार मत्तगज हथिनीको साथ लेकर चलता है। हाथमे धनुष लिये, परम आदरणीय राम सहस्रकूट जिन-भवनमें पहुँचे, वह जिन-भवन ईटो और सफेद चूनासे निर्मित, सज्जनके हृदयके समान निष्कलंक था। उसकी शिखरें देवोंकी कीर्तिकी तरह ऊँची थीं। विविध और चित्र-विचित्र

तं जिणभवणु णियवि परितुट्टइँ । पयहिण देवि ति-वार वइट्टइँ ॥५॥
तहिँ चन्दप्पह-बिम्बु णिहालिउ । जं सुरवरतरु-कुसुमोमालिउ ॥ ६ ॥
जं णागेन्द - सुरेन्द - णरिन्दहिँ । वन्दिउ मुणि-विज्जाहर-विन्दहिँ ॥७॥
दिट्टु सु-सोहिउ सोम्मु सु-दसणु । अण्णु मि सेय-चमरु सिंहासणु ॥८॥
छत्त-त्तउ असोउ भा-मण्डलु । लच्छि-विहूसिउ वियड-उरत्थलु ॥९॥

घत्ता

किं बहु (ए)-चविएँण जगेँ को पडिबिम्बु दविज्जइ ।
पुणु वि पडीवउ जइ णाहेँ णाहुवमिज्जइ ॥ १० ॥

[८]

जं जग - णाहु दिट्टु बल - सीय - लक्खणेहि ।
तिहि मि जणेहिँ वन्दिओ विविह - वन्दणेहि ॥ १ ॥

'जय रिसह दुसह - परिसह-सहण । जय अजिय अजिय-वम्मह-महण ॥२॥
जय संभव संभव - णिद्दलण । जय अहिणन्दण णन्दिय - चलण॥३॥
जय सुमइ - भडारा सुमइ - कर । पउमप्पह पउमप्पह - पवर ॥ ४ ॥
जय सामि सुपास सु - पास - हण । चन्दप्पह पुण्ण-चन्द - वयण ॥ ५ ॥
जय जय पुप्फयन्त पुप्फच्चिय । जय सीयल सीयल-सुह-सचिय ॥६॥
जय सेयङ्कर सेयंस - जिण । जय वासुपुज्ज पुज्जिय-चलण ॥ ७ ॥
जय विमल - भडारा विमल - मुह । जय सामि अणन्त अणन्त-सुह ॥८॥
जय धम्म - जिणेसर धम्म - धर । जय सन्ति-भडारा सन्ति-कर ॥ ९ ॥
जय कुन्थु महत्थुइ - थुअ - चलण । जय अर-अरहन्त महन्त-गुण ॥१०॥
जय मल्लि महल्ल - मल्ल - मलण । मुणि सुव्वय सु-व्वय सुद्ध-मण' ॥११॥

रंगोसे चित्रित उस जिन-भवनको देखकर, राम बहुत संतुष्ट हुए। वह तीन प्रदक्षिणा देकर बैठ गये। वहाँ उन्होंने चन्द्रप्रभुकी अत्यंत शोभित दर्शनीय और सौम्य प्रतिमाके दर्शन किये। वह प्रतिमा कल्पवृक्षके फूलोंसे अर्चित और नागेन्द्र सुरेन्द्र नरेन्द्र मुनि तथा विद्याधरों-द्वारा वंदित थी। और भी उन्होंने वहाँ, सफेद चमर, सिंहासन, छत्र, अशोकवृक्ष तथा विस्तीर्ण शोभासे अंकित भामंडल देखा। बहुत कहनेसे क्या, जगमें कैसी भी प्रतिमा स्थापित हो जाय, फिर भी भगवान्से उसकी उपमा नहीं दी जा सकती ॥ १-१० ॥

[८] राम लक्ष्मण और सीताने जगन्नाथ-जिनके दर्शन कर विविध वंदनाओंसे उनकी भक्ति प्रारम्भ की, "दुःसह परिषहोंको सहन करने वाले ऋषभ, आपकी जय हो। अजेय कामका दलन करने वाले अजितनाथकी जय हो। जन्मनाशक संभवनाथकी जय हो। नंदितचरण अभिनंदनकी जय हो। सुमतिदाता भट्टारक सुमतिकी जय हो। पद्मकी तरह कीर्तिवाले पद्मनाथकी जय हो। बंधन काटने वाले सुपार्श्वनाथकी जय हो। पूर्णचन्द्रकी तरह मुख वाले चंद्रप्रभुकी जय हो। फूलोंसे अर्चित, पुष्पदन्तकी जय हो, शीतलसुखसे अंचित्त शीतलनाथकी जय हो। कल्याणकर्ता श्रेयांस-नाथकी जय हो। पूज्यचरण वासुपूज्यकी जय हो। पवित्रमुख भट्टारक विमलकी जय हो। अनंतसुखनिकेतन अनंतनाथकी जय हो। धर्मधारी धर्मनाथकी जय हो। शांतिदाता भट्टारक शांतिनाथ की जय हो। महास्तुतियोंसे वंदित-चरण कुंथुनाथकी जय हो। महागुणोंसे संपन्न अरहनाथकी जय हो। बड़े-बड़े योधाओंको पछाड़ने वाले मल्लिनाथकी जय हो। सुव्रती और शुद्धमन मुनि-सुव्रतकी जय हो। इस प्रकार बीस जिनवरोंकी वंदना करके

घत्ता

वीस वि जिणवर वन्देप्पिणु रामु वइट्टइ ।
जहिँ सीहोयरु तं णिलउ कुमारु पइट्टइ ॥ १२ ॥

[९]

ताम णरिन्द - बारे थिर थोर - बाहु - जुअलो ।
सो पडिहारु दिट्टु सद्दत्थ - देसि - कुसलो ॥ १ ॥

पइसन्तु सुहडु ते धरिउ केम । णिय-समउ लवणसमुद्दु जेम ॥२॥
तं कुविउ वीरु विप्फुरिय - वयणु । विहुणन्तु हत्थ णिट्ठुरिय-णयणु ॥३॥
मणें चिन्तइ वइरि - समुद्द - महणु । 'किं मारमि ण ण कवणु गहणु' ॥४॥
गउ एम भणेवि भुइ - दण्ड-चण्डु । ण मत्त-महागउ गिल-गण्डु ॥ ५ ॥
तं दसउर - णयरु पइट्टु केम । जण-मण-मोहन्तु अणङ्गु जेम ॥ ६ ॥
दुव्वार - वइरि - सय - पाण-चोरु । णीसरिउ णाइँ केसरि-किसोरु ॥७॥
जं लक्खणु लक्खिउ राय - बारें । पडिहारु वुत्तु 'म म णिवारें' ॥८॥
तं वयणु सुणेवि पइट्टु वीरु । चक्कवइ-लच्छि-लञ्छिय - सरीरु ॥९॥

घत्ता

दसउर - णाहेण लक्खिज्जइ एन्तउ लक्खणु ।
सिद्ध - जिणिन्दें ण धम्मु अहिंसा - लक्खणु ॥१०॥

[१०]

हरिसिउ वज्जयण्णु दिट्ठें ण लक्खणेण ।
पुणु पुणु णेह - णिब्भरो चविउ तक्खणेण ॥ १ ॥

'किं देमि हत्थि रह तुरय - थट्ट । विच्छुरिय-फुरिय-मणि-मउड-पट्ट ॥२॥
किं वत्थेंहिँ किं रयणेहिँ कज्जु । किं णरवर-परिमिउ देसि रज्जु ॥३॥
किं देमि स - विब्भमु पिण्डवासु । किं स-सुउ स-कन्तउ होमि दासु' ॥४॥
तं वयणु सुणेवि हरिसिय - मणेण । पडिवुत्तु णराहिउ लक्खणेण ॥ ५ ॥

राम वहीं बैठ गये। परन्तु लक्ष्मण उस भवनमें घुसे जहाँ सिंहोदर था ॥ १–१२ ॥

[९] इतनेमें राजाके द्वारपर एक प्रतिहार दिखाई दिया। स्थिर और स्थूल बाहुओं वाला वह शब्द अर्थ और देशी बोलीमें बड़ा कुशल था। आते हुए इस सुभटको उसने उसी तरह पकड़ लिया जिस तरह लवण-समुद्रको उसकी वेला ग्रहण करती है। इससे वह कुपित होकर तमतमा उठा। वह हाथ हिलाने लगा। उसके नेत्र भयानक हो उठे। शत्रु-समुद्रका मथन करनेवाला वह (लक्ष्मण) मनमें सोचने लगा, "क्या मार दूँ, नहीं, नहीं इससे क्या मिलेगा ?" यही विचारकर बाहुओंसे प्रचंड, वह भीतर ऐसे चला गया मानो झरते गंडस्थल वाला मत्त महागज हो।" इसके बाद लक्ष्मणने दशपुर-नगरमें वैसे ही प्रवेश किया जैसे, कामदेव आते ही जन-मन मुग्ध कर देते हैं। दुर्वार सैकड़ों शत्रुओं के प्राणोंको चुराने वाला वह सिंहके बच्चेकी तरह निकल पड़ा। जैसे ही लक्ष्मणको राजद्वारपर देखा, प्रतिहारने कहा, "मत रोको, आने दो।" यह वचन सुनकर, चक्रवर्तीकी लक्ष्मीसे लांछित शरीर लक्ष्मण प्रविष्ट हुआ। दशपुर-नरेश वज्रकर्णने लक्ष्मणको आते हुए उसी तरह देखा जैसे ऋषभ जिनने अहिंसा धर्म-को देखा था ॥ १–१० ॥

[१०] लक्ष्मणको देखकर वज्रकर्ण बहुत प्रसन्न हुआ। बार-बार स्नेहसे वह उसी क्षण बोला—"क्या दूँ, हाथी, रथ और घोड़ोंका समूह या चमकते हुए मणियोंका मुकुटपट्ट ? क्या आपको वस्त्रों और रत्नोंसे काम है ? क्या आपको श्रेष्ठ मनुष्योंसे युक्त राज्य दूँ ? क्या सम्भ्रात सेवक दूँ ? या पुत्र तथा पत्नी सहित मैं ही तुम्हारा सेवक बन जाऊँ।" ये

'कहिँ मुणिवरु कहिँ ससार-सोक्खु । कहिँ पाव-पिण्डु कहिँ परम-मोक्खु ॥६॥
कहिँ पायउ केत्थु कुडुक्क - वयणु । कहिँ कमल-सण्डु कहि विउलु गयणु॥७॥
कहिँ मयगलेँ हलु कहिँ उट्टेँ घण्ट । कहिँ पन्थिउ कहिँ रह-तुरय-थट्ट ॥८॥
त वोल्लहि ज ण घडइ कलाएँ । अम्हइँ वाहिय मुक्खएँ खलाएँ ॥९॥

घत्ता

तुहुँ माहम्मिउ दय - धम्मु करन्तु ण थक्कहि ।
भोयणु मग्गिउ तिहुँ जणहुँ देहि जइ सक्कहि' ॥ ११ ॥

[११]

वुच्चइ वज्जयण्णेँण सजल - लोयणेण ।
'मग्गिउ देमि रज्जु कि गहणु भोयणेण' ॥१॥

एम भणेप्पिणु अण्णुच्चाइउ । णिविसेँ रामहोँ पासु पराइउ ॥ २ ॥
खणेँ कच्चोल थाल ओयारिय । परियल-सिप्पि-सङ्ख वित्थारिय ॥३॥
वहुविह - खण्ड - पयारेँहिँ वड्डिउ । उच्छु-वण पिव मुह-रसियड्ढिउ ॥४॥
उज्जाण पिव सुट्ठु सुअन्धउ । सिद्धहोँ सिद्धि-सुह पिव सिद्धउ ॥५॥
रेहइ असण-वेल वलहद्दहोँ । णाइँ विणिग्गय अमय-समुद्दहोँ ॥६॥
धवल - प्पउर-कूर - फेणुज्जल । पेज्जावत्त दिन्ति चल चञ्चल ॥७॥
घिय-कल्लोल-वोल पवहन्ती । तिम्मण - तोय - तुसार मुअन्ती ॥८॥
सालण-सय-सेवाल-करम्विय । हरि-हलहर - जलयर-परिचुम्विय ॥९॥

घत्ता

कि वहु-चविएँण सच्छाउ सलोणु स-विञ्जणु ।
इट्ठ-कलत्तु व त भुत्तु जाहिच्छएँ भोयणु ॥१०॥

वचन सुनकर प्रसन्नचित लक्ष्मणने राजासे कहा, "कहा मुनिवर कहॉ संसारसुख, कहॉ पापपिंड और कहॉ परम मोक्षसुख! कहॉ प्राकृत और कहॉ कुडुक-कौतुक वचन! कहॉ कमलोका समूह और कहॉ व्यापक आकाश! कहॉ मदमाते हाथीकी घंटी और कहॉ ऊॅटका घंटा! कहॉ पथिक और कहॉ रथ-घोड़ोंका समूह! वह बात कहिए जो एक भी कलासे कम न हो, हमलोग दुष्ट क्षुधासे बाधित हो रहे हैं। तुम-सा धर्मीजन ही दयाधर्म करने से नहीं चूकते। भोजन मॉगता हूॅ यदि हो सके तो तीन आदमियो-का भोजन दो ॥१-१०॥

[११] तब वज्रकर्णने सजल नेत्रोसे कहा, "भोजन ग्रहण करनेकी क्या बात? मॉगो तो राज्य भी दे सकता हूॅ।" यह कह कर अन्न (भोजन) लेकर वह पल भर मे रामके निकट जा पहुॅचा। एक क्षणमे उसने कटोरे और थाल रख दिये। अन्न-भांड और तृणके बने आसन बिछा दिये। सब प्रकारके व्यंजनो से वह भोजन उत्तम था। वह ईख वनकी तरह मधुर रससे भरा था, उद्यानकी तरह अत्यन्त सुगन्धित था, और सिद्धोंके सिद्धिसुख की तरह सिद्ध था। बलभद्र रामकी भोजन-वेला ऐसी सोह रही थी मानो वह अमृतसमुद्रसे ही निकली हो। वह, धवलपूर और कूरके फेनसे उज्ज्वल थी। उसमे पेयोंके चंचल आवर्त उठ रहे थे। घीकी लहरोका समूह बह रहा था। कढ़ीका जल और तुपार प्रकट हो रहा था। सालनरूपी सैकड़ो शैवालोसे वह अंचित थी। और वह हरि तथा हलधर (राम और लक्ष्मण) रूपी जलचरोसे चुम्बित हो रही थी। अधिक कहनेसे क्या, उन्होने, इष्टकलत्रके समान, सच्छाय (सुन्दर कान्तिवाला), सलोण (सुन्दरता और नमक) सव्यंजन (पकवान और अलंकार) सुन्दर भोजन यथेच्छ-खाया ॥१-१०॥

[१२]

भुञ्जेवि रामचन्देण पभणिओ कुमारो ।
'भोयणु ण होइ एँउ उवयार-गरुअ-भारो ॥१॥

पडिउवयारु किं पि विण्णासहि । उभय-वलेंहि अप्पाणु पगासहि ॥२॥
त सीहोयरु गम्पि णिवारहि । अद्धें रज्जहों सन्धि समारहि ॥३॥
बुच्चइ भरहें दूउ विसज्जिउ । दुज्जउ वज्जयण्णु अपरज्जिउ ॥४॥
तेण समाणु कवणु किर विग्गहु । जें आयामिउ समरें परिग्गहु' ॥५॥
त णिसुणेवि वयणु रिउ-मद्दणु । रामहों चलणेंहिँ पडिउ जणद्दणु ॥६॥
'अज्जु कियत्थु अज्जु हउँ धण्णउ । ज आएसु देव पइँ दिण्णउ' ॥७॥
एम भणेवि पयट्टु महाइउ । गउ सीहोयर-भवणु पराइउ ॥८॥
मत्त-गइन्दु जेम गलगज्जेंवि । तं पडिहारु करग्गे तज्जेंवि ॥९॥

घत्ता

तिण-समु मण्णेवि अत्थाणु सयलु अवगण्णेंवि ।
पइट्टु भयाणणु गय-जूहें जेम पञ्चाणणु ॥१०॥

[१३]

अमरिस-कुद्धएण वहु-भरिय-मच्छरेण ।
सीहोयरु पलोइओ जिह सणिच्छरेण ॥१॥

कोवाणल - सय - जाल - जलन्तें । पुणु पुणु जोइउ णाइँ कयन्तें ॥२॥
जउ जउ लक्खणु लक्खइ समुहु । तउ तउ सिमिरु थाइ हेट्ठा-मुहु ॥३॥
चिन्तिउ 'को वि महा-वलु दीसइ । णउ पणिवाउ करइ णउ वइसइ' ॥४॥
त जि णिमित्तु लएवि कुमारें । वुत्तु राउ 'किं वहु-वित्थारें ॥५॥
एम विसज्जिउ भरह-णरिन्दें । करइ केलि को समउ मइन्दें ॥६॥
को सुर-करि-विसाण उप्पाडइ । मन्दरसेल-सिङ्ग को पाडइ ॥७॥
कोऽमयवाहु करग्गें ढङ्कइ । वज्जयण्णु को मारेंवि सक्कइ ॥८॥
सन्धि करहों परिभुञ्जहों मेइणि । हियय-सुहङ्करि जिह वर-कामिणि ॥९॥

[१२] भोजन करनेके उपरान्त रामने लक्ष्मणसे कहा—"यह भोजन नहीं किन्तु तुम्हारे ऊपर उपकारका बहुत भारी भार है, इनका कोई प्रत्युपकार करो। (न हो तो) दोनों सेनाओंमे अपने आपको प्रकट करो। जाकर सिंहोदरको रोको और आधे राज्यकी शर्तपर उससे संधि कर लो, फौरन दूत भेजकर उससे कहो कि वज्रकर्ण दुर्जेय और अपराजित है। उसके साथ युद्ध कैसा ? जो तुमने युद्धके इतने साधन जुटाये हैं।" यह सुनकर शत्रुका दमन करनेवाला जनार्दन लक्ष्मण रामके पैरोंपर गिरकर बोला—"आपका आदेश पाकर आज मैं धन्य और कृतार्थ हूँ।" यह कहकर आदरणीय वह सीधा सिंहोदरके भवनमें गया। हाथीकी तरह गरजकर तथा प्रतिहारको तर्जनीसे डाँटकर भयंकर मुख वह समूचे दरबारको तिनकेके समान समझता हुआ उसी तरह भीतर प्रविष्ट हुआ जैसे गजघटाके बीचमें सिंह प्रवेश करता है॥ १-१०॥

[१३] तब अमर्षसे भरे और क्रुद्ध लक्ष्मणने सिंहोदरको ऐसे देखा—जैसे शनिने ही देखा हो। वह जिस ओर देखता वहीं सैनिक नीचा मुख करके रह जाता। सिंहोदर मन ही मन सोच रहा था कि यह कोई महाबली होना चाहिए। न तो यह प्रणाम करता है और न बैठता ही है, इतनेमें मौका पाकर कुमार लक्ष्मणने सिंहोदरसे कहा—"बहुत विस्तारकर कहनेसे क्या, मुझे राजा भरतने यह कहनेके लिए भेजा है कि सिंहके साथ क्रीड़ा कौन करता है, कौन ऐरावतका दांत उखाड़ सकता है, कौन मंदराचलकी शिखर गिरा सकता है, और कौन चन्द्रको हाथसे रोक सकता है। कौन वज्रकर्णको मार सकता है ? अतः उसके साथ संधि कर, सुन्दर स्त्रीकी तरह हृदयसे तुम इस धरतीको

घत्ता

अहवइ णरवइ जइ रज्जहों अद्धु ण इच्छहि ।
तो समरङ्गणेँ सर-धोरणि एन्ति पडिच्छहि, ॥१०॥

[१४]

लक्खण-वयण-दूसिओ अहर-विप्फुरन्तो ।
'मरु मरु मारि मारि हणु हणु' भणन्तो ॥१॥

उट्ठिउ पहु करवाल-विहत्थउ । 'अच्छउ ताम भरहु वीसत्थउ ॥२॥
दूवहों दूवत्तणु दरिसावहों । छिन्दहों णासु सीसु मुण्डावहों ॥३॥
लुणहों हत्थ विच्छारेँवि धाडहों । गद्दहेँ चडियउ णयरेँ भमाडहों' ॥४॥
त णिसुणेवि समुट्ठिय णरवर । गलगज्जन्त णाइँ णव जलहर ॥५॥
'हणु हणु हणु' भणन्त वहु-मच्छर । ण कलि-काल-कियन्त-सणिच्छर ॥६॥
ण णिय - समय-चुक्क रयणायर । ण उम्मेट्ठ पधाइय कुञ्जर ॥७॥
करेँ करवालु को वि उग्गामइ । भीसण को वि गयासणि भामइ ॥८॥
को वि भयङ्करु चाउ चडावइ । सामिहेँ भिच्चत्तणु दरिसावइ ॥९॥

एव णरिन्देँहिँ फुरियाहर-भिउडि-करालेँहिँ ।
वेढिउ लक्खणु पञ्चाणणु जेम सियालेँहिँ ॥१०॥

[१५]

सूरु व जलहरेहिँ जं वेढिओ कुमारो ।
उट्ठिउ धर दलन्तु दुव्वार-वइरि-वारो ॥ १ ॥

रोक्कइ वलइ धाइ रिउ रुम्भइ । ण केसरि-किसोरु पवियम्भइ ॥ २ ॥
ण सुरवर-गइन्दु मय-विम्भलु । सिर-कमलइँ तोडन्तु महा-वलु ॥३॥
दरमलन्तु मणि-मउड णरिन्दहुँ । सीहु पढुक्किउ जेम गइन्दहुँ ॥४॥
को वि मुसुमूरिउ चूरिउ पाएँहिँ । को वि णिसुम्भिउ टक्कर-घाएँहिँ ॥५॥

भोगो। और यदि राजन्, आधे राज्यको नहीं चाहते तो कल समरांगणमें आती हुई बाणोंकी बौछारको झेलनेके लिए तैयार रहो।" ॥ १-१० ॥

[१४] लक्ष्मणके इन शब्दोंसे सिहोदर कुपित हो उठा, उसके अधर फरकने लगे, वह बोला, "मरो मरो, मारो मारो हनो हनो।" तलवार हाथमें लेकर उठते हुए वह बोला, "अच्छा जरा ठहरो, भरतने भेजा है न।" उसने फिर आदेश दिया, "इस दूतको दूतपन दिखला दो, नाक काट लो, सिर मूँड़ लो। हाथ काट लो और फिर गधेपर चढ़ाकर खूब चिल्लाकर नगर मे घुमाओ। यह सुनते ही नरवर उठे, मानो नये जलधर गरज उठे हों, वे मत्सरसे भरकर, 'मारो मारो' कहने लगे, मानो वे कलिकाल यम और शनि हों या फिर समुद्रने अपनी मर्यादा छोड़ दी हो, या उन्मत्त कुंजर ही दौड़ पड़े हों। कोई हाथमें तलवार उठा रहा था, तो कोई भीषण चक्र और गदा घुमा रहा था। कोई भयंकर धनुष चढ़ा रहा था। इस प्रकार वे स्वामीके प्रति अपनी वफादारी (दासता) दिखा रहे थे। कंपित-अधर और विकराल भौंहों वाले उन्होंने लक्ष्मणको वैसे ही घेर लिया जैसे गीदड़ सिहको घेर लेते है ॥ १-१० ॥

[१५] कुमार लक्ष्मणको वैसे ही घेर लिया जैसे मेघ सूर्यको घेर लेता है, तब वह वीर शत्रुओंका दलन करता हुआ उठा। कभी वह रुकता, कभी मुड़ता, कभी दौड़ता और शत्रुपर धौंस जमाता। वह ऐसा जान पड़ता मानो सिंहशावक ही उछल रहा हो। महाबली वह, मदविह्वल ऐरावत हाथीकी तरह, (शत्रुओं) के सिर-कमलोंको तोड़ने लगा। और मणिमुकुटोंको चूर-चूर करता हुआ वह राजाओंके निकट जा पहुँचा। वैसे ही जैसे सिंह हाथीके

को वि करग्गेंहिँ गयणें भमाडिउ । को वि रसन्तु महीयलें पाडिउ ॥६॥
को वि जुज्झविउ मेस-झडक्कएँ । को वि कडुवाविउ हक्क-दडक्कएँ ॥७॥
गयवर - लग्गण - खम्भुप्पाडेंवि । गयण-मग्गेँ पुणु भुअहिँ भमाडेंवि ॥८॥
णाइँ जमेण दण्डु पम्मुक्कउ । वइरिहिँ ण खय-कालु पढुक्कउ ॥९॥

घत्ता

आलण-खम्भेंण भामन्तें पुहइ भमाडिय ।
तेण पडन्तेण दस सहस णरिन्दहुँ पाडिय ॥ १० ॥

[१६]

ज पडिवक्खु सयलु णिद्दलिउ लक्खणेण ।
गयवरेँ पट्टवन्धणे चडिउ तक्खणेण ॥ १ ॥

अहिमुहु सीहोयरु सचल्लिउ । पलय-समुद्दु णाइँ उत्थल्लिउ ॥२॥
सेण्णावत्त निन्तु गज्जन्तउ । पहरण - तोय - तुसार-मुअन्तउ ॥३॥
तुङ्ग - तुरङ्ग - तरङ्ग - समाउलु । मत्त - महागय - घड-वेलाउलु ॥४॥
उब्भिय - धवल - छत्त - फेणुज्जलु । वय - कल्लोल - चलन्त-महावलु ॥५॥
रिउ-समुद्दु ज दिट्ठु भयङ्करु । लक्खणु ढुक्कु णाइँ गिरि मन्दरु ॥६॥
चलइ वलइ परिभमइ सु-पच्चलु । णाइँ विलासिणि-गणु चलु चञ्चलु ॥७॥
गेण्हेंवि पहउ णरिन्दु णरिन्दें । तुरएं तुरउ गइन्दु गइन्दें ॥८॥
रहिएं रहिउ रहङ्गु रहङ्गें । छत्तें छत्तु धयग्गु धयग्गें ॥९॥

घत्ता

चउ जउ लक्खणु परिसक्कइ भिउडि-भयङ्करु ।
तउ तउ दीसइ महि-मण्डलु रुण्ड-णिरन्तरु ॥ १० ॥

[१७]

ज रिउ-उअहि महिउ सोमित्ति-मन्दरेण ।
सीहोयरु पधाइओ समउ कुञ्जरेण ॥ १ ॥

निकट पहुँच जाता है। उसने किसीको मसलकर पैरसे कुचल दिया, किसीको टक्करकी मारसे ध्वस्त कर दिया, किसीको अंगुली से आकाशमे नचा दिया। कोई चिल्लाता हुआ आकाशसे धरती पर गिर पड़ा। कोई मेष की तरह झडक्कसे जूझ गया। कोई हुंकारकी चपेटमे ही कराह उठा। हाथी बाँधनेके—आलान स्तंभो को उखाड़, और आकाशमें घुमाकर वह ऐसे छोड़ देता था, मानो यमने ही अपना दंड फेका हो, या बैरियोंका क्षयकाल ही आ गया हो। आलान-स्तंभके घुमानेसे धरती ही हिल उठी, और उसके गिरते ही दस हजार राजा धराशायी हो गये ॥ १–१० ॥

[१६] जब लक्ष्मणने समस्त शत्रुपक्षका दलन कर दिया तो वह पट्टबंधन नामके उत्तम गजपर चढ़ गया। तब सिंहोदर भी सम्मुख युद्धके लिए चला। लक्ष्मणने सामने शत्रुसेना रूपी भयंकर समुद्रको उछलते हुए देखा। सेनाका आवर्त ही उसका गरजना था, हथियाररूपी जल और तुषार-कण छोड़ता हुआ, ऊँचे ऊँचे अश्वोंकी लहरोसे आकुल, मदमाते हाथियोके झुंडरूपी तटोंसे व्याप्त, ऊपर उठे हुए सफेद छत्रोंके फेनसे उज्ज्वल और ध्वजारूपी तरंगोसे चंचल और जलचरोसे सहित था। उसे देखते ही लक्ष्मण सुमेरु पर्वतकी तरह उसके पास जा पहुँचा। कभी वह चलता मुड़ता, और सहसा ऐसा घूम जाता, मानो वेश्यागण—ही चंचल हो उठा हो, द्वंद्व युद्ध शुरू हो गया। राजासे राजा, घोड़ेसे घोड़ा, हाथीसे हाथी, रथसे रथ, चक्रसे चक्र, छत्रसे छत्र, और ध्वजाग्रसे ध्वजाग्र पराजित हो गये। लक्ष्मण जिस ओर अपनी भयंकर भौहोको फैलाता उसी ओर उसे धरती-मंडल रुंडों से पटा हुआ दिखाई देता ॥ १–१० ॥

[१७] मंदराचलकी भाँति लक्ष्मणने नष्ट शत्रुसेनारूपी समुद्र को मथ डाला। तब महागजकी भाँति सिंहोदर उसपर दौड़ा।

अब्भिट्टु जुज्झु विण्णि वि जणाहँ । उज्जेणि - णराहिव - लक्खणाहँ ॥२॥
दुव्वार - वइरि - गेण्हण - मणाहँ । उग्गामिय - भामिय - पहरणाहँ ॥३॥
मयमत्त - गइन्दु द्दारणाहँ । पडिवक्ख - पक्ख - सघारणाहँ ॥४॥
सुरवहुअ - सत्थ - तोसावणाहँ । सीहोयर - लक्खण - णरवराहँ ॥५॥
। भुअ-दण्ड-चण्ड-हरिसिय- मणाहँ ॥६॥
एत्थन्तरँ सीहोयर - धरेण । उरँ पेल्लिउ लक्खणु गयवरेण ॥७॥
रहसुब्भडु पुलय - विसट्ट - देहु । ण सुक्कें खीलिउ स-जलु मेहु ॥८॥
तें लेवि भुअग्गे थरहरन्त । उप्पाडिय दन्तिहें वे वि दन्त ॥९॥
कडुआविउ मयगलु मणेंण तट्ठु । विवरम्मुहु पाण लएवि णट्ठु ॥१०॥

घत्ता

ताम कुमारेंण विज्जाहर-करणु करेप्पिणु ।
धरिउ णराहिउ गय-मत्थएँ पाउ थवेप्पिणु ॥ ११ ॥

[१८]

णरवइ जीव-गाहि ज धरिउ लक्खणेण ।
केण वि वज्जयण्णहो कहिउ तक्खणेण ॥ १ ॥

हे णरणाह - णाह अच्छरियउ । पर-वलु पेक्खु केम जज्जरियउ ॥२॥
रुण्ड णिरन्तरु सोणिय-चच्चिउ । णाणाविह - विहङ्ग - परियञ्चिउ ॥३॥
को वि पयण्ड-वीरु वलवन्तउ । भमइ कियन्तु व रिउ-जगडन्तउ ॥४॥
गय-घड भड-थड सुहड वहन्तउ । करि-सिर-कमल-सण्ड तोडन्तउ ॥५॥
रोक्कइ कोक्कइ ढुक्कइ थक्कइ । ण खय-कालु समरेँ परिसक्कइ ॥६॥
भिउडि-भयङ्करु कुरुडु समच्छरु । थिउ अवलोयणेँ णाइँ सणिच्छरु ॥७॥
णउ जाणहुँ किं गणु किं गन्धव्वु । कि पच्छण्णु को वि तउ वन्धवु ॥८॥
किण्णरु कि मारुवु विज्जाहरु । कि वम्भाणु भाणु हरि हलहरु ॥९॥
तेण महाहवेँ माण-मइन्दहँ । विणिवाइय दस सहस णरिन्दहँ ॥१०॥
अण्णु वि दुज्जउ मच्छर-भरियउ । जीव-गाहि सीहोयरु धरियउ ॥११॥

उज्जैननरेश सिंहोदर और कुमार लक्ष्मणमें द्वंद्व शुरू हुआ। दोनों दुर्वार बैरीको पकड़ना चाह रहे थे, दोनों हथियार उठाकर घुमा रहे थे। दोनों मत्तगजकी तरह दारुण और प्रतिपक्षका संहार करने वाले और देवबालाओंको सुख देनेवाले थे। दोनोंकी भुजाएँ प्रचंड और मन प्रसन्न था। इतनेमे सिंहोदरने लक्ष्मणकी छाती पर हाथी दौड़ाया, वह ऐसा लगता था मानो हर्षसे उद्भिन्न रोमांचित शरीर सजल मेघ शुक्र तारासे क्रीड़ा कर रहे हों ॥ १–८ ॥

तब लक्ष्मणने अपने हाथसे थर्राते हुए उस हाथीके दोनो दाँत उखाड़ लिये। पीड़ित होकर, रुष्टानन खोखले मुखका वह हाथी जब तक अपने प्राण छोड़े, इसके पहले ही, लक्ष्मणने उसके मस्तक पर पैर रख, और हाथ खींचकर सिंहोदरको पकड़ लिया ॥१–११॥

[१८] जब लक्ष्मणने उसे जीवित ही पकड़ लिया तो किसीने तत्काल वज्रकर्णसे जाकर कहा, "हे राजराज, देखिए शत्रुपक्ष किस तरह जर्जर हो गया है। धड़ निरंतर खूनसे लथपथ हो रहे हैं। तरह-तरहके पक्षी उनपर बैठे हुए हैं। कोई प्रचंड वीर कृतान्तकी तरह झगड़ता हुआ घूम रहा है। गजघटा, भटोंके समूह और सुभटोंको खदेड़ता, हाथियोंके सिरकमलोंके समूहको तोड़ता, रोकता बोलता, पहुँचता और ठहरता हुआ वह ऐसा लगता है मानो युद्ध-भूमिमें क्षयकाल ही घूम रहा हो। भयंकर भौंहोंवाला मत्सरभरा कठोर वह, देखनेमे ऐसा लगता है मानो शनि हो, मै नहीं जानता, वह कौन है ? कोई गंधर्व या प्रच्छन्न कोई आपका भाई। किन्नर है मारुत, विद्याधर है ! ब्रह्मा है या भानु ? हरि है या हलधर। दस हजार राजाओंको युद्धमे मार गिराया है। और भी मत्सरसे भरे दुर्जेय उससे सिहोदरको जीवित ही पकड़ लिया है।

घत्ता

एक्कें होन्तेंण वलु सयलु वि आहिन्दोलिउ ।
मन्दर-वौढेंण ण सायर-सलिलु विरोलिउ ॥ १२ ॥

[१९]

त णिसुणेनि को वि परितोसिओ मणेण ।
को वि णिएहुँ लग्गु उब्वेण जम्पणेण ॥ १ ॥

को वि पजम्पिउ मच्छर-भरियउ । 'चङ्गउ ज सीहोयरु धरियउ ॥२॥
जो मारेवउ वइरि स-हत्थें । सो परिवद्धु पाउ पर-हत्थें ॥३॥
वन्धव-सयणहिँ परिमिउ अज्जु । बज्जयण्णु अणुहुञ्जउ रज्जु' ॥४॥
को वि विरुद्धु पुणु पुणु णिन्दइ । 'धम्मु मुएवि पाउ किं णन्दइ' ॥५॥
को वि भणइ 'जें मग्गिउ भोयणु । दीसइ सो ज्जेँ णाइँ एँहु वम्भणु' ॥६॥
ताम कुमारें रिउ उक्खन्धेँवि । चोरु व राउलेण णिउ वन्धेँवि ॥७॥
सालङ्कारु स-दोरु स-णेउरु । दुम्मणु दीण-वयणु अन्तेउरु ॥८॥
धाइउ असु-जलोल्लिय-णयणउ । हिम-हय-कमलवणु व कोमाणउ ॥९॥

घत्ता

केस-विसन्थुलु मुह-कायरु करुणु रुअन्तउ ।
थिउ चउपासेँहिँ भत्तार-भिक्ख मग्गन्तउ ॥ १० ॥

[२०]

ताम मणेण सङ्किया राहवस्स घरिणी ।
ण भय-भीय काणणे वुण्णुयण्ण हरिणी ॥ १ ॥

'पेक्खु पेक्खु वलु वलु आवन्तउ । सायर-सलिलु जेम गज्जन्तउ ॥२॥
लइ धणुहरु म अच्छि णिच्चिन्तउ । मच्छुडु लक्खणु रणेँ अत्थन्तउ' ॥३॥
त णिसुणेँवि णिव्वूढ-महाहवु । जाम चाउ किर गिण्हइ राहवु ॥४॥
ताम कुमारु दिट्ठु सहुँ णारिहिँ । परिमिउ हत्थि जेम गणियारिहिँ ॥५॥

अकेले होते हुए भी उसने सेनामें हलचल मचा दी है। ठीक वैसे ही जैसे मंदराचलकी पीठ समुद्रके जलको मथ देती है ॥१-१२॥

[१६] यह सुनकर किसीका मन सन्तुष्ट हो उठा तो कोई ऊपर मुख उठाकर कहने वालेका मुख देखने लगा। कोई ईर्ष्यासे भर-कर कह उठा, "अच्छा हुआ कि सिंहोदर पकड़ा गया, जैसे वह अपने हाथसे शत्रुको मारता था, वैसे ही वह भी दूसरेके हाथसे पकड़ा गया, अतः वज्रकर्ण तुम सैकड़ों परिजनोंके साथ अपने राज्यका भोग करो। तब कोई विरुद्ध होकर, वार-बार ऐसा कहने वालेकी निन्दा करते हुए बोला, "अरे धर्म छोड़कर पापसे आनं-दित क्यों हो रहे हो।" तब किसी एकने कहा, "अरे भोजन मॉगने वाले ये ब्राह्मण नहीं हैं।' इतनेमें कुमार लक्ष्मण शत्रुको अपने कंधेपर टॉंगकर ले आया वैसे ही जैसे राजकुल चोरको बॉंधकर ले आता है। सिंहोदरका अन्तःपुर,अलंकार डोर और नूपुरों सहित भी दीन मुख और अनमना हो उठा। हिमसे आहत, और मुरझाये हुए कमलवनकी तरह डबडबाये नेत्रोंसे यह उसके पीछे दौड़ा। उस (अन्तःपुर) के बाल बिखरे हुए थे और मुँह कातर था। चारों ओरसे घेरकर उसने लक्ष्मणसे अपने पतिकी भीख मॉंगी ॥१-१०॥

[२०] परन्तु इधर सहसा, रामकी पत्नी सीता आशंकित हो उठीं, मानो वनकी भोली हिरनी ही भयभीत हो उठी हो, वह बोलीं,—"देखिए देखिए, समुद्रजलकी तरह गरजती हुई सेना आ रही है, निश्चल मत बैठे रहो, धनुष हाथमें ले लो, शायद युद्धमें लक्ष्मणका अंत हो गया है।" यह सुनकर, महायुद्धमें समर्थ राम जबतक हाथमें धनुप लेनेको हुए कि तबतक स्त्रियोंके साथ लक्ष्मण, आता हुआ ऐसा दिखाई दिया मानो हथिनियोंसे घिरा

तं पेक्खेप्पिणु सुहड-णिसामें । भीय सीय सम्भीसिय रामें ॥६॥
'पेक्खु केम सीहोयरु वद्धउ । सीहेण व सियालु उद्धुद्धउ' ॥७॥
एव वोल्ल किर वट्टइ जावेंहिँ । लक्खणु पासु पराइउ तावेंहिँ ॥८॥
चलणेंहिँ पडिउ वियावड-मत्थउ । भविउ व जिणहों कियञ्जलि-हत्थउ ॥९॥

घत्ता

'साहु' भणन्तेंण सुरभवण-विणिग्गय-णामें ।
सइँ भु अ-फलिहेंहिँ अवरुण्डिउ लक्खणु रामें ॥ १० ॥

❁

२६. छव्वीसमो संधि

लक्खण-रामहुँ धवलुज्जल-कसण-सरीरइँ ।
एक्कहिँ मिलियइँ ण गङ्गा-जउणहँ णीरइँ ॥

[१]

अवरोप्परु गओल्लिय - गत्तेंहिँ । सरहसु साहउ देवि तुरन्तेंहिँ ॥१॥
सीहोयरु णमन्तु वइसारिउ । तक्खणेँ वज्जयण्णु हक्कारिउ ॥२॥
सहुँ णरवर-जणेण णीसरियउ । णाइँ पुरन्दरु सुर-परियरियउ ॥३॥
रेहइ विज्जुलङ्गु अणुपच्छएँ । पडिवा-इन्दु व सूरहों पच्छएँ ॥४॥
तं इट्टाल - धूलि - धुअ-धवलउ । सहसकूडु गय पत्त जिणालउ ॥५॥
चउदिसु पयहिण देवि तिवारएँ । पुणु अहिवन्दण करइ भडारएँ ॥६॥
त पियवद्धण-मुणि पणवेप्पिणु । वलहों पासेँ थिउ कुसलु भणेप्पिणु ॥७॥
दसउर - पुर - परमेसरु रामें । साहुकारिउ सुहड--णिसामें ॥८॥

हाथी ही आ रहा हो। उसे देखकर, सुभटश्रेष्ठ रामने डरी हुई सीताको अभय वचन देते हुए कहा, "देखो सिंहोदर कैसा बँधा हुआ है, सिंहने शृगालको मानो ऊपर उठा लिया है।" वह ऐसा कह ही रहे थे कि कुमार लक्ष्मण एकदम निकट आ पहुँचा, उन्होंने अपना विकट माथा रामके चरणोंमें ऐसे ही रख दिया मानो जिनके सम्मुख हाथ जोड़कर भव्य हीं खड़ा हो ॥१-९॥

तब देवभवनोंमें विख्यात नाम रामने 'साधु' कहकर अपनी विशाल भुजाओंमे लक्ष्मणको भर लिया ॥१०॥

•

छब्बीसवीं सन्धि

लक्ष्मण और रामके गोरे काले शरीर एकत्र मिले हुए ऐसे मालूम होते थे मानो गंगा और यमुनाके जलका संगम हो।

[१] पुलकितशरीर उन दोनोंने तुरत एक दूसरेका आलिंगन किया। तदनन्तर, रामने, प्रणाम करते हुए सिंहोदरको बैठाया। और तत्काल उन्होंने वज्रकर्णको भी बुलवा लिया। वह अपने उत्तम मनुष्योंके साथ इस प्रकार निकला मानो देवताओंको लेकर इन्द्र ही निकला हो। प्रतिपदाके चन्द्रके पीछे जैसे सूरज रहता है वैसे ही विद्युदंग चोर भी उस (वज्रकर्ण) के पीछे-पीछे आ रहा था। तब वे लोग चूना और ईंटसे निर्मित सहस्रकूट जिनालयमें पहुँचे। उन्होंने उसकी तीन बार प्रदक्षिणा की। भट्टारक रामने उनका अभिवादन किया। वज्रकर्ण भी प्रियवर्धन मुनिको नमस्कार कर रामको कुशल पूछ उनके पास बैठ गया ॥१-७॥

तब सुभट श्रेष्ठ रामने दशपुर-नरेश वज्रकर्णको साधुवाद

घत्ता

'सच्चउ णरवइ मिच्छत्त–सरेँहिँ णउ भिज्जहि ।
दिढ-सम्मत्तेँण पर तुज्झु जेँ तुहुँ उवमिज्जहि ॥ ६ ॥

[२]

त णिसुणेवि पयम्पिउ राए । 'एउ सव्वु महु तुम्ह पसाए' ॥१॥
पुणु वि तिलोय-विणिग्गय-णामें । विज्जुलङ्गु पोमाइउ रामें ॥२॥
'भो दिढ-कढिण-वियड- वच्छत्थल । साहु साहु साहम्मिय-वच्छल ॥३॥
सुन्दरु किउ ज णरवइ रक्खिउ । रणेँ अच्छन्तु ण पइँ उव्वेक्खिउ' ॥४॥
तो एत्थन्तरेँ वुत्तु कुमारें । 'जम्पिएण किं वहु - वित्थारें ॥५॥
हे दसउर-णरिन्द विसगइ-सुअ । जिणवर-चलण - कमल-फुल्लन्धुअ ॥६॥
जो खलु खुद्दु पिसुणु मच्छरियउ । अच्छइ एँहु सीहोयरु धरियउ ॥७॥
किं मारमि कि अप्पुणु मारहि । ण तो दय करि सन्धि समारहि ॥८॥

घत्ता

आण-वडिच्छउ एँहु एवहिँ भिच्चु तुहारउ ।
रिसह-जिणिन्दहोँ सेयसु व पेसणयारउ' ॥ ६ ॥

[३]

पभणइ वज्जयण्णु वहु-जाणउ । 'हउँ पाइक्कु पुणु वि एँहु राणउ ॥१॥
णवर एक्कु वउ भइँ पालेवउ । जिणु मेल्लेवि अण्णु ण णमेवउ' ॥२॥
त णिसुणेविणु लक्खण-रामेँहिँ । सुरवर-भवण - विणिग्गय-णामेहिँ ॥३॥
दसउरपुर - उज्जेणि - पहाणा । वज्जयण्ण - सीहोयर - राणा ॥४॥
वेण्णि वि हत्थें हत्थु धराविय । सरहसु कण्ठग्गहणु कराविय ॥५॥
अद्धोअद्धिएँ महि भुञ्जाविय । अण्णु वि जिणवर-धम्मु सुणाविय ॥६॥
कामिणि कामलेह कोक्काविय । विज्जुलअङ्गहोँ करयलेँ लाविय ॥७॥
दिण्णइँ मणि-कुण्डलइँ फुरन्तइँ । चन्दाइच्चहुँ तेउ हरन्तइँ ॥८॥
ताम कुमारु वुत्तु विक्खाएँहिँ । वज्जयण्ण- सीहोयर - राएँहिँ ॥९॥

दिया और कहा—"जैसे मिथ्यात्वके बाणोंसे सत्यका भेदन नही किया जा सकता, वैसे ही दृढ़ सम्यक्त्वमें तुम्हारी उपमा केवल तुम्हीसे दी जा सकती है।" ॥८–९॥

[२] यह सुनकर वज्रकर्णने निवेदन किया,—"यह सब आपके प्रसादका फल है।" तदनन्तर रामने त्रिलोक विख्यात, विद्युदंग चोरकी प्रशंसा की—"तुम्हारा वक्षस्थल कठोर विशाल और विकट है। तुम्हारा साधर्मी-प्रेम स्तुत्य है, तुमने राजाकी रक्षा कर बहुत बढ़िया काम किया। युद्धमे होते हुए भी तुमने इसकी उपेक्षा नही की"। तब इसी बीचमें कुमार लक्ष्मण बोल उठे, "बहुत कहना व्यर्थ है, हे विश्वमति-नृपसुत जिनवर-चरण-कमल-भ्रमर! यह क्षुद्र ईर्ष्यालु राजा पकड़ लिया गया है, क्या इसे मार डालूँ ? या चाहे आप ही मारे अथवा दयाकर इससे संधि कर ले।" इस पर रामने कहा,—"आजसे यह तुम्हारा आज्ञापालक अनुचर होगा, ठीक उसी तरह जिस तरह राजा श्रेयांस; ऋषभ जिनका अनुचर था ॥१–९॥

[३] तब बहुविज्ञ वज्रकर्णने कहा, "यह राजा है और मै साधारण आदमी। मै तो केवल इसी व्रतका पालन करना चाहता हूॅ कि जिनको छोड़कर मै किसी औरको नमन नहीं करूँगा" यह सुनकर देवलोकमें प्रसिद्ध नाम राम और लक्ष्मणने उन दोनोका (सिहोदर और वज्रकर्ण) का हाथ पर हाथ रखवा कर एक दूसरेका हर्षपूर्वक मिलाप करवा दिया। धरती आधी-आधी बॉट दी। तथा उन दोनोको जिनधर्मका भी उपदेश दिया। कामिनी कामलेखाको बुलाकर, रामने उसे विद्युदंगके लिए सौप दिया। और उसे, सूर्य तथा चन्द्रमाका भी तेज हरण करनेवाले, मणिकुंडल दे दिये। तब प्रसिद्ध राजा वज्रकर्ण और सिंहोदरने कुमार लक्ष्मणसे

'णव-कुवलय-दल - दीहर-णयणहुँ । मयगल-गइ-गमणहुँ ससि-वयणहुँ ॥१०॥
उच्च - णिलाडालङ्किय - तिलयहुँ । वहु-सोहग्ग-भोग्ग-गुण-णिलयहुँ ॥११॥
विब्भम - भाउब्भिण्ण - सरीरहुँ । तणु-मज्झहुँ थण-हर गम्भीरहुँ ॥१२॥

घत्ता

अहिणव-रूवहुँ लायण्ण-वण्ण-सपुण्णहुँ ।
लइ भो लक्खण वर तिण्णि सयइँ तुहुँ कण्णहुँ' ॥ १२ ॥

[४]

त णिसुणेप्पिणु दसरह - णन्दणु । एम पजम्पिउ हसेँवि जणद्दणु ॥१॥
'अच्छउ ति-यणु ताम विलवन्तउ । भिसिणि-णिहाउ व रवियर-छित्तउ ॥२॥
मइँ जाएवउ दाहिण - देसहोँ । कोङ्कण - मलय - पण्डि- उद्देसहोँ ॥३॥
तहिँ वलहद्दहोँ णिलउ गवेसमि । पच्छएँ पाणिग्गहण करेसमि' ॥४॥
एम कुमारु पजम्पिउ ज जे । मणेँ विसण्णु कण्णायणु त जे ॥५॥
दड्ढु हिमेण वणलिणि-समुच्चउ । मुहँ-मुहँ णाइँ दिण्णुमसि-कुच्चउ ॥६॥
जाम ताम तूरँहिँ वज्जन्तेँहिँ । विविहेँहिँ मङ्गलेँहिँ गिज्जन्तेँहिँ ॥७॥
वन्दिणेहिँ 'जय जय' पभणन्तेँहिँ । खुज्जय - वामणेहिँ णच्चन्तेँहिँ ॥८॥
सीय स-लक्खणु वलु पइसारिउ । वीया - इन्दु व जयजयकारिउ ॥९॥
तहिँ णिवसेप्पिणु णयरेँ रवण्णएँ । अद्धरत्ति-अवसरेँ पडिवण्णएँ ॥१०॥

घत्ता

वल-णारायण गय दसउरु मुएँवि महाइय ।
चेत्तहोँ मासहोँ त कुब्वर-णयरु पराइय ॥ ११ ॥

[५]

कुब्वर-णयरु पराइय जावेँहिँ । फग्गुण-मासु पवोलिउ तावेँहिँ ॥१॥
पइठु वसन्तु - राउ आणन्देँ । कोइल - कलयल - मङ्गल-सद्देँ ॥२॥
अलि-मिहुणेँहिँ वन्दिणेँहिँ पढन्तेँहिँ । वरहिण - वावणेहिँ णच्चन्तेँहिँ ॥३॥

विनय करते हुए कहा,—"रंग और सुंदरतामे पूर्ण, अभिनव रूपव्रती इन तीन सौ कन्याओको ग्रहण करें। इनके नेत्र नवकमल दलकी तरह विशाल हैं। मुख चन्द्रमाके समान है, चाल मत्त गजकी भाँति है और इनके ऊँचे ऊँचे भाल पर तिलककी शोभा है। ये प्रचुर भाग्य और भोगके गुणोंकी निकेतन है, विलास और भावोंसे पूर्ण शरीर उनका मध्यभाग क्षीण और स्तन गंभीर है।" ॥१-१३॥

[४] यह सुनकर लक्ष्मणने हँसते हुए कहा "अच्छा. ये तब तक उसी प्रकार विलाप करें जिस प्रकार कमलिनियाँ रविके किरणजालके लिए विलाप करती है। अभी मुझे दक्षिण देश जाना है, जहाँ कोकणमलय और पुंड्र आदि देश हैं वहाँ बलभद्र रामके लिए आवासकी व्यवस्था करनी है। बादमे मै इनका पाणिग्रहण कर सकता हूँ। कुमारके इस कथनसे उन कुमारियोका मन खिन्न हो उठा। मानो कमलिनी-समूहको पाला मार गया हो, या मानो किसीने सबके मुँहपर स्याहीकी कूँची फेर दी हो। इसके अनंतर लक्ष्मण और सीताके साथ, रामने विविध मंगलगीतोके बीच, नगरमे प्रवेश किया। वंदीजन जय-जयकार कर रहे थे। कुब्ज वामन नाच रहे थे। दूसरे इन्द्रकी तरह उनका सबने जय जयकार किया। उस सुन्दर नगरमें निवास कर, आधी रात होनेपर आदरणीय वे तीनो (बलभद्र राम, नारायण लक्ष्मण और सीतादेवी) दशपुर नगर छोड़कर चले गये। चलकर वे चैतके माहमे नलकूबर नगरमे पहुँचे ॥ १-११ ॥

[५] उस नगरमे उनके पहुँचते-पहुँचते फाल्गुनका महीना बीत चुका था और वसंत राजा कोयलके कलकल मंगलके साथ आनन्दपूर्वक प्रवेश कर रहे थे। भ्रमररूपी वंदीजन मंगलपाठ पढ़ रहे थे, और मोर रूपी कुब्जवामन नाच रहे थे। इस तरह अनेक

अन्दोला - सय - तोरण - वारेंहिँ । ढुक्कु वलन्तु अणेय-पयारेंहिँ ॥ ४ ॥
कत्थइ चूअ - वणइँ पल्लवियइँ । णव-किसलय-फल-फुल्लब्भहियइँ ॥५॥
कत्थइ गिरि - सिरहइँ विच्छायइँ । खल-मुहइँ व मसि-वण्णइँ णायइँ ॥६॥
कत्थइ माहव - मासहोँ मेइणि । पिय-विरहेण व सूसइ कामिणि ॥७॥
कत्थइ गिज्जइ वज्जइ मन्दलु । णर-मिहुणेहि पणच्चिउ गोन्दलु ॥८॥
त तहोँ णयरहोँ उत्तर - पासेँहिँ । जण-मणहरु जोयण-उद्देसेँहिँ ॥ ९ ॥
दिट्ठु वसन्ततिलउ उज्जाणउ । सज्जण-हियर जेम अ-पमाणउ ॥१०॥

घत्ता

सुहलु सुयन्धउ डोल्लन्तु वियावड - मत्थउ ।
अग्गएँ रामहोँ ण थिउ कुसुमञ्जलि - हत्थउ ॥११॥

[६]

तहिँ उववणेँ पइसेँवि विणु खेवेँ । पभणिउ वासुएवु वलएवेँ ॥ १ ॥
'भो असुरारि - वइरि - मुसुमूरण । दसरह-वस - मणोरह - पूरण ॥ २ ॥
लक्खण कहि मि गवेसहि त जलु । सज्जण-हियउ जेम ज णिम्मलु ॥३॥
दूरागमणेँ सीय तिसाइय । हिम-हय-णव-णलिणि व विच्छाइय ॥४॥
त णिसुणेँवि वड-दुम - सोवाणेँहिँ । चडिउ महारिसि व्व गुणथाणेँहिँ ॥५॥
ताव महासरु दिट्ठु रवण्णउ । णाणाविह-तरुवर - संछण्णउ ॥ ६ ॥
सारस - हस-कुञ्च - वग - चुम्विउ । णव-कुवलय-दल-कमल-करम्विउ॥७॥
त पेक्खेवि कुमारु पधाइउ । णिविसेँ त सर-तीर पराइउ ॥ ८ ॥

घत्ता

पइठु महावलु जलेँ कमल - सण्डु तोडन्तउ ।
माणस - सरवरेँ ण - गइन्दु कीलन्तउ ॥ ९ ॥

[७]

लक्खणु जलु आडोहइ जावेँहिँ । कुव्वर-णयर-णराहिउ तावेँहिँ ॥ १ ॥

प्रकारके हिलते-डुलते तोरण-द्वारोंके साथ वसंत राजा आ पहुँचा। कहीं आमके पेड़ोंमें नये किसलय फल-फूलोंसे लद रहे थे। कहीं कांतिरहित पहाड़ोंके शिखर काले रंगवाले दुष्ट मुखोंकी तरह दिखाई दे रहे थे। कहीं-कहीं वैशाख माहकी गर्मीसे सूखी हुई धरती ऐसी जान पड़ती थी मानो प्रिय-वियोगसे पीड़ित कामिनी हो। कहीं गीत हो रहा था, और कहीं मृदंग बज रहा था। कहीं मनुष्योंके जोड़े रति कर रहे थे। उन लोगोंने नगरके उत्तरकी ओर, वसंततिलक नामका, जन मन-हर, एक योजन विस्तृत उद्यान देखा। वह उद्यान सज्जनके हृदयकी तरह अप्रमेय था। सुफल सुगंधित और नतमस्तक वह मानो हाथमें कुसुमांजलि लेकर रामके आगे स्वागतके लिए स्थित हो गया था॥ १–११॥

[६] बिना किसी देरीके उस वनमें प्रवेश करके रामने लक्ष्मणसे कहा, "अरे असुर और शत्रुओंको मसलनेवाले और दशरथकुलके इच्छापूरक लक्ष्मण, कहीं पानी खोजो, जो सज्जनके हृदयकी तरह निर्मल हो। बहुत दूरसे चलकर आनेके कारण सीताको प्यास लग आई है। वह हिमाहत कमलिनीकी तरह कांतिहीन हो रही है।" यह सुनते ही लक्ष्मण वटवृक्ष रूपी सोपान पर चढ़ गये, उसी तरह जैसे महामुनि गुणस्थानों पर चढ़ते हैं। वहाँसे उसे सुंदर और तरह तरहके पेड़ोंसे आच्छन्न एक सरोवर दीख पड़ा। सारस हंस क्रौञ्च और बगुला पक्षियोंसे चुम्बित, उसे देखकर, कुमार (उतरकर) दौड़ा और पलभरमें उसके किनारे पहुँच गया। कमल-समूहको तोडते हुए, महाबली कुमार उसके जलमें ऐसे ही घुसा मानो ऐरावत हाथी क्रीड़ा करता हुआ मानसरोवरमें घुसा हो॥ १–९॥

[७] जिस समय लक्ष्मण सरोवरके पानीको विलोडित कर

छुडु छुडु वण - कीलए णीसरियउ । मयण-दिवसॅ णरवर-परियरियउ ॥२॥
तरुवरॅ तरुवरॅ मञ्चु णिवद्धउ । मञ्चॅ मञ्चॅ थिउ जणु समलद्धउ ॥३॥
मञ्चॅ मञ्चॅ आरूढ णरेसर । मेरु-णियम्बे णाइँ विज्जाहर ॥ ४ ॥
मञ्चॅ मञ्चॅ आलावणि वज्जइ । महु पिज्जइ हिन्दोलउ गिज्जइ ॥५॥
मञ्चॅ मञ्चॅ जणु रसय - विहत्थउ । घुम्मइ घुलइ विथावड-मत्थउ ॥६॥
मञ्चॅ मञ्चॅ कीलन्ति सु - मिहुणइँ । णव-मिहुणइँ कहिँ णेह-विहूणइँ ॥७॥
मञ्चॅ मञ्चॅ अन्दोलइ जणवउ । कोइल वासइ भञ्जइ दमणउ ॥ ८ ॥

घत्ता

कुव्वर - णाहेँण किउ मञ्चारोहणु जावँहिँ ।
सूरु व चन्देँण लक्खिज्जइ लक्खणु तावँहिँ ॥ ९ ॥

[८]

लक्खिउ लक्खणु लक्खण - भरियउ । ण पच्चक्खु मयणु अवयरिउ ॥ १ ॥
रूउ णिएँवि सुर - भवणाणन्दहोँ । मणु उल्लोलेँहिँ जाइ णरिन्दहोँ ॥२॥
मयण - सरासणि धरेँवि ण सक्किउ । वम्महु दस-थाणेहिँ पढुक्किउ ॥ ३ ॥
पहिलएँ कहोँ वि समाणु ण वोल्लइ । वीयएँ गुरु णीसासु पमेल्लइ ॥ ४ ॥
तइयएँ सयलु अङ्गु परितप्पइ । चउथएँ ण करवत्तेँहिँ कप्पइ ॥ ५ ॥
पञ्चमेँ पुणु पुणु पासेइज्जइ । छट्ठएँ वारवार मुच्छिज्जइ ॥ ६ ॥
सत्तमेँ जलु वि जलद ण भावइ । अट्ठमेँ मरण-लील दरिसावइ ॥ ७ ॥
णवमएँ पाण पडन्त ण वेयइ । दसमएँ सिरु छिज्जन्तु ण चेयइ ॥८॥

रहे थे उसी समय, अनेक श्रेष्ठ मनुष्योंसे घिरा हुआ, नलकूबर नगरका राजा कामदेवके दिन (वसंतपंचमीको) वनक्रीड़ाके लिए वहाँ आया। प्रत्येक पेड़पर ऊँचे ऊँचे मच (मचान) बनवा दिये गये। और प्रत्येक मंचपर एक-एक आदमी नियुक्त कर दिया गया। एक एक मच पर एक एक राजा ऐसे बैठ गया, मानो मेरुपर्वतके शिखर पर विद्याधर बैठे हो। मंच-मंचपर आलापिनी (वीणा) बज रही थी, लोग मधु पी रहे थे। और हिन्ताल गीत गा रहे थे। मंच-मंचपर लोगोंके हाथमे मधु-प्याला था, मस्तक हिलाकर, वे उसे हिला-डुला रहे थे, मंच-मंचपर मिथुन क्रीड़ा कर रहे थे। नये जोड़े (दम्पति) स्नेह हीन भला कहाँ होते है ? मंच-मंचपर लोग झूम रहे थे, और कोयल शीघ्र अपने आवासको भागा जा रहा था ॥ १-८ ॥

नलकूबर नरेशने मंच पर चढ़ते ही लक्ष्मणको ऐसे देखा मानो चंद्रने सूरको देखा हो ॥ ९ ॥

[८] अनेक लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मणको देखकर उसे लगा मानो कामदेव ही अवतरित हुआ हो। स्वर्गलोकके लिए भी आनंद-दायक लक्ष्मणके रूपको देखकर, राजाके मनमे हलचल होने लगी। कामके बाणोसे वह अपनेको बचा नहीं सका, शीघ्र ही वह कामकी दस अवस्थाओं (वेगों) मे पहुँच गया। पहले वेगमे वह किसीसे बात नहीं करता था, दूसरेमे लम्बे-लम्बे निश्वास छोड़ने लगा, तीसरेमें उसके शरीरमे तपन होने लगी। चौथेमे करपत्रसे मानो काटा जाने लगा। पाचवेमे, बारबार पसीना आता, छठेमे रह-रहकर मूर्छा आने लगी। सातवेमे जल और गीली वस्तुसे अरुचि होने लगी। आठवेमे मौनकी चेष्टाएँ दिखने लगीं। नवेंमे जाते हुए प्राणोका ज्ञान नहीं हो रहा था। दसवेमे सिर फटने लगा और

घत्ता

एम वियम्भिउ कुसुमाउहु दसहि मि थाणेँहिँ ।
त अच्छरियउ ज मुक्कु कुमारु ण पाणेँहिँ ॥ ८ ॥

[९]

ज कण्ठ-ट्ठिउ जीवु कुमारहोँ । सण्णएँ वुत्तु 'पहिउ हक्कारहोँ' ॥१॥
पहु आणएँ पाइक्क पधाइय । णिविसद्धेँ तहोँ पासु पराइय ॥२॥
पणवेँवि वुत्तु ति-खण्ड-पहाणउ । 'तुम्हहँ काइ मि कोक्कइ राणउ' ॥३॥
त णिसुणेँवि उच्चलिउ जणद्दणु । तिहुअण-जण-मण-णयणाणन्दणु ॥४॥
वियण पओह देन्तु ण केसरि । कन्दइ भारक्कन्त वसुन्धरि ॥५॥
दिट्ठु कुमारु कुमारे एन्तउ । मयणु जेम जण-मण-मोहन्तउ ॥६॥
खणेँ कल्लाणमालु रोमञ्चिउ । णडु जिह हरिस-विसाएँहिँ णच्चिउ ॥७॥
पुणु वइसारिउ हरि अद्धासणेँ । भविउ जेम थिउ दिढु जिण-सासणेँ॥८॥

घत्ता

वइठु जणद्दणु आलीढएँ मञ्चेँ रवण्णएँ ।
णव-वरइत्तु व पच्छण्णु मिलिउ सहुँ कण्णाएँ ॥९॥

[१०]

वे वि वइट्ठ वीर एक्कासणेँ । चन्दाइच्च जेम गयणङ्गणेँ ॥१॥
एक्कु पचण्डु तिखण्ड-पहाणउ । अण्णेक्कु वि कुव्वर-पुर-राणउ ॥२॥
एक्कहोँ चलण-जुअलु कुम्मुण्णउ । अण्णेक्कहोँ रत्तुप्पल-वण्णउ ॥३॥
एक्कहोँ ऊरु (?)-जुअलु सु-वित्थरु । अण्णेक्कहोँ सुकुमारु सु-मच्छरु ॥४॥
पञ्चाणण-कडि-मण्डलु एक्कहोँ । णारि-णियम्ब-विम्बु अण्णेक्कहोँ ॥५॥
एक्कहोँ सुललिउ सुन्दरु अङ्गउ । अण्णेक्कहोँ तणु-तिवलि-तरङ्गउ ॥६॥

चेतना गायब हो चली। इसी तरह दसो दौरमें कामदेव अत्यधिक फैल गया। केवल अचरज इस बातका हो रहा था कि किसी तरह कुमारके प्राण नहीं निकले ॥ १-८ ॥

[६] कुमारका जीव कंठमे अटका था, होश आनेपर उसने इतना ही कहा, "पथिकको बुलाओ"। प्रभुकी आज्ञासे अनुचर दौड़े गये, और पलभरमे लक्ष्मणके पास जा पहुँचे। उन्होने प्रणाम करके तीनो खंडके प्रधानसे कहा,—"किसी कामसे राजाने आपको बुलाया है" यह सुनकर त्रिभुवन जनके मन और नेत्रोंको आनंद देनेवाले जनार्दन लक्ष्मण चल पड़े, मानो सिंह ही अपने विकट पैर रखता हुआ जा रहा हो, धरती उसके भारसे कॉप-सी उठी। 'कामदेवकी तरह जन-मनको मोहते हुए कुमारको आते देखकर कल्याणमाला (राजा) वैसे ही पुलकित हो गई, जैसे हर्ष और विषादमे मग्न नाचता हुआ नट मग्न हो जाता है। फिर उसने लक्ष्मणको अपने आधे आसनपर बैठाया। वह भी जिन-शासनमे दृढ़ भव्यकी तरह स्थित हो गया। सटे हुए सुन्दर मंच-पर कुमार लक्ष्मण ऐसे बैठ गये मानो कन्याके साथ मिलकर प्रच्छन्न नया वर ही बैठा हो ॥ १-६ ॥

[१०] आकाशके ऑगनमे सूर्य और चन्द्रकी तरह वे दोनों वीर एक ही आसनपर बैठ गये। उनमे एक अत्यन्त प्रचण्ड और तीनों लोकोका प्रधान था। जब कि दूसरा केवल नलकूबर नगरका राजा था। एकके चरण-कमल कूर्मकी तरह उन्नत थे जब कि दूसरेके पैर रक्तकमलके रंगके थे। एकका वक्षःस्थल विस्तृत था जब कि दूसरेका सुकुमार और नवनीतकी तरह था। एकका मध्य-भाग सिंहकी तरह कृश था। जबकि दूसरेका नारी-नितम्बोंकी तरह था। एकके अंग सुललित और सुन्दर थे जब कि दूसरेका

एक्कहों सोहइ वियडु उरत्थलु। अण्णेक्कहों जोव्वणु थण-चक्कलु ॥७॥
एक्कहों वाहउ दीह-विसालउ। अण्णेक्कहों ण मालइ-मालउ ॥८॥
वयण-कमलु पप्फुल्लिउ एक्कहों। पुण्णिम-चन्द-रन्दु अण्णेक्कहों ॥९॥
एक्कहों गो-कमलइँ वित्थरियइँ। अण्णेक्कहों वहु-विब्भम-भरियइँ ॥१०॥
एक्कहों सिरु वर-कुसुमेंहिँ वासिउ। अण्णेक्कहो वर-मउड-विहूसिउ ॥११॥

घत्ता

एक्कु स-लक्खणु लक्खिज्जइ जणेंण असेसें।
अण्णेक्कु वि पुणु पच्छण्ण णारि णर-वेसें ॥१२॥

[११]

दणु – दुग्गाह – गाह – अवगाहें। पुणु पुणरुत्तेंहिँ कुव्वर-णाहे ॥१॥
णयण-कडक्खिउ लक्खण-सरवरु। जो सुर-सुन्दरि-णलिणि-सुहङ्करु ॥२॥
जो कत्थूरिय - पङ्कुप्पङ्किउ। जो अरि-करिहि ण डोहेंवि सक्किउ ॥३॥
जो सुर-सउण-सहासेंहिँ मण्डिउ। जो कामिणि-थण-चक्केंहिँ चड्डिउ ॥४॥
तहिँ तेहएँ सरेँ सेय-जलोल्लिउ। लक्खण-वयण-कमलु पप्फुल्लिउ ॥५॥
कण्ठ - मणोहर – दीहर – णालउ। वर - रोमञ्च-कन्टु - कण्टालउ ॥६॥
दसण-सकेसरु अहर-महादलु। वय - मयरन्दउ कण्णावत्तलु ॥७॥
लोयण – फुल्लन्धुय – परिचुम्बिउ। कुटिल-वाल-सेवाल - करम्बिउ ॥८॥

घत्ता

लक्खण-सरवरु हउ भुक्ख-महाहिम-वाए।
त मुह-पङ्कउ लक्खिज्जइ कुव्वर-राए ॥९॥

[१२]

ज मुह-कमलु दिट्ठु ओहुल्लिउ। वालिखिल्ल - तणएण पवोल्लिउ ॥१॥
'हे णरणाह - णाह भुवणाहिव। भोयणु भुञ्जहु सु-कलत्त पिव ॥२॥

शरीर त्रिवलिसे तरंगित था। एकका वक्ष:स्थल विकट था और दूसरेका यौवन और स्तनचक्रसे सहित था। एककी भुजाएँ विशाल थीं तो दूसरेकी मालतीमालाकी तरह सुकोमल। एकका मुखकमल खिला हुआ था जबकि दूसरेका पूर्ण चंद्रके समान सुन्दर था। एकके नेत्रकमल बिखरे हुए थे जबकि दूसरेके नेत्र विभ्रम और विलाससे भरे हुए थे। एकका सिर उत्तम फूलोसे सुवासित था तो दूसरेका सिर सुन्दर मुकुटसे अलंकृत। सभी लोगोने समझ लिया कि एक लक्षणयुक्त लक्ष्मण है और दूसरी नरवेशमे छिपी हुई नारी॥ १–६॥

[११] दानवरूपी दुष्ट ग्रहोके भी ग्रह लक्ष्मणको पानेकी आशासे नलकूवर नरेश कल्याणमालाने देवबाला रूपी नलिनियो के लिए शुभंकर लक्ष्मणरूपी सरोवरको बार-बार तीखे कटाक्षोसे देखा। वह लक्ष्मणरूपी सरोवर कस्तूरीके पंकसे भरा था, शत्रु-रूपी हाथी उसे विलोडित करनेमे असमर्थ थे। हजारो देवतुल्य स्वगुणरूपी पक्षियोसे मंडित और जो स्त्रियोके स्तनरूपी चक्रपर चढ़ चुका था उस वैसे लक्ष्मणरूपी सरोवरमे प्रस्वेदरूपी जलसे उल्लसित लक्ष्मणका मुख-कमल खिला हुआ था। सुन्दर कंठ ही उसकी लम्बी मृणाल थी। सुन्दर रोमांच-समूह, कॉटे, दांत, पराग। अधर पंखुड़ियॉ, और कान पत्ते थे। वह नेत्ररूपी भ्रमरोसे चुंवित टेढ़े-मेढ़े वालोके शैवालसे चिह्नित हो रहा था। नलकूवर नरेशने लक्ष्मणरूपी सरोवरके उस मुखकमलको देखकर समझ लिया कि वह भूखकी महाहिम वातसे आहत है॥ १–६॥

[१२] उसका मुखकमल नोचा देखकर, वालिखिल्यकी लडकी कल्याणमालाने कहा—"हे भुवनाधिप नरनाथ! भोजन कर लीजिए। यह भोजन सुस्त्रीकी तरह, सगुल (मधुर ?? और

स-गुलु स-लोणउ सरसु स-इच्छउ । महुरु सुअन्धु स-णेहु सु-पच्छउ ॥३॥
त भुञ्जेप्पिणु पढम-पियासणु । पच्छलें किं पि करहु सभासणु' ॥४॥
त णिसुणेवि पजम्पिउ लक्खणु । अमर - वरङ्गण-णयण-कडक्खणु ॥५॥
'उहु जो दीसइ रुक्खु रवण्णउ । पत्तल - वहल-डाल - सछण्णउ ॥६॥
आयहों विउलें मूलें दणु-दारउ । अच्छइ सामिसालु अम्हारउ' ॥७॥

घत्ता

लक्खण-वयणेंहिँ वलु कोक्किउ चलिउ स-कन्तउ ।
करिणि-विहूसिउ ण वण-गइन्दु मल्हन्तउ ॥८॥

[१३]

गुलुगुलन्तु हलहेइ महग्गउ । तरुवर-गिरि-कन्दरहों विणिग्गउ ॥१॥
सेय - पवाह - गलिय - गण्डत्थलु । तोणा-जुयल-विउल- कुम्भत्थलु ॥२॥
पिच्छावलि-अलिउल - परिमालिउ । किङ्किणि - गेज्जा - मालोमालिउ ॥३॥
वित्थिय - वाण - विसाण - भयङ्करु । थोर-पलम्व-वाहु-लम्विय - करु ॥४॥
वणुवर — लग्गणखम्भुम्मूलणु । दुट्ठारुट्ट - मेट्ठ - पडिकूलणु ॥५॥
सर-सिक्कार करन्तु महावलु । तिस-भुक्खएँ खलन्तु विहलङ्घलु ॥६॥
छाहिहेँ वेज्झइँ देन्तु विरुद्धउ । जिणवर-वयणङ्कुसेंण णिरुद्धउ ॥७॥
जाणइ - वर - गणियारि-विहूसिउ । त पेक्खेंवि जणवउ उद्धसिउ ॥८॥

घत्ता

मञ्चारुहणहों उत्तिण्णु असेसु वि राय-गणु (?) ।
मेरु-णियम्वहों ण णिवडिउ गह-तारायणु ॥९॥

[१४]

हरि - कल्लाणमाल दणु-दलणेँहिँ । पडिय वे वि वलएवहों चलणेंहिँ ॥१॥
'अच्छहुँ ताव देव जल-कीलएँ । पच्छएँ भोयणु भुञ्जहुँ लीलएँ' ॥२॥

गुड़), सलवण (सुन्दरता और नमक) सरस (रस, जल), सइच्छ (ईच्छा और ईख) से सहित है तथा मधुर, सुगंधित, घृतमय और सुपथ्य है। पहले आप यह प्रिय भोजन ग्रहण कर ले, फिर बादमे संभापण करना।" यह सुनकर, देवबालाओके कटाक्षोसे देखे गये लक्ष्मणने कहा, "वह जो सामने आप बड़े-बड़े पत्तो और डालोसे आच्छन्न बड़ा पेड़ देख रही है उसके विशाल तलमे हमारे श्रेष्ठ स्वामी हैं।" लक्ष्मणके वचन सुनकर उसने अपनी सेनाको पुकार लिया और कांतके साथ ऐसे चल पड़ी मानो हथिनीसे विभूपित वन गजेन्द्रही मल्हता हुआ जा रहा हो ॥ १-६ ॥

[१३] इतनेमे गरजता हुआ रामरूपी महागज, उस विशाल वृक्षकी गिरि-कंदरासे निकल आया। दो तूणीर ही उसका विपुल कुंभस्थल था। पुंखावली रूपी भ्रमरमालासे वह व्याप्त हो रहा था। करधनीकी घंटियोसे झंकृत हो रहा था। विशाल बाणो रूपी दाँतोसे वह भयंकर था। स्थूल और लम्बे बाहु ही उसकी विशाल सूँड थी। वह धनुपरूपी आलानखंभके उन्मूलनमे समर्थ, और रुष्ट दुष्ट शत्रु रूपी महावतके लिए प्रतिकूल था। ऐसा वह महाबली राम-महागज शब्दरूपी सीकर छोड़ रहा था, विह्वलांग वह भूख-प्याससे स्खलित हो रहा था। अपनी ही छायाके विरुद्ध आघात करने वाला वह केवल जिन-वचनरूपी अंकुशसे रोका जा सकता था। जानकी रूपी हथिनीसे वह विभूपित था। उसे देखकर लोग हर्पित हो उठे ॥ १-८ ॥

तब शेप राज-समूह भी मचानसे उतर पड़ा। मानो मेरुके नितम्बसे ग्रहतारा समूह ही टूट पड़ा हो ॥ ९ ॥

[१४] राक्षस-संहारक लक्ष्मण और कल्याणमाला दोनो ही रामके चरणोमे गिर पड़े। "पहले देव, जलक्रीड़ा हो ले तब बादमे

एम भणेप्पिणु डिण्णइँ तूरइँ । पहरि तुरङ्ग-पवर-रह-पूरइँ ॥३॥
पइठु स - साहणु सरवर-णाहयलेँ । कुसुमपुञ्ज - भमन्त-णहमण्डलेँ ॥४॥
सयल - कमल - णवपत्त-विणिम्मिएँ । कील मयर-करघट्टणॅ परिमिएँ ॥५॥
उच्छलन्त - सफरि - घण - विउलेँ । णाणाविह - विहङ्ग - गण-सङ्कुलेँ ॥६॥
कुवलय - दल - तमाल- हरियालणेँ । मोत्तिय-सिप्प-सङ्ख धवलावलेँ ॥७॥
जल - तरङ्ग - सुरचापारम्भिएँ । चक्क-जोइणिय-चञ्चु पवियम्भिएँ ॥८॥

घत्ता

तहिँ सर णाहयलेँ स-कलत्त वे वि हरि-हलहर ।
गेहिणि रमन्ति ण परिमिय चन्द-दिवायर ॥९॥

[१५]

तहिँ तेहएँ सरेँ सलिलेँ तरन्तइँ । सञ्चरन्ति धारागर - जन्तइँ ॥१॥
णाइँ विमाणइँ सग्गहों पडियइँ । घण चिञ्चित्त - रयण-णियडियइँ ॥२॥
णत्थि रयणु जहिँ जन्तु ण घडियउ । णत्थि जन्तु जहिँ मिहुणु ण चडियउ ॥३॥
णत्थि मिहुणु जहिँ णेहु ण वड्ढिउ । णत्थि णेहु जो णउ सुरयड्ढिउ ॥४॥
तहिँ णर-णारि - जुवइ जल-कीलएँ । कीलन्ताइँ णहन्ति सुर-लीलएँ ॥५॥
सलिलु करग्गेँहिँ अप्फालन्तइँ । मुरव-वज्ज-धायइँ दरिसन्तइँ ॥६॥
गलिएँहिँ वलिएँहिँ अहिणव-गेएँहिँ । बन्धहिँ सुरयपिसत्तिय - भेएँहिँ ॥७॥
छन्देँहिँ तालेँहिँ बहु - लय - भङ्गेँहिँ । करणुच्छिसेँहिँ णाणा - भङ्गेँहिँ ॥८॥

घत्ता

घोसन्तु स-राणउ सिङ्गार हार-दरिसावणु ।
पुक्खर-जुज्झु व तं जल कीलणउ स-लक्खणु ॥९॥

लीलापूर्वक भोजन करें।" यह कहकर उन्होंने तूर्य बजा दिया, झल्लरि तुणव, प्रणव और दडि भी आहत हो उठे। सेनासहित वे सरोवर रूपी महाआकाशमें घुस गये। भ्रमर ही मानो उसमें घूमते हुए ग्रहमंडल थे। वह धवल कमलके नक्षत्रोंसे विभूषित, मीन-मकर आदिकी राशियोंसे युक्त उछलती हुई मछलियोंकी चंचल बिजली से शोभित, और नानाविध विहगरूपी मेघोंसे व्याप्त था। कुवलय-दल जिसमें अंधकारके समूहकी भाँति था। जलकणोंके समूह ही वर्षाकी बौछारें थीं, जलतरंगें इन्द्रधनुषकी भाँति मालूम हो रहीं थीं और सेना तारामंडलके समान फैली हुई थी। उस सरोवर-रूपी नभस्तलमें स्त्रियोंसहित, राम और लक्ष्मण दोनों ऐसे मालूम होते थे मानो रोहिणी और रत्नाके साथ चंद्र और सूर्य हों ॥१-६॥

[१५] उस सरोवरके जलमें वे तैरने लगे, उसमें सोनेके यंत्र चल रहे थे, जो ऐसे लगते थे मानो रंगबिरंगे रत्नोंसे निर्मित देवविमान ही स्वर्गतलसे गिर पड़े हैं, उनमें एक भी रत्न ऐसा नहीं था जिसमें यंत्र न लगा हो, और यंत्र भी ऐसा नहीं था जिसमें एक मिथुन (युगल) न चढ़ा हो। मिथुन भी ऐसा नहीं था जिसमें स्नेह न बढ़ रहा हो, और स्नेह भी ऐसा नहीं था जिसमें सुरति न हो। उस सरोवरमें युवक-युवतियोंका समूह देवलीला-पूर्वक जलक्रीड़ामें रत होकर स्नान कर रहा था। कोई अंगुलीसे पानी उछालता, कोई मृदंगपर अपना हाथ दिखा रहा था। स्खलित होकर, मुड़कर, अभिनव गीतों, सुरति-भेदों, बंधों, विविध ताल, लय और भंगों करणुच्छित्तियो ??? नाना भंगिमाओंसे आश्चर्यपूर्ण रागपूर्ण, अहंकारको दिखानेवाली लक्षण-सहित पुष्कर युद्धकी तरह जलक्रीड़ाका (आनन्द ले रहे थे ?)। उसमें सराग नेत्र और अंगहार दिखाई दे रहे थे। सलक्षण (लक्ष्मण और लक्षण सहित) मानो वह जल-क्रीड़ा पुष्कर युद्धकी तरह थी ॥ १-६ ॥

[१६] 'जय जय' शब्द पूर्वक लोगोंने जलमे स्नान किया, फिर राम और लक्ष्मण बाहर निकले। उसी बीचमे युद्धमे समर्थ, नलकूबर नगरका राजा कल्याणमालाने हाथोकी अंजली बाँधकर नमस्कार किया और उनका शरीर पोछा। बादमे अपने भवनमे ले जाकर सोनेके आसन-पीठपर उन्हें बैठाया और खूब भोजन परसा। वह, सुकलत्रकी तरह इच्छित और भोग्य था। राज्यकी तरह पट्टविभूपित था। तूरको समान थालसे अलंकृत सुरतिके समान सरस और सतिम्मण (आर्द्र और कढ़ी सहित) था, व्याकरणकी तरह वह व्यञ्जनो (व्यञ्जनवर्ण और पकवान) से शोभित था। उन्होने इच्छाभर भोजन किया, मानो जगन्नाथ ऋपभने ही पारणा की हो। फिर उसने विलेप करके दिव्यदेवांग वस्त्र दिये। वे वस्त्र, मानो सुकवि कृत शास्त्रके समान सालंकार थे ॥१-६॥

[१७] जैसे समुद्रजल अपनी ही बहुल लहरोंको धारण करता है, वैसे ही उन्होंने वे दिव्य देवांग वस्त्र पहन लिये। जिन-वचनोकी तरह अत्यंत दुर्लभ, ईखवनकी तरह विशालय (जलसारिणी और कपड़ा) वाले सभाभवनकी तरह दीर्घछेद (सीमा और छेद) वाले, उद्यानकी तरह फूल शाखा (और पत्तियो) से सहित, कवि-वरके काव्यपदोकी तरह दोपरहित, चारणोंके वचनोकी तरह हलके, कामिनीके मुख-कमलकी तरह सुंदर, जिनधर्मके श्रेष्ठ फलकी तरह भारी, किन्नरोके जोड़ेकी तरह अच्छी तरह ग्रथित, व्याकरण की तरह अत्यंत परिपूर्ण थे। इतनेमे, इन्द्रके वज्रकी तरह क्षीण मध्यभाग वाले, नलकूबर नगरके श्रेष्ठ उस कुमारने अपना कवच उतार दिया। मानो सॉपने अपनी केचुली ही उतार दी हो, या मानो सुरजनोके मन और नेत्रोको आनंद देनेवाले, त्रिभुवननाथ जिनेन्द्रने मोक्षके लिए संसारका त्याग कर दिया हो ॥१-६॥

[१८]

तहिँ एक्कन्त - भवणेँ पच्छण्णए । जं अप्पाणु पगासिउ कण्णए ॥१॥
पुच्छिय राहवेण परिओसें । 'अक्खु काइँ तुहुँ थिय णर-वेसें' ॥२॥
तं णिसुणेप्पिणु पगलिय - णयणी । एम पजम्पिय गग्गिर-वयणी ॥३॥
'रुद्दभुत्ति - णामेण पहाणउ । दुज्जउ विञ्झ-महीहर-राणउ ॥४॥
तेण धरेप्पिणु कुव्वर - सारउ । वालिखिल्लु णिउ जणणु महारउ ॥५॥
तें कज्जें थिय हउँ णर - वेसें । जिह ण मुणिज्जमि जणेंण असेसें' ॥६॥
तं णिसुणेवि वयणु हरि कुद्धउ । णं पञ्चाणणु आमिस-लुद्धउ ॥७॥
अच्चन्तन्त - णेत्तु फुरियाहरु । एम पजम्पिउ कुरुडु समच्छरु ॥८॥

घत्ता

'जइ समरङ्गणें तं रुद्दभुत्ति णउ मारमि ।
तो सहुँ सीयएँ सीराउहु णउ जयकारमि' ॥९॥

[१९]

जं कल्लाणमाल मम्भीसिय । लहु णर-वेसु लइउ आसासिय ॥१॥
ताव दिवायरु गउ अत्थवणहों । लोउ पढुक्कउ णिय-णिय-भवणहों ।२।
णिसि-णिसियरि दस-दिसहिँ पधाइय । महि-गयणोट्ठ डसेवि सपाइय ॥३॥
गह - णक्खत्त - दन्त - उद्दन्तुर । उवहि-जीह - गिरि-दाढा-भासुर ॥४॥
वण-लोयण - ससि - तिलय-विहूसिय । सञ्झा-लोहिय - दित्त-पदीसिय ॥५॥
तिहुयण - वयण - कमलु दरिसेप्पिणु । सुत्त णाइँ रवि-मडउ गिलेप्पिणु ॥६॥
ताव महावल - वलु विण्णासेंवि । तालवत्तें णिय-णामु पगासेंवि ॥७॥
सीयएँ सहुँ वल-कण्ह विणिग्गय । णित्तुरङ्ग णीसन्दण णिग्गय ॥८॥

घत्ता

ताव विहाणउ रवि उट्ठिउ रयणि-विणासउ ।
गउ अन्छन्ति व ण दिणयरु आउ गवेसउ ॥९॥

[२०]

उट्ठेंवि कुव्वरपुर - परमेसरु । जाव स-हत्थें वायइ अक्खरु ॥१॥

[१८] एकान्त भवनमें उस कन्याने जब अपने आपको प्रकट किया, तब रामने परितोषके साथ पूछा, "बताइये, आप नरवेशमें क्यों रहती थीं"। यह सुनकर गलितनेत्र वह, गद्गदवाणीमें बोली, "विध्याचलका रुद्रभूति नामक दुर्जेय राजा है। उसने मेरे पिता नलकूबर नगरके राजा वालिखिल्यको बंदी बना लिया है। इसी कारण मैं नरवेशमें रह रही हूँ, कि कोई मुझे पहचान न ले। यह सुनते ही लक्ष्मण आमिष-लोभी सिंहकी भाँति क्रुद्ध हो उठा। मत्सरसे भरकर, आरक्तनेत्र, कंपिताधर, क्रूर वह बोला, "यदि मैं उस रुद्रभूतिको समर-प्रांगणमें नहीं मार सका तो सीता सहित रामकी जय नहीं बोलूँगा॥ १–६॥

[१९] अभयदान और आश्वासन पाकर कल्याणमालाने नरवेश हमेशाके लिए त्याग दिया। सूरज डूब चुका था। लोग अपने-अपने घर चले गये। निशारूपी निशाचरी चारों ओर दौड़ पड़ी। धरती आकाश सब कुछ उसने लील लिया। ग्रह नक्षत्र उसके लंबे और नुकीले दाँत थे, समुद्र जीभ, पर्वत भयंकर दाढ़, मेघ नेत्र और चन्द्रमा उस निशा-निशाचरीका तिलक था। सांझकी अरुणिमासे वह ऐसी उद्दीप्त हो रही थी मानो वह सूर्य शव !!! को त्रिभुवनके मुख कमलके लिए दिखाकर लीलकर सो गई हो। इसी बीच महाबली वे अपनी तैयारीकर और तालपत्रपर अपना नाम अंकितकर, सीता देवीके साथ, बिना किसी रथ अश्व के चल दिये। सवेरे निशाका अन्त करनेवाले सूर्यका उदय हुआ। वह मानो यही खोजता हुआ आ रहा था कि क्या वे लोग चले गये॥ १–६॥

[२०] नलकूबरका राजा—कल्याणमालाने सवेरे उठकर उस तालपत्र-लेखको पढ़ा और जब उसने त्रिलोकमें अतुल प्रतापी, देव-

ताव तिलोयहों अतुल-पयावइँ । सुरवर-भवण-विणिग्गय-णायइँ ॥२॥
दुद्दम-दाणवेन्द-आयामइँ । दिट्ठइँ लक्खण-रामहुँ णावइँ ॥३॥
खणेँ कल्लाणमाल मुच्छंगय । णिवडिय केलि व खर-पवणाहय ॥४॥
दुक्खु दुक्खु आसासिय जावेँहिँ । हाहाकारु पमेल्लिउ तावेँहिँ ॥५॥
'हा हा राम राम जग-सुन्दर । लक्खण लक्खणलक्ख-सुहङ्कर ॥६॥
हा हा सीएँ सीएँ उप्पेक्खमि । तिहि मि जणहुँ एक्कु पि ण पेक्खमि' ॥७॥
एम पलाउ करन्ति ण थक्कइ । खणेँ णीससइ ससइ खणेँ कोक्कइ ॥८॥

घत्ता

खणेँ खणेँ जोयइ चउदिसु लोयणेँहिँ विसालेँहिँ ।
खणेँ खणेँ पहणइ सिर-कमलु स इं भु व-डालेँहिँ ॥९॥

●

२७. सत्तवीसमो संधि

तो सायर-वज्जावत्त-धर सुर-डामर असुर-विणासयर ।
णारायण-राहव रणेँ अजय ण मत्त महागय विञ्झु गय ॥

[१]

ताणन्तरेँ णम्मय दिट्ठ सरि । सरि जण-मण-णयणाणन्द-करि ॥१॥
करि-मयर-कराहय-उहय-तड । तडयड पडन्ति ण वज्झ-झड ॥२॥
झड-भीम-णिणाए गाढ भय । भय-भीय-समुट्ठिय-चक्कहय ॥३॥
हय-हिंसिय-गज्जिय-मत्त-गय । गयवर-अणवरय-विसट्ट-मय ॥४॥
मय-मुक्क-करम्बिय वहइ महु । महुयर रुण्टन्ति मिलन्ति तहु ॥५॥
तहों धाइय गन्धव-पवह-गण । गण-भरिय-करञ्जलि तुट्ठ-मण ॥६॥

लोकमे विख्यात, दुष्ट दानव-राजोंको वशमे करनेवाले राम-लक्ष्मण को नहीं देखा तो उसी क्षण वह पवनाहत कदली वृक्षकी भाँति मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। बड़ी कठिनतासे जैसे-तैसे उसे जब चेतना आई तो उसने हाहाकार मचाना शुरू कर दिया, "हे राम! हे जगसुंदर राम, लाखो लक्षणोसे अलंकृत हे लक्ष्मण! हे सीता! मै ऊपर देखती हूँ, पर तीनोंमेंसे एकको भी नहीं देख पाती।" इस प्रकार प्रलाप करती हुई वह, एक पल भी विश्राम नहीं ले पा रही थी। एक क्षणमे उच्छ्वास लेती और फिर उन्हें पुकारने लगती। क्षण-क्षणमे वह चारो ओर देखती अपनी बड़ी बड़ी आँखोसे। (और उन्हें न पाकर) अपने ही हाथो अपना शिर-कमल धुनने लगती ॥१-६॥

●

सत्ताईसवीं संधि

समुद्रावर्त और वज्रावर्त धनुप धारण करनेवाले, असुर संहारक, रणमें अजेय, राम और लक्ष्मण, महागजकी भाँति विन्ध्याचलकी ओर गये।

[१] मार्गमे उन्हें जनोके मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाली नर्वदा नदी मिली। हाथी और मगरोंसे आहत उसके दोनो तट ऐसे लगते थे मानो तड़तड़ करके घातक चोट ही पड़ रही हो। उस आघातकी ध्वनिसे अत्यधिक भय उत्पन्न हो रहा था। चकोर उड़कर वहाँसे भाग रहे थे। अश्व हींस रहे थे और गज चिग्घाड़ भर रहे थे। उत्तम गजोसे बढ़िया मदजल झर रहा था। कस्तूरी मिश्रित मधुजल वह रहा था। भ्रमर उसका पान करनेके लिए गुञ्जन करते हुए उड़ रहे थे। गन्धर्व देवता दौड़ रहे थे। संतुष्टमन उनकी अञ्जलियाँ भरी हुई थी। बैल सुन्दर

मणहर ढेक्कार मुअन्ति वल। वल-कमल-करम्विय सङ्ग-दल ॥७॥
दलेँ भमर परिट्ठिय केसरहोँ। केसरु णिउ णवर जिणेसरहोँ ॥८॥

घत्ता

तो सीराउह-सारङ्गधर सहुँ सीयएँ सलिलेँ पइट्ठ णर।
उवयारु करेप्पिणु रेवयएँ ण तारिय सासण-देवयएँ ॥९॥

[२]

थोवन्तरेँ महिहर भुअण-सिरि। सिरिवच्छेँ दीसइ विञ्झइरि ॥१॥
इरिणप्पहु ससिपहु कण्णपहु। पिहुलप्पहु णिप्पहु झीणपहु ॥२॥
मुरवो व्व स-तालु स-वसहरु। विसहो व्व स-सिङ्गु महन्त-डरु ॥३॥
मयणो व्व महाणल-दड्ढ-तणु। जलउ व्व स-वारि भड्ड व्व स-वणु ॥४॥
तहिँ तेहएँ सेलेँ अहिट्ठियइँ। दुणिमित्तइँ ताव समुट्ठियइँ ॥५॥
फेक्कारइ सिव वायसु रसइ। भीसावणु भण्डणु अहिलसइ ॥६॥
सरु सुणेवि पकम्पिय जणय-सुअ। थिय विहि मि धरेप्पिणु भुएँहिँ भुअ ॥७॥
'किं ण सुउ चवन्तु वि को वि णरु। जिह सउणउ माणिउ देइ वरु' ॥८॥

घत्ता

त णिसुणेँवि असुर-विमद्दणेँण मम्भीसिय सीय जणद्दणेँण।
'सिय लक्खणु वलु पच्चक्खु जहिँ कउ सउण-विसउणेँहिँ गण्णु तहिँ ॥९॥

[३]

एत्थन्तरेँ रहस-समुच्छलिउ। आहेडएँ रुद्दभुत्ति चलिउ ॥१॥
ति-सहासेँहिँ रहवर-गयवरेँहिँ। तद्दूण-तुरङ्गेँहिँ णरवरेँहिँ ॥२॥

रँभा रहे थे। भ्रमर कमलदलोंके परागमें घुस रहे थे। केशर जिनेश्वरकी तरह शोभित हो रही थी ॥१-८॥

तब राम लक्ष्मण और सीतादेवीको लेकर उसके जलमें घुसे। रेवाने भी, मानो शासन देवीकी भाँति उपकार करनेके लिए उन्हें उस पार कर दिया (तार दिया) ॥६॥

[२] (गौतम गणधरने कहा) हे राजन् (श्रेणिक) थोड़ी देर के अनन्तर रामको पृथ्वीका सौन्दर्य विंध्याचल पर्वत दीख पड़ा। उस पर्वतराजके निकट ही ईरणप्रभ, शशिप्रभ, कृष्णप्रभ, निष्प्रभ, क्षीणप्रभ पहाड़ थे। वह विन्ध्याचल मृदङ्गकी तरह, ताल (ताल वृक्ष और सङ्गीतका ताल) से सहित सुवंशधर (उत्तम बाँस धारण करनेवाला), बैलकी तरह सश्टङ्ग (सींग और शिखरवाला) तथा भयानक था। कामदेवके समान महानल (दावानल व शिवके तीसरे नेत्रकी आग) से उसका शरीर जल रहा था। मेघकी तरह सजल, और योधाकी तरह व्रणसहित (घाव और जङ्गल) था। परन्तु उस ऐसे पर्वतमें अधिष्ठित होते ही रामको कुछ अपशकुन हुए। सियार फेक्कार कर रहे थे। कौवा (काँव २) बोल रहा था और भीषण मांस चाह रहा था। उसके स्वरको सुनकर जनकसुता सीता काँप उठीं। अपने दोनो हाथसे रामको पकड़कर बोलीं—"क्या आपने नहीं सुना, जैसे कोई सोता हुआ आदमी बड़बड़ाता है, वैसे ही इसे समझिए।" यह सुनकर असुर-संहारक जनार्दन राम सीताको अभय देते हुए बोले—"जहाँ लक्ष्मणके समान शक्तिशाली व्यक्ति स्पष्टरूपसे हमारे साथ है, तब यहाँ तुम्हें शकुन और अपशकुनकी चिन्ता कैसी ?" ॥१-६॥

[३] ठीक इस अवसरपर, हर्षसे झूलता हुआ रुद्रभूति शिकारके लिए निकला। वह तीन हजार हाथी, श्रेष्ठ रथों और

सचल्ले विञ्झ - पहाणएँण। लक्खिज्जइ जाणइ राणएँण ॥३॥
पप्फुल्लिय - धवल - कमल-वयण। इन्दीवर - दल - दीहर - णयण ॥४॥
तणु मज्झें णियम्वें वच्छें गरुअ। ज णयण-कडक्खिय जणय-सुअ ॥५॥
उम्मायण - मयणें हिँ मोहणें हिँ। वाणें हिँ सदीवण - सोसणें हिँ ॥६॥
आयल्लिउ सल्लिउ मुच्छियउ। पुणु दुक्खु दुक्खु ओमुच्छियउ ॥७॥
कर मोडइ अङ्गु वलइ हसइ। ऊससइ ससइ पुणु णीससइ ॥८॥

घत्ता

मयरद्धय-सर-जज्जरिय-तणु पहु एम पजम्पिउ कुइय-मणु।
'वलिमण्डएँ वणवसि वणवसहेँ उद्दालेँ वि आणहों पासु महु' ॥९॥

[४]

त वयणु सुणेप्पिणु णर-णियरु। उत्थरिउ णाइँ णव-अम्वुहरु ॥१॥
गज्जन्त - महागय - घण - पवलु। तिक्खग्ग - खग्ग - विज्जुल-चवलु ॥२॥
हय-पडह - पगज्जिय - गयणयलु। सर-धारा - धोरणि - जल-वहलु ॥३॥
धुअ - धवल - छत्त -डिण्डीर-वरु। मण्डलिय - चाव - सुरचाव - करु ॥४॥
सय - सन्दण - वीढ - भयावहुलु। सिय-चमर-वलाय - पन्ति-विउलु ॥५॥
ओरसिय - सङ्ख - दद्दुर - पउरु। तोणीर - मोर - णच्चण - गहिरु ॥६॥
त पेक्खेँवि गुञ्ज-पुञ्ज-णयणु। दट्ठोट्ठ - रुट्ठ - रोसिय - वयणु ॥७॥
आवद्ध-तोणु धणुहरु अभउ। धाइउ लक्खणु लहु लद्ध-जउ ॥८॥

घत्ता

त रिउ-कङ्काल-विणासयरु हलहेइहेँ भायरु सीय-वरु।
जण मण-कम्पावणु स-पवणु हेमन्तु पढुक्किउ महुमहणु ॥९॥

इनसे दूने अश्वोंसे सहित था। उसने सीताको देखा। उसका मुख खिले हुए सफेद कमलके समान था। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी, मध्यभाग दुबला-पतला तथा नितम्ब और स्तन विशाल थे। सीता को देखते ही वह उन्मादक कामके मोहक, सन्दीपक और शोपक तीरोंसे पीड़ित हो उठा। वेदनासे मूर्छित उसे बड़ी कठिनाईसे चेतना आई। कभी वह हाथ मोड़ता, कभी अङ्ग हिलाता, उच्छ्वास भरता और निःश्वास छोड़ता। तब कामसे जर्जर शरीर उस राजा ने कहा—"उस वनवासिनी (सीताको) उन वन-वासियोंसे छीन-कर ले आओ" ॥१–६॥

[४] यह शब्द सुनते ही मनुष्योंका दल उछल पड़ा। मानो नये जलधर ही उमड़ आये हों। गरजते हुए महागज रूपी मेघोंसे प्रबल, तीखी तलवारोंकी बिजलीसे चपल, आहत नगाड़ोंकी गर्जनासे आकाशको गुंजाता हुआ, तीरकी पंक्तियोंकी जलधारासे व्याप्त, कंपित श्वेत छत्र रूपी इन्द्रधनुपको, हाथमें लिये हुए, सैकड़ों रथपीठोंसे भयावह, सफेद चमररूपी बगुलोंकी कतारसे विपुल, बजते हुए शङ्खोंके मेंढ़कोंसे प्रचुर, तूणीर रूपी मोरके नृत्यमें गंभीर, मनुष्योंके उस दलको देखकर जयशील, निडर, लक्ष्मण धनुष लेकर दौड़ा। ओठोंको चबाते हुए उसका चेहरा क्रोधसे तमतमा रहा था। उनके नेत्र मृगसमूहकी तरह आरक्त थे। उनकी पीठपर तरकस बँधा हुआ था। इस प्रकार हेमंत बनकर लक्ष्मण उसके (भिल्लराजके) पास जा पहुँचे। शत्रु रूपी वर्षाके संहारक वह; हलहेति (कृषक और रामके भाई) सीतावर (टंडीहवासे युक्त और सीताके लिए उत्तम) जनमनको कम्पित कर देनेवाले, बाणरूपी पवनसे युक्त थे ॥१–६॥

[५]

अप्फालिउ महुमहणेण धणु । धणु-सद्दें समुट्ठिउ खर-पवणु ॥१॥
खर-पवण-पहय जलयर रडिय । रडियागमे वज्जासणि पडिय ॥२॥
पडिया गिरि सिहर समुच्छलिय । उच्छलिय चलिय महि णिद्दलिय ॥३॥
णिद्दलिय भुअङ्ग विसग्गि मुक्क । मुक्कन्त णवर सायरहुँ ढुक्क ॥४॥
ढुक्कन्तेंहिँ वहल फुलिङ्ग घित्त । घण सिप्पि-सङ्ख-सपुड पलित्त ॥५॥
धगधगधगन्ति मुत्ताहलाइँ । कढकढकढन्ति सायर-जलाइँ ॥६॥
हसहसहसन्ति पुलिगन्तराइँ । जलजलजलन्ति भुअणन्तराइँ ॥७॥
तें धणुहर-सद्दें णिट्ठुरेण । रिउ मुक्क पयाव-मडप्फरेण ॥८॥

घत्ता

भय-भीय विसण्ठुल णर पवर लोट्टाविय हय गय धय चमर ।
धणुहर टङ्कार पवण-पहय रिउ-तरुवर ण सय-खण्ड गय ॥९॥

[६]

एत्थन्तरें तो विन्झाहिवइ । सहुँ मन्तिहिँ रुद्दभुत्ति चवइ ॥१॥
'इसु काइँ होज्ज तइलोक्क-भउ । किं मेरु-सिहरु सय-खण्ड गउ ॥२॥
कि दुन्दुहि हय सुरवर-जणेंण । किं गज्जउ पलय-महाघणेंण ॥३॥
किं गयण-मग्गेँ तडि तडयडिय । कि महिहरेँ वज्जासणि पडिय ॥४॥
कि कालु कयन्त-मित्तु हसिउ । कि वलयामुहु समुद्दु रसिउ ॥५॥
किं इन्दहोँ इन्दत्तणु टलिउ । खय-रक्खसेण कि जगु गिलिउ ॥६॥
किं गउ पायालहोँ भुवणयलु । वम्भण्डु फुट्टु कि गयणयलु ॥७॥
किं खय-मारुउ ठाणहोँ चलिउ । किं असणि-णिहाउ समुच्छलिउ ॥८॥

[५] लक्ष्मणने पहुँचते ही धनुषकी टंकार की। उसकी ध्वनिसे पवनका प्रचण्ड वेग उठा। उस वेगसे आहत मेघ गरज उठे। उसके गर्जनसे वज्र गिरने लगे। वज्रपातसे पर्वतोंकी चोटियाँ उछलने लगीं। उनके उछलनेसे कम्पमान धरती चरमराने लगी। उसकी चरमराहटसे सर्प विषकी ज्वाला उगलने लगे। उनकी उगली हुई आग समुद्र तक जा पहुँची। वहाँ तक पहुँची हुई आगकी चिनगारियोंसे सीप और शंखोंके सम्पुट जल उठे। मोती धकधक करके जल उठे। समुद्रका जल कड़कड़ाने लगा। किनारोंके अन्तर हस-हस करके धसने लगे। इस प्रकार विश्वका अन्तराल जल उठा। उस धनुषके कठोर शब्दने शत्रुका अहङ्कार और प्रताप चूर-चूर कर दिया। भयभीत श्रेष्ठ योधा अस्त-व्यस्त हो उठे। गज, अश्व, ध्वज, चमर सब लोट-पोट हो गये। धनुषकी टंकारकी हवासे आहत होकर शत्रुरूपी महावृक्ष मानो सौ-सौ खण्डोंमे खण्डित हो उठा ॥१-६॥

[६] तब, विन्ध्याचल नरेश रुद्र-भूतिने अपने मन्त्रियोंसे कहा, "आखिर तीनों लोकोंमे इस तरहका भय क्यों हो रहा है ? क्या मेरु पर्वतके शिखरके शत-शत खण्ड हो गये है ? क्या इन्द्रने अपना नगाड़ा बजवा दिया है ? क्या प्रलयके महामेघ गरज उठे है ? या आकाश-मार्गमे तड़तड़ बिजली चमक रही है या पहाड़पर वज्र टूट पड़ा है, या यमका मित्र काल अट्टहास कर रहा है या गोलाकार समुद्र हॅस उठा है ? या किसीने इन्द्रके इन्द्रत्वका अतिक्रमण कर दिया है, या फिर विनाशके राक्षसने ही समूचे संसारको निगल लिया है। क्या भुवनतल पाताल लोकमे चला गया है। या कि ब्रह्माण्ड ही फूट गया है। या आकाशतल ही फट गया है। क्या क्षयपवन ही अपने स्थानसे

घत्ता

किं सयल स-सायर चलिय महि कि दिसि-गय किं गज्जिय उवहि ।
एँउ अक्खु महन्तउ अच्छरिउ कहोँ सद्दें तिहुअणु थरहरिउ ॥९॥

[७]

ज णरवइ एव चवन्तु सुउ । पभणइ सुभुत्ति कण्टइय-भुउ ॥१॥
'सुणि अक्खमि ज तइलोक्क-भउ । णउ मेरु-सिहरु सय-खण्ड गउ ॥२॥
णउ दुन्दुहि हय सुरवर-जणेँण । णउ गज्जिउ पलय-महाघणेँण ॥३॥
णउ गयण-मग्गेँ तडि तडयडिय । णउ महिहरेँ वज्जासणि पडिय ॥४॥
णउ कालु कियन्त-मित्तु हसिउ । णउ वलयामुहु समुद्दु रसिउ ॥५॥
णउ इन्दहोँ इन्दत्तणु टलिउ । खय-रक्खसेण णउ जगु गिलिउ ॥६॥
णउ गउ पायालहोँ भुवणयलु । वम्भण्डु फुट्टु णउ गयणयलु ॥७॥
णउ खय-मारुउ थाणहोँ चलिउ । णउ असणि-णिहाउ समुच्छलिउ ॥८॥
णउ सयल स-सायर चलिय महि । णउ दिसि-गय णउ गज्जिय उवहि ॥९॥

घत्ता

सिय-लक्खण-वल-गुण-वन्तएँण णीसेसु वि जउ धवलन्तएँण ।
सु-कलत्तें जिम जण-मणहरेँण एँउ गज्जिउ लक्खण धणुहरेँण ॥१०॥

[८]

सुणेँ णरवइ असुर-परायणहुँ । ज चिण्हइँ वल-णारायणहुँ ॥१॥
त अत्थि असेसु वि वणवसहुँ । सुरभुवणुच्छलिय - महाजसहुँ ॥२॥
एक्कहोँ ससि-णिम्मल-धवलु तणु । अण्णेक्कहोँ कुवलय-घण-कसणु ॥३॥
एक्कहोँ महि-माणदण्ड चलण । अण्णेक्कहोँ दुद्दम-दणु-दलण ॥४॥
एक्कहोँ तणु मज्झु पदीसियउ । अण्णेक्कहोँ कमल-विहूसियउ ॥५॥

चल पड़ा है, या कि समुद्रसहित समूची धरती ही चलायमान हो गई है ? या दिग्गज दहाड़ रहे है या समुद्र गरज रहा है ? आखिर यह किसके शब्दसे सारा संसार थर्रा उठा है ? बताओ यह क्या है ? मुझे बड़ा विस्मय हो रहा है" ॥१-६॥

[७] राजाको यह कहते हुए सुनकर, सुभुक्ति नामके मन्त्रीने पुलकसे भरकर कहा—"सुनिये मै बताता हूँ, क्यो तीनों लोकोमे इतना भय उत्पन्न हो रहा है। न तो मेरुपर्वतके सौ टुकड़े हुए हैं और न इन्द्रका नगाड़ा ही बजा है। न प्रलयकालके मेघ गरजे है और न आकाशमार्गमे बिजली गरजी है। न पहाड़पर वज्रपात हुआ है और न यमका मित्र काल ही हँसा है। न तो वलयाकार समुद्र हँसा है और न इन्द्रका इन्द्रत्व ही अतिक्रान्त हुआ है। न तो क्षयके राक्षसने संसारको निगला है और न ब्रह्माण्ड या गगन तल ही फूटा है, न क्षयमारुत ही अपने स्थानसे चलित हुआ है। न तो वज्रका आघात हो उछला है और न समुद्र सहित धरती ही उछली है। न तो दिग्गज दहाड़ा और न समुद्र ही गरजा। प्रत्युत यह धनुर्धारी लक्ष्मणकी हुंकार है। वह सीता और रामके साथ है और अपने गुणोसे समूची धरतीको उन्होने धवल कर दिया है। वह सुकलत्रकी तरह जनमनके लिए सुन्दर लगते हैं ॥१-१०॥

[८] असुरोको परास्त करनेवाले बलभद्र और नारायणके जो चिह्न हमने सुने है, वे सब, इन, स्वर्ग तकमे प्रसिद्ध वनवासियोमे मिलते हैं। उनमेसे एक शशिकी तरह गौर वर्ण है और दूसरा इन्दीवर या मेघकी तरह श्याम वर्ण है। एकके चरण मानो धरतीके मानदण्ड है, और दूसरेके दुर्दम शत्रुओके संहारक। एकका शरीर मध्यमे कृश है, और दूसरेका शरीर कमलोसे अंचित है।

एक्कहोँ वच्छत्थलु सिय-सहिउ । अण्णेक्कहोँ सीयाणुग्गहिउ ॥६॥
एक्कहोँ भीसावणु हेइ हलु । अण्णेक्कहोँ धणुहरु अतुल-वलु ॥७॥
एक्कहोँ मुहु ससिकुन्दुज्जलउ । अण्णेक्कहोँ णव-घण-सामलउ' ॥८॥

घत्ता

त वयणु सुणेप्पिणु विगय-मउ णंसिन्दणु णिग्गउ णित्तुरउ ।
वलएवहोँ चलणेँहिँ पडिउ किह अहिमेएँ जिणिन्दहोँ इन्दु जिह ॥९॥

[९]

ज रुद्दभुत्ति चलणेँहिँ पडिउ । तं लक्खणु कोवाणलेँ चडिउ ॥१॥
धगधगधगन्तु । थरथरथरन्तु ॥२॥
'हणु हणु' भणन्तु । ण कलि कियन्तु ॥३॥
करयल धुणन्तु । महि णिद्दलन्तु ॥४॥
विप्फुरिय - वयणु । णिट्ठुरिय - णयणु ॥५॥
महि - माणदण्डु । परवल - पचण्डु ॥६॥
सो चविउ एव । 'रिउ मेल्लि देव ॥७॥
ज पइज एण । पुज्जइ हएण' ॥८॥

घत्ता

त वयणु सुणेप्पिणु अतुल-वलु 'सुणु लक्खण' पचविउ एव वलु ।
मुक्काउहु जो चलणेँहिँ पडइ तें णिहए को जसु णिव्वडइ' ॥९॥

[१०]

थिउ लक्खणु वलेण णिवारियउ । ण वर-गइन्दु कण्णारियउ ॥१॥
ण सायरु मज्जायएँ धरिउ । पुणु पुणु वि चविउ मच्छर-भरिउ ॥२॥
'खल खुद्द पिसुण तउ सिर-कमलु । एत्तडेण चुक्कु जं णविउ वलु ॥३॥
वरि वालिखिल्लु मुएँ वन्दि लहु । ण तो जीवन्तु ण जाहि महु' ॥४॥
त णिसुणेँवि णिविसेँ मुक्कु पहु । ण जिणवरेण ससार-पहु ॥५॥
ण गह-कल्लोलेँ अमिय-तणु । ण गरुड-विहङ्गेँ उरगमणु ॥६॥

एकका वक्षःस्थल शोभासे सहित है दूसरेका वक्षःस्थल सीताको अनुगृहीत करनेवाला है। एकका भीषण आयुध है हल, और दूशरेका अतुल बल धनुष है। एकका मुख शशि और कुन्दकी तरह उज्ज्वल है और दूसरेका मुख नव घनकी तरह श्यामल।" यह वचन सुनकर रुद्रभूतिका मद उतर गया और निरुत्तर होकर विना रथके ही चल पड़ा। जाकर वह रामके चरणोमे वैसे ही गिर पड़ा जैसे अभिषेकके समय इन्द्र जिनेन्द्रके चरणोमे गिर पड़ता है ॥१–८॥

[९] यद्यपि रुद्रभूति रामके चरणोमें नत था, तो भी लक्ष्मण क्रोधसे तमतमा रहा था। वह कलि या यमकी तरह "मारो मारो" चिल्लाता, हाथ धुनता, धरती रौंदता हुआ, भयङ्कर-नेत्र, शत्रुके लिए प्रचंड, पृथ्वीका मानदण्ड, लक्ष्मण बोला, "देव, शत्रुको छोड़ दीजिए। इसे मारकर मै अपनी प्रतिज्ञा पूरी करूँगा।" यह सुनकर अतुलबल बलभद्र रामने कहा, "सुनो लक्ष्मण, जो शस्त्र छोड़कर अपने चरणोमें पड़ा हो उसे मारकर तुम्हें क्या यश प्राप्त होगा" ॥१–९॥

[१०] यह कहकर रामने लक्ष्मण को उसी प्रकार रोक दिया जिस तरह महावत उत्तम गजको रोक देता है। या मानो उन्होंने समुद्रको पुनः मर्यादित कर दिया हो। परन्तु फिर भी रोषसे प्रदीप्त लक्ष्मण बोला, "रे खल क्षुद्र पिशुन, तेरा सिर केवल इसलिए बच सका क्योंकि तू रामके चरणोमे नत है। अच्छा अब तुम बालिखिल्यको तत्काल मुक्त कर दो। नहीं तो तुम्हें मै किसी भी तरह जीवित नहीं छोड़ सकता।" यह सुनकर बालिखिल्य को रुद्रभूतिने ऐसे छोड़ दिया, मानो जिनने संसारको छोड़ दिया हो या राहुने चन्द्रको, गरुड़ने साँपको छोड़ दिया हो। बालिखिल्य

ण मुक्कु सुअणु दुज्जण-जणहों। णं वारणु वारि-णिवन्धणहों ॥७॥
ण मुक्कु भविउ भव-सायरहों। तिह वालिखिल्लु दुक्खोयरहों ॥८॥

घत्ता

ते रुद्दभुत्ति-वल-महुमहण सहुँ कुव्वर-णिवेंण चयारि जण।
थिय जाणइ तेहिँ समाणु किह चउ-सायर-परिमिय पुहइ जिह ॥९॥

[११]

तो वालिखिल्ल-विञ्झाहिवइ। अवरोप्परु णेह-णिवद्ध-मइ ॥१॥
कम-कमलेंहिँ णिवडिय हलहरहों। णमि-विणमि जेम चिरु जिणवरहों ॥२॥
सइँ हत्थें वलेंण समुट्ठविय। उवहि व समएहिँ परिट्ठविय ॥३॥
भरहहों पाइक्क वे वि थविय। लहु णिय-णिय-णिलयहुँ पट्ठविय ॥४॥
उत्तिण्णइँ तिण्णि वि महिहरहों। ण भवियइँ भव-दुक्खोयरहों ॥५॥
ण मेरु-णियम्वहों किण्णरइँ। ण सग्गहों चवियइँ सुरवरइँ ॥६॥
विणु खेवें तावि पराइयइँ। किर सलिलु पियन्ति तिसाइयइँ ॥७॥
णवरुण्हउ रवियर-तावियउ। सु-कुडुम्वु व खल-सतावियउ ॥८॥

घत्ता

दिणयर-वर-किरण-करम्वियउ जलु लेवि भुएँहिँ परि-चुम्वियउ।
पइसन्तु ण भावइ मुहहों किह अण्णाणहों जिणवर-वयणु जिह ॥९॥

[१२]

पुणु तावि तरेप्पिणु णिग्गयइँ। णं तिण्ण मि विज्झ-महागयइँ ॥१॥
वइदेहि पजम्पिय हरिवलहों। सुरवर-करि-कर - थिर-करयलहों ॥२॥
'जलु कहि मि गवेसहों णिम्मलउ। ज तिस-हरु हिम-ससि-सीयलउ ॥२॥
त इच्छमि भविउ व जिण-वयणु। णिहि णिद्धणु जच्चन्धु व णयणु' ॥३॥

भी रुद्रभूतिसे उसी प्रकार मुक्त हो गया जिस प्रकार सज्जन दुर्जनसे, गज आलान-स्तम्भसे, और भव्य जीव सांसारिक दुःखसे मुक्त हो जाता है। इस प्रकार रुद्रभूति, राम, लक्ष्मण और बालिखिल्य चारो मिलकर एक हो गये, उनके साथ सीतादेवी ऐसी जान पड़ती थीं मानो चारो समुद्रोसे वेष्टित धरती ही हो ॥१-६॥

[११] रुद्रभूति और बालिखिल्य, एक दूसरेके प्रति स्नेहकी वृद्धि रखकर, श्रीरामके चरणोंमे नत हो गये। ठीक उसी तरह जिस प्रकार नमि और विनमि ऋषभ जिनके चरणोमे नत हुए थे। तब अपने हाथो उन्हें उठाते हुए रामने, उन्हें समुद्रकी तरह अपनी मर्यादामे स्थापित किया। उन दोनोको रामने राजा भरतकी प्रजा बनाकर अपने-अपने घर भेज दिया। फिर उन तीनोंने पर्वतराज विंध्याचलको उसी प्रकार पार किया जिस प्रकार भव्यजीव भव-दुख-सागरको पार करते हैं। या किन्नर मेरु-शिखरको। या सुरवर देवलोकको पार करते है। अविलम्ब वे तीनों ताप्ती नदीके तटपर जा पहुँचे। प्यास (लगनेपर) वे उसका पानी पीने लगे। सूर्यसे संतप्त वह पानी, दुष्टसे पीड़ित कुटुम्बकी तरह उष्ण था। सूर्य किरणोंसे मिश्रित उस जलको यद्यपि उन लोगोने हाथमे लेकर पिया, परन्तु वह उन्हें उसी प्रकार अच्छा नहीं लगा जिस प्रकार अज्ञानीको जिनवरके वचन अच्छे नहीं लगते ॥१-६॥

[१२] ताप्ती नदी पारकर वे तीनो विंध्याचलसे दूर निकल आये। तब वैदेही सीताने गजसुण्डवाले विशालबाहु रामसे पूछा, "कही हिमशीतल और शशि की तरह स्वच्छ जलकी खोज कीजिये जो प्यासको बुझानेवाला हो? मुझे जल पीनेकी इच्छा इस प्रकार हो रही है जिस प्रकार भव्यजन जिन वचनकी, निर्धन व्यक्ति धनकी, और अन्धा व्यक्ति नेत्रोकी इच्छा करता है।" तब

वलु धीरइ 'धीरी होहि धणे । म कायरु मुहु करि मिगणयणें' ॥५॥
थोवन्तरु पुणु विहरन्तऍहिँ । मल्हन्तेंहिँ पउ पउ देन्तऍहिँ ॥६॥
लक्खिज्जइ अरुणगामु पुरउ । वय-वन्ध-विहूसिउ जिह मुरउ ॥७॥
कप्पद्दुमो व्व चउद्दिसु सुहलु । णट्टावउ व्व णाडय-कुसलु ॥८॥

घत्ता

तं अरुणगामु सपाइयइँ मुणिवर इव मोक्ख-तिसाइयइँ ।
सो णउ जणु जेण ण दिट्ठाइँ वरु कविलहोँ गम्पि पइट्ठाइँ ॥९॥

[१३]

णिज्झाइउ त घरु दियवरहोँ । ण परम-थाणु थिरु जिणवरहोँ ॥१॥
णिरवेक्खु णिरक्खरु केवलउ । णिम्माणु णिरञ्जणु णिम्मलउ ॥२॥
णिव्वत्थु णिरत्थु णिराहरणु । णिद्धणु णिब्भत्तउ णिम्महणु ॥३॥
तहिँ तेहऍ भवणेँ पइट्ठाइँ । छुडु छुडु जलु पिऍवि णिविट्ठाइँ ॥४॥
कुञ्जर इव गुहेँ आवासियइँ । हरिणा इव वाहुत्तासियइँ ॥५॥
अच्छन्ति ताव तहिँ एक्कु खणु । दिउ ताव पराइउ कुइय-मणु ॥६॥
'मरु मरु णीसरु णीसरु' भणन्तु । धूमद्धउ व्व धगधगधगन्तु ॥७॥
भय-भीसणु कुरुडु सणिच्छरु व्व । वहु उवविस विण्णउ विसहरु व्व ॥८॥

घत्ता

'किं कालु कियन्तु मित्तु वरिउ किं केसरि केसरग्गें धरिउ ।
को जम-मुह-कुहरहोँ णीसरिउ जो भवणें महारऍ पइसरिउ' ॥९॥

बलभद्र रामने सीतादेवीको धीरज बँधाते हुए कहा—"देवी! धैर्य रक्खो। कातर मुख न बनो।" इस प्रकार विहार करते और अल्हड़तासे आगे पग बढ़ाते हुए रामको थोड़ी दूर चलनेपर बुधजनोंसे घिरा हुआ अरुण नामका एक गाँव मिला। वह गाँव उन्हें ऐसा लगा मानो वह वयवन्ध (चमड़ा और बगीचा) से विभूषित- हो कल्पवृक्षकी तरह चारों ओरसे शोभित वह नटकी भाँतिमे कुशल था। मोक्षपिपासासे व्याकुल मुनियोंकी भाँति वे सब उस अरुण गाँवमे पहुँचे। वहाँ एक भी आदमीको न पाकर वे लोग किसी कपिल नामके ब्राह्मणके घरमे घुस पड़े ॥१–६॥

[१३] द्विजवरका वह घर (वास्तवमे) जिनवरके परम स्थान मोक्षकी तरह दीख पड़ा। निर्वाणकी तरह एकदम निरपेक्ष, अक्षररहित तथा केवल (केवलज्ञानसे रहित और पास पड़ौससे रहित) निर्मान (अहंकार और गौरवसे शून्य) निरंजन (पाप और अलिजरसे रहित) निर्मल (कर्म और धूलिसे हीन) निर्भक्त (भक्ति और भोजनसे हीन) था। उस घरमे घुसकर शीघ्रतासे पानी पीकर वे लोग उसी प्रकार निपटे जैसे सिहकी चपेटसे मस्त गज गुफामे पहुँचकर निवृत्ति प्राप्त करता है। वे उस घरमे क्षणभर ही ठहरे थे कि क्रुद्धमन कपिल (महोदय) वहाँ आ धमके। आगकी तरह धधकता हुआ वह बोला "मरो मरो, निकलो निकलो। शनिकी तरह अत्यन्त कठोर, भयभीषण और विषाक्त सर्पकी तरह वह ब्राह्मण अत्यन्त खिन्न मनका हो रहा था। उसने कहा, "क्या तुमने (आज) काल या कृतान्तको अपना मित्र चुना है या सिंहकी अयालके अग्रिम बालोंका पकड़ा है। यमकी मुख-गुफासे कौन निकल सका है, तुमने (फिर) मेरे घरमे कैसे प्रवेश किया" ॥१–६॥

[१४]

त वयणु सुणेप्पिणु महुमहणु । आरुट्ठु समर-भर-उव्वहणु ॥१॥
ण धाइउ करि थिर-थोर-करु । उम्मूलिउ दियवरु जेम तरु ॥२॥
उग्गामेँवि भामेँवि गयणयलेँ । किर घिवइ पडीवउ धरणियलेँ ॥३॥
करेँ धरिउ ताव हलपहरणेँण । 'मुएँ मुएँ मा हणहि अकारणेँण ॥४॥
दिय-बाल-गोल - पसु-तवसि-तिय । छ वि परिहरु मेल्लेँ वि माण-किय' ॥५॥
त णिसुणेँवि दियवरु लक्खणेँण । ण मुक्कु अलक्खणु लक्खणेँण ॥६॥
ओसरिउ वीरु पच्छामुहउ । अङ्कुस-णिरुद्धु ण मत्त-गउ ॥७॥
पुणु हियएँ विसूरइ खणेँ जेँ खणेँ । 'सय-खण्ड-खण्डु वरि हूउ रणेँ ॥८॥

घत्ता

वरि पहरिउ वरि किउ तवचरणु वरि विसु हालाहलु वरि मरणु ।
वरि अच्छिउ गम्पिणु गुहिल-वणेँ णवि णिविसु वि णिवसिउ अवुहयणेँ' ॥९॥

[१५]

तो तिण्णि वि एम चवन्ताइँ । उम्माहउ जणहोँ जणन्ताइँ ॥१॥
दिण-पच्छिम-पहरेँ विणिग्गयाइँ । कुञ्जर इव विउल-वणहोँ गयाइँ ॥२॥
वित्थिण्णु रण्णु पइसन्ति जाव । णग्गोहु महादुमु दिट्ठु ताव ॥३॥
गुरु-वेसु करेँवि सुन्दर-सराइँ । ण विहय पढावइ अक्खराइँ ॥४॥
वुक्कण-किसलय क-क्का रवन्ति । वाउलि-विहङ्ग कि-क्की भणन्ति ॥५॥
वण-कुक्कुड कु-क्कू आयरन्ति । अण्णु वि कलावि के-क्कइ चवन्ति ॥६॥
पियमाहवियउ को-क्कउ लवन्ति । कं-का वप्पीह समुल्लवन्ति ॥७॥
सो तरुवरु गुरु-गणहर-समाणु । फल-पत्त-वन्तु अक्खर-णिहाणु ॥८॥

घत्ता

पइसन्तेँहिँ असुर-विमद्दणेँहिँ सिरु णामेँवि राम-जणद्दणेँहिँ ।
परिअञ्चेँ वि दुमु दसरह-सुएँहिँ अहिणन्दिउ मुणि व स इ भु एँहिँ ॥९॥

●

[१४] यह सुनते ही समरभार उठानेमें समर्थ लक्ष्मण एकदम क्रुद्ध हो उठा और उस द्विजपर उसी प्रकार झपटा जिस प्रकार स्थूलशुण्ड गज पेड़ उखाड़ने दौड़ता है। वह उसे उठाकर और आकाशमें घुमाकर पटक देता, परन्तु रामने उसे शान्त करते हुए कहा, "छिः छिः व्यर्थ ही उसे मत मारो। नीति है कि मनुष्योंको इन छःकी हत्या नहीं करनी चाहिए। ब्राह्मण, बालक, गाय, पशु, तपस्वी और स्त्री।" यह सुनकर लक्ष्मणने उस द्विजवरको कुलक्षणकी भाँति छोड़ दिया। अंकुशसे निरुद्ध, महागजकी भाँति वह अपना मुँह मोड़कर पीछे हट गया। तब वे अपने मनमें बार-बार यह सोचकर पछताने लगे, "युद्धमें सौ-सौ खण्ड हो जाना अच्छा, प्रहार करना अच्छा, तपस्या करने चला जाना अच्छा, विष या हलाहल पीकर मर जाना अच्छा, एकान्त वनमें चला जाना अच्छा पर मूर्खोंके बीच पलभर ठहरना भी ठीक नहीं" ॥१-६॥

[१५] यह गुनते हुए उन तीनोंने लोगोंके मार्ग दर्शन करने पर, दोपहरके बाद उसी प्रकार कूच कर दिया जिस प्रकार गज दुर्गम वनकी ओर चल देता है। तब एक विस्तीर्ण वनमें प्रवेश करते ही, उन्हें वटका एक विशाल वृक्ष दिखाई दिया। वह वटवृक्ष मानो शिक्षकका रूप धारणकर पक्षिरूपी शिष्योंको सुन्दर स्वर और व्यञ्जनके पाठ पढ़ा रहा था। कौआ कक्का कह रहे थे, बाउल विहंग किक्की बोल रहे थे। मयूर केक्कई कह रहे थे, कोकिल कोक्कउ और पपीहा कंकाका उच्चारण कर रहे थे। वह महावृक्ष मानो गुरु गणधरकी भाँति फल-पत्रसहित नाना अक्षरोंका निधान था। उस महावटके निकट जाकर असुरसंहारक दशरथ पुत्र राम और लक्ष्मणने उसकी परिक्रमा की तथा माथा झुकाकर उसका अभिनन्दन किया ॥१-६॥

[२८. अट्ठावीसमो सन्धि]

सीय स-लक्खणु दासरहि तरुवर-मूलें परिट्ठिय जावँहिँ ।
पसरइ सु-कइहेँ कव्वु जिह मेह-जालु गयणङ्गणेँ तावँहिँ ॥

[१]

पसरइ मेह-विन्दु गयणङ्गणेँ । पसरइ जेम सेण्णु समरङ्गणेँ ॥१॥
पसरइ जेम तिमिरु अण्णाणहोँ । पसरइ जेम वुद्धि वहु-जाणहोँ ॥२॥
पसरइ जेम पाउ पाविट्ठहोँ । पसरइ जेम धम्मु धम्मिट्ठहोँ ॥३॥
पसरइ जेम जोण्ह मयवाहहोँ । पसरइ जेम कित्ति जगणाहहोँ ॥४॥
पसरइ जेम चिन्त धण-हीणहोँ । पसरइ जेम कित्ति सुकुलीणहोँ ॥५॥
पसरइ जेम सद्दु सुर-तूरहोँ । पसरइ जेम रासि णहेँ सूरहोँ ॥६॥
पसरइ जेम दवग्गि वणन्तरेँ । पसरइ जेह-जालु तिह अम्वरेँ ॥७॥
तडि तडयडइ पडइ घणु गज्जइ । जाणइ रामहोँ सरणु पवज्जइ ॥८॥

घत्ता

अमर-महाधणु-गहिय-करु मेह-गइन्दें चडेंवि जस-लुद्धउ ।
उप्परि गिम्भ-णराहिवहोँ पाउस-राउ णाइँ सण्णद्धउ ॥९॥

[२]

ज पाउस-णरिन्दु गलगज्जिउ । धूली-रउ गिम्भेण विसज्जिउ ॥१॥
गम्पिणु मेह-विन्दें आलग्गउ । तडि-करवाल-पहारेंहिँ भग्गउ ॥२॥
जं विवरम्मुहु चलिउ विसालउ । उट्ठिउ 'हणु' भणन्तु उण्हालउ ॥३॥
धगधगधगधगन्तु उद्धाइउ । हसहसहसहसन्तु सपाइउ ॥४॥
जलजलजलजलजल पचलन्तउ । जालावलि-फुलिङ्ग मेल्लन्तउ ॥५॥
धूमावलि-धयदण्डुब्भेप्पिणु । वर-वाउल्लि-खग्गु कड्ढेप्पिणु ॥६॥
झडझडझडझडन्तु पहरन्तउ । तरुवर-रिउ-भड-थड भज्जन्तउ ॥७॥
मेह-महागय-घड विहडन्तउ । ज उण्हालउ दिट्ठु भिडन्तउ ॥८॥

घत्ता

धणु अप्फालिउ पाउसेँण तडि-टङ्कार-फार दरिसन्तें ।
चोऍवि जलहर-हत्थि हड णीर-सरासणि मुक्क तुरन्तें ॥९॥

अट्ठाईसवीं संधि

राम लक्ष्मण और सीतादेवीके साथ जैसे ही उस तरुवरके नीचे बैठे वैसे ही, सुकविके काव्यकी तरह, आकाशमे मेघजाल फैलने लगा।

[१] जैसे समराङ्गणमें सेना फैलती है, अज्ञानीमें अन्धकार फैलता है, बहुज्ञानीमे बुद्धि फैलती है, पापिष्ठमे पाप फैलता है, धर्मिष्ठमे धर्म फैलता है, चन्द्रमाकी चॉदनी फैलती है, धनहीनकी चिन्ता फैलती है और जैसे सुकुलीनकी कीर्ति फैलती है, जैसे नगाड़ेका शब्द फैलता है, जैसे सूर्यकी किरणे फैलती हैं, और वनमे दावानल फैलता है, वैसे ही आकाशमें मेघजाल फैलने लगा। उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो पावस राजा यशकी कामनासे मेघ महागजपर बैठकर, इन्द्रधनुष हाथमे लेकर, ग्रीष्म नराधिपपर चढ़ाई करनेके लिए सन्नद्ध हो रहा हो ॥१-९॥

[२] जब पावस राजाने गर्जना की तो ग्रीष्म राजाने धूलिका वेग छोड़ा, वह जाकर मेघ-समूहसे चिपट गया। परन्तु पावस राजाने बिजलीकी तलवारोके प्रहारसे उसे भगा दिया। जब वह धूलिवेग (बवण्डर) उलटे मुॅह लौट आया, तो ग्रीष्मवेग पुनः उठा। धकधकाता और हस हस करता हुआ वह वहॉ पहुॅचकर जल-जलकर प्रदीप्त हो उठा। उससे चिनगारियॉ छूटने लगीं। उसने धूमावलिके ध्वजदण्ड उखाड़कर तूफानकी तलवारसे झड़झड़ कर प्रहार करना प्रारम्भ कर दिया। तरुवररूपी शत्रु-समूह भग्न होने लगे। मेघघटा विघटित हो उठी। इस प्रकार ग्रीष्मराजा, पावसराजासे भिड़ गया तब पावसने बिजलीकी टंकार करके इन्द्र-धनुष पर डोरी चढ़ा ली। जलधरकी गजघटाको प्रेरित किया, और बूंदोंके तीरोंकी बौछार शुरू कर दी ॥१-९॥

[३]

जल-वाणासणि-घायहिँ घाइउ । गिम्भ-णराहिउ रणेँ विणिवाइउ ॥१॥
दद्दुर रडेँवि लग्ग ण सज्जण । णं णच्चन्ति मोर खल दुज्जण ॥२॥
ण पूरन्ति सरिउ अक्कन्दें । णं कइ किलकिलन्ति आणन्दें ॥३॥
ण परहुय विमुक्क उग्घोसें । ण वरहिण लवन्ति परिओसें ॥४॥
ण सरवर वहु-असु-जलोल्लिय । णं गिरिवर हरिसें गञ्जोल्लिय ॥५॥
ण उण्हविअ दवग्गि विओएं । णं णच्चिय महि विविह-विणोएं ॥६॥
णं अत्थमिउ निवायरु दुक्खें । ण पइसरइ रयणि सइँ सुक्खें ॥७॥
रत्त-पत्त तरु पवणाकम्पिय । 'केण वि वहिउ गिम्भु' णं जम्पिय ॥८॥

घत्ता

तेहएँ कालेँ भयाउरएँ वेण्णि मि वासुएव-वलएव ।
तरुवर-मूलेँ स-सीय थिय जोगु लएविणु मुणिवर जेम ॥९॥

[४]

हरि-वल रुक्ख-मूलेँ थिय जावेंहिँ । गयमुहु जक्खु पणासेँवि तावेँहिँ ॥१॥
गउ णिय-णिवहों पासु वेवन्तउ । 'देव देव परिताहि' भणन्तउ ॥२॥
'णउ जाणहुँ कि सुरवर किं णर । किं विज्जाहर-गण कि किण्णर ॥३॥
धणुधर धीर चडायउ उब्भेँवि । सुत्त महारउ णिलउ णिरुम्भेँवि' ॥४॥
तं णिसुणेविणु वयणु महाइउ । पूवणु मम्भीसन्तु पधाइउ ॥५॥
विज्झ-महीहर-सिहरहों आइउ । तक्खणेँ त उद्देसु पराइउ ॥६॥
ताम णिहालिय वेण्णि वि दुद्धर । सायर वज्जावत्त-धणुद्धर ॥७॥
अवही-णाणु पउञ्जइ जावेंहिँ । लक्खण-राम मुणिय मणेँ तावेंहिँ ॥८॥

[३] जलके बाणोंसे आहत होकर ग्रीष्म राजा धरतीपर गिर पड़ा। उसके पतनको देखकर मेंढक सज्जनोंकी भाँति रोने लगे। और दुष्टजनोंकी तरह मयूर नाचने लगे। आक्रन्दनसे ऐसे नदियाँ भर उठी, मानो कवि आनन्दसे किलकिला उठा हो, मानो कोयल कूक उठी हो, मानो मयूर परितोषसे नाच उठा हो, मानो सरोवरका जल अत्यधिक परिस्रावित हो उठा हो, मानो गिरिवर हर्षसे रोमांचित हो उठा हो, मानो वियोगका दावानल नष्ट हो गया हो। मानो धरावधू विविध विनोदोंसे नाच उठी हो, मानो दुःखके अतिरेकसे सूर्यका अस्त हो गया हो। मानो सुखसे रजनी फैल गई हो। हवामें हिलते-डुलते लाल कोंपलवाले वृक्ष मानो इस बातकी घोषणा कर रहे थे कि ग्रीष्मराजाका वध किसने कर दिया। उस घोर समयमें राम, लक्ष्मण और सीता उस वट महावृक्षके नीचे इस प्रकार बैठे हुए थे मानो योग साधकर महामुनि ही बैठे हों ॥१-९॥

[४] इतनेमें एक यक्ष, वर्षासे क्षतविक्षत होकर, ठिठुरता हुआ अपने राजाके पास गया और (यक्षराज से) बोला,—"देव देव, मैं नहीं जानता कि वे कौन हैं, सुरवर हैं कि नरवर, विद्याधर हैं या कि किन्नर। दोनों ही वीर धनुष चढ़ाकर हमारे घर वटवृक्षको घेरकर सो रहे हैं।" यह सुनकर, उस यक्षको अभयदान देकर, वह यक्षराज दौड़ा और शीघ्र ही पर्वत की उस शिखर पहुँचा जहाँ, वज्रावर्त ओर सागरावर्त धनुष लिये हुए वे दोनों (राम लक्ष्मण) बैठे हुए थे। अवधिज्ञानके प्रयोगसे उस यक्षराजने फौरन जान लिया कि ये राम और लक्ष्मण हैं। बलभद्र और

घत्ता

पेक्खेँवि हरि-वल वे वि जण पूवण-जक्खेँ जय-जस-लुद्धेँ ।
मणि-कञ्चण-धण-जण-पउरु पट्टणु किउ णिमिसद्धहोँ अद्धेँ ॥९॥

[५]

पुणु रामउरि पघोसिय लोएं । ण णारिहेँ अणुहरिय णिओएं ॥१॥
दीहर - पन्थ - पसारिय-चलणी । कुसुम - णियत्थ - वत्थ-साहरणी ॥२॥
खाइय-तिवलि-तरङ्ग - विहूसिय । गोउर-थणहर - सिहर - पदीसिय ॥३॥
विउलाराम - रोम - रोमञ्चिय । इन्दगोव - सय - कुङ्कुम - अञ्चिय ॥४॥
गिरिवर-सरिय - पसारिय-वाही । जल - फेणावलि - वलय-सणाही ॥५॥
सरवर-णयण - घणञ्जण-अञ्जिय । सुरधणु-भउह - पदीसिय-पञ्जिय ॥६॥
देउल-वयण-कमलु दरिसेप्पिणु । वर-मयलञ्छण-तिलउ छुहेप्पिणु ॥७॥
णाइँ णिहालइ दिणयर-दप्पणु । एम विणिम्मउ सयलु वि पट्टणु ॥८॥
वइसेँवि वलहोँ पासेँ वीसत्थउ । आलावइ आलावणि हत्थउ ॥९॥

घत्ता

एक्कवीस-वर-मुच्छणउ सत्त वि सर ति-गाम दरिसन्तउ ।
'वुज्झि भडारा दासरहि सुप्पहाउ तउ' एव भणन्तउ ॥१०॥

[६]

सुप्पहाउ उच्चारिउ जावँहिँ । रामेँ वलेँवि पलोइउ तावँहिँ ॥१॥
दिट्ठु णयरु ज जक्ख-समारिउ । णाइँ णहङ्गणु सूर-विहूसिउ ॥२॥
स-घणु स-कुम्भु स-सवणु स-सङ्कउ । स-वुहु स-तारउ स-गुरु-ससङ्कउ ॥३॥
पुणु वि पडीवउ णयरु णिहालिउ । णाइँ महावणु कुसुमोमालिउ ॥४॥

नारायण दोनोंको एक साथ देखकर, जयशील और यशलोलुप उस यक्षराजने पलभरमें एक नगरी खड़ी कर दी, जो मणि-माणिक्य और धन-धान्यसे पूरित थी ॥१-६॥

[५] लोगोंने उसका नाम ही रामपुरी रख दिया। रचना और आकार-प्रकारमें वह नगरी नारीकी तरह प्रतीत होती थी। लम्बे-लम्बे पथ उसके पैर थे। फूलो के ही उसके वस्त्र और अलङ्कार थे। खाईकी तरङ्गित त्रिवलीसे वह विभूपित थी। उसके गोपुर स्तनोंके अग्रभागकी तरह जान पड़ते थे। विशाल उद्यानोंके रोमोंसे पुलकित, और सैकड़ों वीर-वधूटियोंके केशरसे अञ्चित थी। पहाड़ और सरिताएँ मानो उस नगरीरूपी नारीकी फैली हुई भुजाएँ थीं। जल और फेनावलि उसकी चूड़ियाँ और नाभि थीं। सरोवर नेत्र थे, मेघ काजल थे और इन्द्रधनुष भौंहें। मानो वह नगरीरूपी नव-वधू चन्द्रमाका तिलक लगाकर दिनकर-रूपी दर्पण में अपना देवकुल रूपी मुख देख रही थी। इस प्रकार उस यक्षने क्षणभरमें समूची नगरीका निर्माण कर दिया। विश्रब्ध होकर, रामके पास बैठकर और अपने हाथमें वीणा लेकर बजाने लगा। इक्कीस मूर्छनाओं, सात स्वर और तीन ग्रामोका प्रदर्शन करते हुए अपने गीतमें उस यक्षराजने कहा, "हे राम, यह सब आपका ही सुप्पहाव (सुप्रभाव और सुप्रभात) है॥ १-१०॥

[६] सुप्रभात शब्द सुनते ही, रामने जो मुड़कर देखा तो उन्हें यक्षोंसे भरा हुआ नगर दीख पड़ा। मानो सूर्यसे आलोकित गगनांगन ही हो। गगनांगनमें धन, कुंभ, श्रवण, चन्द्रमा, बुध, तारक, गुरु और जल होता है। उस नगरमें धन घड़ा श्रमण पंडित उपाध्याय और मार्ग थे। रामने फिर घूमकर देखा तो वह उन्हें कुसुमोंसे व्याप्त महावनकी तरह लगा। वह नगर सुकविके काव्यकी

णाइँ सुकइहें कव्वु पयइत्तिउ । णाइँ णरिन्द-चित्तु वहु-चित्तउ ॥५॥
णाइँ सेण्णु रहवरहँ अमुक्कउ । णाइँ विवाह-गेहु स-चउक्कउ ॥६॥
णाइँ सुरउ चच्चरि-चरियालउ । णावइ डिम्भउ अहिय-छुआलउ ॥७॥
अह कि वण्णिएण खणेँ जे खणेँ । तिहुअणेँ णत्थि ज पि त पट्टणेँ ॥८॥

घत्ता

त पेक्खेप्पिणु रामउरि भुअण-सहास-विणिग्गय-णामहोँ ।
मच्छुड्डु उज्झाउरि-णयरु जाय महन्त भन्ति मणेँ रामहोँ ॥९॥

[७]

ज किउ विम्भउ सासय-लक्खें । वुत्तु णवेप्पिणु पुअण-जक्खें ॥१॥
'तुम्हारउ वण-वसणु गिएप्पिणु । किउ मइँ पट्टणु भाउ धरेप्पिणु' ॥२॥
एम भणेवि सुवित्थय-णामहोँ । दिण्ण सुघोस वीण तें रामहोँ ॥३॥
दिण्णु मउड्डु साहरणु विलेवणु । मणि-कुण्डल कडिसुत्तउ कङ्कणु ॥४॥
पुणु वि पजम्पिउ जक्ख-पहाणउ । 'हउँ तउ भिच्चु देव तुहुँ राणउ' ॥५॥
एव वोल्लु णिम्माइय जावेँहिँ । कविलें णयरु णिहालिउ तावेँहिँ ॥६॥
जण-मणहरु सुर-सग्ग-समाणउ । वासवपुरहोँ वि खण्डइ माणउ ॥७॥
तं पेक्खेँवि आसङ्किउ वम्भणु । कहिँ वित्थिण्णु रण्णु कहिँ पट्टणु' ॥८॥

घत्ता

थहरन्तु भय-मारुएँण समिहउ घिवेँवि सणासइ जावेँहिँ ।
मम्भीसन्ति मियङ्कमुहि पुरउ स-माय जक्खि थिय तावेँहिँ ॥९॥

तरह पद (पद और—प्रजा) से सहित तथा नरेन्द्रके चित्तकी तरह बहुत ही चित्र-विचित्र था। सेनाकी तरह रथश्रेष्ठोंसे सहित, विवाहके घरकी तरह, चौक (चौमुहानी और भूमिमंडन) से सहित था। सुरतिके समान वक्र चेष्टाओंसे युक्त, बच्चेकी तरह अत्यधिक छुधित, (भूखा और चूनेसे पुता हुआ) जान पड़ता था। अथवा अधिक कहनेसे क्या, संसारमें एक भी ऐसा नगर नहीं था जिसकी उससे तुलना की जा सके। हजारों भुवनोंमें विख्यात नाम रामको उस नगरको देखकर यह भ्रांति हो गई कि कहीं यह दूसरी ही अयोध्या न हो॥ १–६॥

[७] (इसके अनन्तर) यह सब आश्चर्य उत्पन्न करनेवाले—अपलक नेत्र उस यक्षने प्रणामपूर्वक रामसे निवेदन किया, "आपके वनवासकी बात जानकर ही मैंने सद्भावनासे इस नगरका निर्माण किया है।" यह कहकर उसने रामको सुघोष नामकी वीणा प्रदान की तथा दूसरी, मुकुट, आभरण, विलेप, मणि, कुंडल, कटिसूत्र और कंगन आदि चीजें दीं। तदनन्तर यक्षोंके प्रमुख उसने कहा, "मैं आपका अनुचर हूँ, और आप मेरे स्वामी।" वह इस प्रकार निवेदन कर ही रहा था कि इतनेमें उस कपिल ब्राह्मणने इस नगरको देखा। जनमन हारी, देवोंके स्वर्गके समान सुन्दर उस नगरको देखकर उसने समझा कि यह अमरावती का ही एक खंड है। यह सब (कौतुक) देखकर वह सोचने लगा, "कहाँ वह घना जंगल और कहाँ यह सुन्दर नगरी। भय रूपी हवासे वह काँप गया। लकड़ियोंका गट्ठर फेंककर वह मूर्छित होनेको ही था कि चन्द्रमुखी नामकी यक्षिणी उसके सम्मुख आई और 'डरो मत' कहकर माताके समान उसके आगे बैठ गई॥ १–९॥

[८]

'हे दियवर चउवेय-पहाणा । किण्ण मुणहि रामउरि अयाणा ॥१॥
जण-मण-वल्लहु राहव-राणउ । मत्त-गइन्दु व पगलिय-दाणउ ॥२॥
तक्कर-भमर-सएहिँ ण मुच्चइ । देइ असेसु वि ज जसु रुच्चइ ॥३॥
जोयइ (?) जिणवर-णामु लएइ । तहो कड्ढेप्पिणु पाणइँ देइ ॥४॥
एँहु ज वासव-दिसएँ विसालउ । दीसइ तिहुअण-तिलउ-जिणालउ ॥५॥
तहिँ जो गम्पि करइ जयकारु । पट्टणेँ णवरि तासु पइसारु' ॥६॥
त णिसुणेप्पिणु दियवरु धाइउ । णिविसें जिणवर-भवणु पराइउ ॥७॥
त चारित्तसूरु मुणि वन्देवि । विणउ करेँवि अप्पाणउ णिन्देँवि ॥८॥

घत्ता

पुच्छिउ मुणिवरु दियवरेँण 'दाणहोँ कारणेँ विणु सम्मत्तें ।
धम्में लइए' कवणु फलु एउ देव महु अक्खि पयत्तें ॥९॥

[९]

मुणिवरु कहेँ वि लग्गु 'विउलाइँ । किं जणेँ ण णियहि धम्मफलाइँ ॥१॥
धम्में भड-थड हय गय सन्दण । पावें मरण-विओयक्कन्दण ॥२॥
धम्में सग्गु भोग्गु सोहग्गु । पावें रोग्गु सोगु दोहग्गु ॥३॥
धम्में रिद्धि विद्धि सिय सपय । पावें अत्थ-हीण णर विद्दय ॥४॥
धम्में कडय-मउड-कडिसुत्ता । पावें णर दालिद्दें भुत्ता ॥५॥
धम्में रज्जु करन्ति णिरुत्ता । पावें पर - पेसण-सजुत्ता ॥६॥
धम्में वर - पल्लङ्कें सुत्ता । पावें तिण-सथारेँ विभुत्ता ॥७॥
धम्में णर देवत्तणु वत्ता । पावें णरय-घोरेँ सकन्ता ॥८॥

[८] वह बोली, "अरे अज्ञान द्विजवर, चारों वेदोंमें विद्वान् होकर तुम यह नहीं जानते कि यह रामपुरी है। और इसमे जनमनके प्रिय राजा राघव हैं। मत्तगजकी तरह वह शीघ्र ही दान (मदजल, दान) देनेवाले है। सैकड़ो याचकजन उन्हें नहीं छोड़ रहे है, जिसे जो अच्छा लगता है, वह उसे वही दे डालते है। जिनवरका नाम लेकर जो भी उनसे मॉगता है उसके लिए वे अपने प्राण तक उत्सर्ग कर देते हैं। यह जो इन्द्रकी दिशामे त्रिभुवन श्रेष्ठ जिनालय देख पड़ रहा है। पहले तुम उसमे प्रवेश करो नही तो नगरमें प्रवेश नहीं मिल सकता।" यह सुनकर वह ब्राह्मण दौड़कर गया और एक पलमे ही उस जिनालयमे पहुॅच गया। उसने वहॉ चारित्रसूर्य यतिकी वन्दना की। उनकी विनय करनेके बाद वह अपनी निन्दा करने लगा। फिर उस ब्राह्मणने उनसे पूछा, "सम्यक्त्वके विना, दानके लिए धर्म-परिवर्तन करनेका क्या फल है। हे देव, मुझे यह बताइए" ॥ १–६ ॥

[६] यह सुनकर मुनिवर बोले, "क्या तुम लोकमें धर्मोके नाना फल नहीं देखते। धर्मसे भटसमूह, हय, गज और रथ मिलते हैं। पापसे मरण, वियोग और आक्रन्दन मिलता है। धर्मसे स्वर्ग-भोग और सौभाग्य होता है। पापसे रोग, शोक और अभाग्य। धर्मसे ऋद्धि-सिद्धि-वृद्धि श्री और सम्पदा मिलती है। पापसे मनुष्य धनहीन और दयाविहीन होता है। धर्मसे कटक, मुकुट और मणिसूत्र मिलते है और पापसे मनुष्य दरिद्रताका भोग करता है। धर्मसे जीव निश्चय ही राज्य करता है और पापसे दूसरोंकी सेवा करता है। धर्मसे वह उत्तम पलंगपर शयन करता है और पापसे तिनकोंकी सेजपर सोता है। धर्मसे नर देवत्व पाता है, और घोर पापसे नरकमे जाता है। धर्मसे

धम्में णर रमन्ति वर-विलयउ। पावें दूहविउ दुह-णिलयउ ॥९॥
धम्में सुन्दरु अङ्गु णिवद्धउ। पावें पङ्गुलउ वि वहिरन्धउ ॥१०॥

घत्ता

धम्म-पाव-कप्पद्दुमहुँ आयइँ जस-अवजस-वहुलाइँ।
वेण्णि मि असुह-सुहङ्करइँ जाइँ पियइँ लइ ताइँ फलाइँ' ॥११॥

[१०]

मुणिवर-वयणेंहिँ दियवरु वासिउ। लइउ धम्मु जो जिणवरें भासिउ ॥१॥
पञ्चाणुव्वय लेवि पधाइउ। णिय-मन्दिरु णिविसेण पराइउ ॥२॥
गम्पिणु पुणु सोम्महेँ वज्जरियउ। 'अज्जु महन्तु दिट्ठु अच्चरियउ ॥३॥
कहिँ वणु कहिँ पट्टणु कहिँ राणउ। कहिँ मुणि दिट्ठु अणेयइँ जाणउ ॥४॥
कहिँ मइ कहिँ लद्धइँ जिण-वयणइँ। वहिरें कण्णऽन्धेण व णयणइँ' ॥५॥
त णिसुणेवि सोम्म गञ्जोल्लिय। 'जाहुँ णाह तहिँ' एम पवोल्लिय ॥६॥
पुणु सचल्लइँ वे वि तुरन्तइँ। तिहुयण-तिलउ जिणालउ पत्तइँ ॥७॥
साहु णवेप्पिणु पासेँ णिविट्ठइँ। धम्मु सुणेप्पिणु णयरें पइट्ठइँ ॥८॥

घत्ता

दिट्ठु णरिन्दत्थाणु णहु जाणइ-मन्दाइणि-परिचल्लिउ।
णर-णक्खत्तहिँ परियरिउ हरि-वल-चन्द-दिवायर-मण्डिउ ॥९॥

[११]

हरि अत्थाण-मग्गें ज दिट्ठउ। दियवरु पाण लएवि पणट्ठउ ॥१॥
णट्ठु कुरङ्गु व वारणवारहो। णट्ठु जिणिन्दु व भव-ससारहोँ ॥२॥
णट्ठु मियङ्कु व अब्भपिसायहो। णट्ठु दवग्गि व णीर-णिहायहोँ ॥३॥
णट्ठु भुअङ्गु व गरुड-विहङ्गहोँ। णट्ठु खरो व्व मत्त-मायङ्गहोँ ॥४॥
णट्ठु अणङ्गु व सासय-गमणहोँ। णट्ठु महाघणो व्व खर-पवणहोँ ॥५॥
णट्ठु महीहरो व्व सुर-कुलिसहोँ। णट्ठु तुरङ्गमो व्व जम-महिसहोँ ॥६॥
तिह णासन्तु पदीसिउ दियवरु। मम्भीसन्तु पधाइउ सिरिहरु ॥७॥

मनुष्य उत्तम निलयमें रमण करता है, और पापसे दुर्भाग्यपूर्ण दुख-निलयमें। धर्मसे सुन्दर शरीरकी रचना होती है, पापसे (मनुष्य) पंगु और अन्धा होता है। धर्म और पाप रूपी कल्पतरुओंके यश और अपयशसे युक्त शुभ और अशुभ दो ही फल होते है। इनमेसे जो प्रिय लगे उसे ले लो" ॥१-११॥

[१०] मुनिवरके वचनोंसे पुलकित होकर उस द्विजने जिन-वर-द्वारा प्रतिपादित धर्म अंगीकार कर लिया। पॉच अणुव्रत ग्रहण कर लिये। एक पलमे ही वह अपने घर पहुॅच गया। जाकर उसने अपनी पत्नीसे कहा—"आज मैंने बहुत वड़ा अचरज देखा। कहीं मैंने वन देखा और कहीं नगर। कहीं राजा और कहीं मुनि, कहीं अनेक यान मिले और कहीं मुझे जिनवचन सुननेको मिले। मानो वहरेको कान और अन्धेको नेत्र मिले हों।" यह सुनकर, पुलकित पत्नीने कहा,—"शीघ्र ही वहॉ जाइए।" तदनन्तर वे दोनों वहॉके लिए चल पड़े। वे उस त्रिभुवनतिलक जिनालयमे पहुॅचे, और मुनिवरको प्रणामकर वहॉ वैठ गये। धर्मका श्रवणकर वे नगरमें घुसे। वहॉ उन्होने राजा रामका दरवाररूपी आकाश देखा, उसमें सीता रूपी मन्दाकिनी (आकाशगंगा) अधिष्ठित थीं। और वह मनुष्य रूपी नक्षत्रोंसे घिरा हुआ था। राम और लक्ष्मण रूपी चन्द्र और सूर्यसे वह अलंकृत था ॥१-६॥

(११) परन्तु जैसे ही राज-दरवारके मार्गमे उस द्विजवरने लक्ष्मणको देखा तो उसके प्राण उड़ गये। जिस प्रकार सिंहको देखकर हरिण, या भवसंसारसे जिन, राहुसे चन्द्र, मत्तहाथीसे गर्दभ, मोक्षगामीसे काम, प्रवलपवनसे मेघ, इन्द्रवज्रसे पर्वत, यममहिषसे अश्व नष्ट हो जाता है, वैसे ही लक्ष्मणसे उस कपिल द्विजको प्रनष्ट होते हुए देखकर, उसने उसे अभय दिया।

अपने हाथसे उसकी अंगुली पकड़कर लक्ष्मणने उसे लाकर रामके सम्मुख डाल दिया। जैसे तैसे अपने आपको धीरज बँधा, और मनसे समस्त भयको दूर कर उस कपिल द्विजवरने दुर्दम दान-वेन्द्रोंके संहारक रामको आशीर्वाद दिया—"जिस प्रकार समुद्र महाजलसे बढ़ते हैं, जिनेश्वर पुण्य कर्मसे बढ़ते है, उसी प्रकार आपका भी यश चन्द्र और कुन्द पुष्पके समान बढ़ता रहे" ॥१-११॥

[१२] तव पर-वलसंहारक लक्ष्मण कहकहा लगाकर हँस पड़ा। और वोला,—"जव हम तुम्हारे घरमे घुसे थे तव तो तुमने अवहेलनाके साथ निकाल दिया। और अव आप, कैसे द्विजवर हैं जो इस तरह विनय पूर्वक आशीर्वाद दे रहे है ?" यह सुनकर उस ब्राह्मणने कहा,"अर्थका महान् आदर कौन नही करता। सूर्य जिस प्रकार शीतकालमे आनन्द देता है, उसी प्रकार क्या उष्णकालमे अच्छा नहीं लगता। समयके अधीन होकर हमे (जीवन मे) सव कुछ सहन करना पड़ता है। अतः इसमे हर्ष विषाद की क्या वात है। विलासिनी स्त्रियोंको अर्थ वहुत ही प्रिय लगता है। अर्थहीन नरको वे छोड़ देती है। (संसार मे) अर्थ ही विदग्ध है और अर्थ ही गुणवान् है। अर्थ विहीन भीख माँगता हुआ फिरता है। अर्थ ही कामदेव है, अर्थ ही जगमे शुभ है, अर्थहीन नर दीन और दुर्भग है। अर्थसे ही इच्छित राजभोग मिलता है। अर्थहीनसे कुछ काम-काज नहीं होता।" तव रामने साधु-साधु कहकर उस ब्राह्मण देवता को, इन्द्रनील मणियो और सुवर्णसे वने कटक मुकुट और कटिसूत्र देकर अपने हाथसे स्वयं उसका खूब आदर-सत्कार किया ॥१-११॥

●

[२९. एगुणतीसमो संधि]

सुरडामर-रिउ-डमरकर कोवण्ड-धर सहुँ सीयऍ चलिय महाइय ।
वल-णारायण वे वि जण परितुट्ठ-मण जीवन्त-णयरु सपाइय ॥

[१]

पट्टणु तिहि मि तेहिँ आवज्जिउ । दिणयर-विम्वु व दोस-विवज्जिउ ॥१॥
णवर होइ जइ कम्पु धएसु । हउ तुरएसु जुज्झु सुरएसु ॥२॥
घाउ मुरवेसु भङ्गु चिहुरेसु ॥३॥
जड रुद्देसु मलिणु चन्देसु ॥४॥
खलु खेत्तेसु दण्डु छत्तेसु ॥५॥
(वहु-)कर गहणेसु पहरु दिवसेसु ॥६॥
धणु दाणेसु चिन्त झाणेसु ॥७॥
सुर सग्गेसु सीहु रण्णेसु ॥८॥
कलहु गएसु अङ्कु कव्वेसु ॥९॥
टरु वसहेसु वेलु गयणेसु ॥१०॥
वणु रुक्खेसु झाणु मुक्खेसु ॥११॥
अहवइ कित्तिउ णिव वण्णिज्जइ । जइ पर त जि तासु उवमिज्जइ ॥१२॥

घत्ता

तहोँ णयरहोँ अवरुत्तरॅण कोसन्तरॅण उववणु णामेण पसत्थउ ।
णाइँ कुमारहोँ एन्ताहोँ पइसन्ताहोँ थिउ णव-कुसुमञ्जलि-हत्थउ ॥१३॥

[२]

तहिँ उववणेँ थिय हरि वल जावेँहिँ । भरहें लेहु विसज्जिउ तावेँहिँ ॥१॥
अग्गऍ घित्तु णरेण णरिन्दहोँ । भविउ व चलणेँहिँ पडिउ जिणिन्दहोँ ॥२॥
लइउ महीहरेण सइँ हत्थेँ । जिणवर-धम्मु व मुणिवर-सत्थेँ ॥३॥
वारि-णिवन्धहोँ मुक्कु गइन्दु व । दिट्ठ अङ्कु तहिँ णहयलेँ चन्दु व ॥४॥

उनतीसवीं सन्धि

देवो के लिए भयंकर शत्रुओके संहारक और धनुर्धारी राम और लक्ष्मण घूमते हुए जीवंत नगर पहुँचे।

[१] उन तीनोने उस नगरको सूर्यबिम्ब की तरह दोष (अवगुण और रात) से रहित देखा। उस नगरमे कम्पन केवल पताकाओ मे था, हत (घाव) अश्वोमे, द्वन्द्व सुरति मे, आघात मृदंगमे, भंग केशोमे, जड़ता रुद्रमे, मलिनता चन्द्रमे, खल खेतोमे, दण्ड छत्रोमे, बहुल कर ग्रहण करनेका अवसर (कर=टैक्स और दान) प्रहर दिनमे, धन दानमे, चिन्ता ध्यानमे, सुर (स्वर और शराब) संगीतमे, सिह अरण्यमे, कलह गजोमे, अंक काव्योमे, भय बैलोमे, वेल (बातूल और मूर्ख) आकाशमे, वन (व्रण, वेत) जंगल मे, और ध्यान मुक्त नरोमें था। इनके लिए दूसरी जगह नहीं थी। (गौतम गणधरने कहा) अथवा हे राजन् (श्रेणिक) उस नगर का वर्णन करना सम्भव नहीं, उस नगरकी उपमा केवल उसी नगरसे दी जा सकती है। उस नगरके उत्तरमे प्रशस्त नामक एक उपवन था, वह ऐसा लगता था मानो आते और प्रवेश करते हुए कुमारोके स्वागतमें हाथमे अंजलि लेकर खड़ा हो ॥१-१२॥

[२] जब राम और लक्ष्मण उस उपवन में ठहरे, तभी उस नगरके राजाके पास भरतका लेखपत्र पहुँचा। पत्रवाहकने वह पत्र राजाके सम्मुख वैसे ही डाल दिया जैसे जीव जिनेन्द्रके चरणोके आगे पड़ जाते है और जैसे मुनिवर जिनधर्मको ग्रहण करते हैं वैसे ही राजाने उस पत्रको अपने हाथ मे ले लिया। वह पत्र उसे ऐसा दीख पड़ा मानो वारी बन्धनसे मुक्त हाथी ही हो। उसके अक्षर आकाशमे उगे चन्द्रमा की तरह जान पड़ रहे थे। उस

'रज्जु मुएवि वे वि रिउ-मद्दण । गय वण-वासहों राम-जणद्दण ॥५॥
को जाणइ हरि कहिउ आवइ । तहों वणमाल देज्ज जसु भावइ' ॥६॥
लेहु घिवेप्पिणु णरवइ महिहरु । णाइँ दवेण दड्ढु थिउ महिहरु ॥७॥
णाइँ मियङ्को कमिउ विडप्पें । तिह महिहरु णरिन्दु माहप्पें ॥८॥

घत्ता

जाय चिन्त मणें दुद्धरहों धरणीधरहों सिहि-गल-तमाल-घण-वण्णहों ।
'लक्खणु लक्खण-लक्ख-धरु तं मुएँ वि वरु मइँ दिण्ण कण्ण किं अण्णहों' ॥६॥

[३]

तो एत्थन्तरें णयण-विसालएँ । एह वत्त ज सुय वणमालएँ ॥१॥
आउलिहुय हियएण विसूरइ । दुक्ख महणइ व्व आऊरइ ॥२॥
सिरें पासेउ चडइ मुहु सूसइ । कर विहुणइ पुणु दइवहों रूसइ ॥३॥
मणु धुगुधुगइ देहु परितप्पइ । वम्महो ण करवत्तें कप्पइ ॥४॥
ताव णहङ्गणेण घणु गज्जिउ । णाइँ कुमारें दूउ विसज्जिउ ॥५॥
धीरी होहि माएँ' ण भासिउ । 'उहु लक्खणु उववणें आवासिउ' ॥६॥
गरहिउ मेहु तो वि तणु-अङ्गिएँ । दोस वि गुण हवन्ति ससग्गिएँ ॥७॥
'तुहुँ किर जण-मण णयणाणन्दणु । महु पुणु जलहर णाइँ हुआसणु ॥८॥

घत्ता

तुज्झु ण दोसु दोसु कुलहों हय-दुह-कुलहों जलें जलणें पवणें ज जायउ ।
त पासेउ दाहु करहु णीसासु महु तिण्णि वि दक्खवणहों आयउ ॥६॥

पत्रमें यह लिखा था, "राज्य छोड़कर शत्रुसंहारक राम और लक्ष्मण दोनों वनवासके लिए गये हैं। क्या पता वे कब तक लौटें? इसलिए जिसको ठीक समझो उसको वनमाला दे दो।" लेख पढ़कर राजा सन्न रह गया। वह वैसे ही गौरवहीन हो उठा जैसे दावानलसे भस्मीभूत पहाड़ या राहु से ग्रस्त चन्द्रमा गौरव रहित हो जाता है। मयूरकण्ठके समान श्याम वर्ण उस राजाको अब यह चिन्ता उत्पन्न हुई कि मैं, अपनी कन्या वनमाला, अनेक लक्षणोंसे युक्त लक्ष्मणको छोड़कर, और किसे दूँ ॥१-६॥

[३] इतनेमें यह बात विशालनयना, वनमालाके कानों तक पहुँची। यह सुनते ही वह आकुल होकर मन ही मन विसूरने लगी। महानदीकी तरह वह दुखसे भर उठी। सिरमें पसीना हो आया। मुख सूख गया। हाथ मलती हुई वह अपने भाग्यको कोसने लगी। मन धुक-धुक कर रहा था। देह जल रही थी। मानो कामदेव ही करपत्रसे उसे काट रहा हो। उसी समय आकाशके आंगनमें मेघ ऐसा गरज उठा, मानो कुमार लक्ष्मणने दूत ही भेजा हो, और जो मानो यह कह रहा था,—"माँ धीरज धरो, वह कुमार लक्ष्मण उपवनमें ठहरा हुआ है।" तब भी उस तन्वंगीने मेघकी निन्दा ही की, ठीक भी है क्योंकि संसर्ग से, गुण भी दोष हो जाते हैं। उसने कहा,—"मेघ, तुम भले ही जनोंके मन और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले हो, परन्तु मेरे लिए तो दावानलकी तरह हो। इसमें तुम्हारा दोष नहीं, दोष तुम्हारे हत और दुखद कुलका है। तुम जल आग और हवासे उत्पन्न जो हुए हो, उसीसे पसीना और जलन उत्पन्न करते हो और निःश्वास देते हो। तुमने मुझे तीनों ही चीजें दिखा दीं" ॥१-६॥

[४]

दोच्छिउ मेहु पणट्ठु णहङ्गणेँ । पुणु वणमालऍ चिन्तिउ णिय-मणेँ ॥१॥
'किं पइसरमि वलन्तेँ हुआसणेँ । कि समुद्दें कि रण्णेँ सु-भीसणेँ ॥२॥
कि विसु भुञ्जमि किं अहि चप्पमि । कि अप्पउ करवत्तें कप्पमि ॥३॥
किं करिवर-दन्तहिँ उर भिन्दमि । कि करवालेँहिँ तिलु तिलु छिन्दमि ॥४॥
किं दिस लङ्घमि किं पव्वज्जमि । कहोँ अक्खमि कहोँ सरणु पवज्जमि ॥५॥
अहवइ एण काइँ गमु सज्जमि । तरुवर-डालऍ पाण विसज्जमि' ॥६॥
एम भणेप्पिणु चलिय तुरन्ती । कङ्केल्ली-थड उग्घोसन्ती ॥७॥
गन्ध-धूव-वलि - पुप्फ - विहत्थी । लीलऍ चिक्कमन्ति वीसत्थी ॥८॥

घत्ता

चउविह-सेण्णें परियरिय धण णीसरिय 'को विहिँ आलिङ्गणु देसइ' ।
एम चवन्ति पइट्ठ वणेँ रवि-अत्थवणेँ 'कहिँ लक्खणु' णाइँ गवेसइ ॥९॥

[५]

दिट्ठु असोयवच्छु परिअञ्चिउ । जिणवरो व्व सब्भावें अञ्चिउ ॥१॥
पुणु परिवायणु कियउ असोयहोँ । 'अण्णु ण इह-लोयहोँ पर-लोयहो ॥२॥
जम्में जम्में मुअ-मुअहेँ स-लक्खणु । पिय-भत्तारु होज्ज महु लक्खणु' ॥३॥
पुणु पुणु एम णमसइ जावेँहिँ । रयणिहेँ वे पहरा हुय तावेँहिँ ॥४॥
सयलु वि साहणु णिद्दोणल्लउ । णावइ मोहण-जालें पेल्लिउ ॥५॥
णिग्गय पुणु वणमाल तुरन्ती । हार-डोर-णेउरेँहिँ खलन्ती ॥६॥
हरि-विरहंसु-पूरेँ उब्भन्ती । वुण्ण-कुरङ्गि व चित्तुब्भन्ती ॥७॥

[४] अपनी भर्त्सना सुनकर मेघ आकाशमे ही नष्ट हो गया। तव फिर वनमाला अपने मनमें सोचने लगी,—"क्या मै जलती आगमे कूद पड़ूँ या समुद्र या वनमे घुस जाऊँ, क्या विषपान कर लूँ या सॉपको चॉप दूँ ? क्या अपनेको करपत्रसे काट लूँ ? क्या हाथीके दॉतसे छाती फाड़ लूँ या करवालसे तिल-तिल छेद दूँ ? क्या दिशा लॉघ जाऊँ या संन्यास ग्रहण कर लूँ ? किससे कहूँ और किसकी शरण जाऊँ ? अथवा इस सवसे क्या काम बनेगा ? तरुवरकी डालसे टंगकर मैं ही अपने प्राण छोड़े देती हूँ।" मनमें यह सोचकर, और अशोक वनके लिए जानेकी घोषणा करके वह तुरन्त घरसे चल पड़ी। उसके हाथमे गन्ध, दीप, धूप और पूजाके फूल थे। वह चमकती-दमकती, लीला पूर्वक चली जा रही थी। चारो ओर सैनिकोसे घिरी हुई वह धन्या अपने मनमे यह सोचती हुई, अपने घरसे निकल पड़ी कि देखूँ, दोनो (अशोक वृक्ष और लक्ष्मण) मेसे कौन मुझे आलिगन देता है। सूर्यास्त होते-होते वह वनमे प्रविष्ट हुई। वह मानो यह खोज रही थी कि लक्ष्मण कहॉ है ॥१-६॥

[५] वनमालाके लिए अशोक वृक्ष ऐसा लगा मानो सद्भावोसे अंचित जिनेन्द्र ही हो। फिर उसने अशोक वृक्षसे निवेदन करते हुए कहा,—"इस जन्ममे और दूसरे जन्ममे, मेरा दूसरा नहीं है। सुलक्षण लक्ष्मण ही जन्म-जन्मान्तरमे वार-वार मेरा पति हो।" इस प्रकार आत्म-निवेदन करते हुए उसे रातके दो प्रहर वीत गये। सारे सैनिक नींदके झोकोंमे ऊँघकर ऐसे लोट-पोट होने लगे मानो मोह-जालमे फॅस गये हो। तव वनमाला बाहर निकली। हार डोर और नूपुरसे वह स्खलित हो रही थी। प्रियके विरहाश्रुओसे भरी हुई वह; विपन्न हरिणीकी भॉति उद्भ्रान्त मन हो रही थी। एक ही पलमे वह वटके पेड़ पर चढ़ गई।

णिविसद्धें णग्गोहें वलग्गी । रमण-चवल ण गोह-वलग्गी ॥८॥

घत्ता

रेहइ दुमें वणमाल किह घणें विज्जु जिह पहवन्ती लक्खण-कङ्खिणि ।
किलिकिलन्ति जोह्लावणिय भीसावणिय पच्चक्ख णाइँ वड-जक्खिणि ॥९॥

[६]

तहिँ वालएँ कलुणु पकन्दियउ । वण-डिम्भउ ण परिअन्दियउ ॥१॥
'आयण्णहोँ वयणु वणस्सइहोँ । गङ्गाणइ - जउण - सरस्सइहोँ ॥२॥
गह-भूय-पिसायहोँ विन्तरहोँ । वण-जक्खहोँ रक्खहोँ खेयरहोँ ॥३॥
गय-वग्घहोँ सिङ्घहोँ सम्वरहो । रयणायर - गिरिवर - जलयरहोँ ॥४॥
गण-गन्धव्वहोँ विज्जाहरहोँ । सुर - सिद्ध - महोरग-किण्णरहोँ ॥५॥
जम - खन्द - कुवेर - पुरन्दरहोँ । वुह - भेसइ - सुक्क - सणिच्छरहोँ ॥६॥
हरिणङ्कहोँ अक्कहोँ जोइसहोँ । वेयाल - दइच्चहो रक्खसहोँ ॥७॥
वइसाणर - वरुण - पहञ्जणहोँ । तहोँ एम कहिज्जहोँ लक्खणहोँ ॥८॥

घत्ता

वुच्चइ धीय महीहरहोँ दीहर-करहोँ वणमाल-णाम भय-वज्जिय ।
लक्खण-पइ सुमरन्तियएँ कन्दन्तियएँ वड-पायवेँ पाण विसज्जिय' ॥९॥

[७]

एम भणेप्पिणु णयण-विसालएँ । असुअ-पासउ किउ वणमालएँ ॥१॥
सो ज्जेँ णाइँ सइँ मम्भीसावइ । णाइँ विवाह-लील दरिसावइ ॥२॥
ण दियवरु दाणहोँ हक्कारिउ । णाइँ कुमारेँ हत्थु पसारिउ ॥३॥
गलेँ लाएँवि हल्लावइ जावँहिँ । कण्ठेँ धरियालिङ्गेँवि तावँहिँ ॥४॥
एम पजम्पिउ मम्भीसन्तउ । 'हउँ सो लक्खणु लक्खणवन्तउ ॥५॥
दसरह-तणउ सुमित्तिएँ जायउ । रामें सहुँ वणवासहोँ आयउ' ॥६॥
त णिसुणेँवि विम्भाविय णिय-मणेँ । 'कहिँ लक्खणु कहिँ अच्छिउ उववणेँ' ॥७॥
ताम हलाउहु कोक्कइ लग्गउ । 'भो भो लक्खण आउ कहि गउ' ॥८॥

वैसे ही जैसे कोई चपल रमणी, अपने ाती है ? लक्ष्मणको चाहने वाली क्रांतिमती वह वटके पेड़पर ऐसी मालूम हो रही थी मानो वनमे बिजली चमक रही हो या, वनमे किलकती, कौतुक करती हुई सक्षात् भयंकर यक्षिणी हो ॥१–६॥

[६] (आत्मघातके पूर्व) उसने अपना विलाप ऐसे शुरू किया, मानो वनगज-शिशु ही चीख उठा हो। उसने कहा, "वनस्पति, गंगा नदी, जमुना, सरस्वती, ग्रह, भूत, पिशाच, व्यंतर, वनयक्ष, राक्षस, खेचर, गज, बाघ, सिह, संबर, रत्नाकर, गिरिवर, जलधर, गण, गंधर्व, विद्याधर, सुर, सिद्ध, महोरग, किन्नर, कार्तिकेय, कुबेर, पुरन्दर, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनिश्चर, चन्द्र, सूर्य, ज्योतिष, वैताल, दैत्य, राक्षस, अग्नि, वरुण और प्रभंजन ! मेरे वचनोको सुनो, तुम्हें यदि कही लक्ष्मण मिले तो यह कह देना कि विशालबाहु राजा महीधरकी वनमाला नामकी लड़की, निडर हो, अपने पति लक्ष्मणके ध्यानमे रोती कलपती, हुई, गिरकर मर गई" ॥१–६॥

[७] यह कह कर विशालनयना वनमालाने कपड़ेका फन्दा बना लिया, स्वयं नहीं डरती हुई, वह मानो विवाह-लीलाका प्रदर्शन कर रही थी। मानो द्विजवरने कन्यादानके लिए उसे पुकारा हो और कुमार (वर) ने हाथ फैला दिया हो। वह, गलेमें फन्दा लगा ही रही थी कि इतनेमे कुमार लक्ष्मणने गलेसे पकड़कर उसका आलिंगन कर लिया और यह कहा, "डरो मत ! मै ही वह सुलक्षण लक्ष्मण हूँ ! दशरथका सुमित्रासे उत्पन्न पुत्र मै, रामके साथ वनवासके लिए आया हूँ।" यह सुनकर आश्चर्यचकित हो वनमाला अपने मनमें सोचने लगी, "अरे लक्ष्मण कहाँ, वह तो उपवनमे है।' इतनेमे, रामने पुकारा,—"ओ लक्ष्मण, इधर आओ,

घत्ता

त णिसुणेँवि महिहर-सुअएँ पुलइय-भुअएँ णड्डु जिह णच्चाविउ णिय-मणु ।
'सहल मणोरह अज्जु महु परिहूउ सुहु(?) भत्तारु लद्धु ज लक्खणु' ॥९॥

[८]

तो एत्थन्तरेँ भुवणाणन्दें । दिट्ठु जणद्दणु राहवचन्दें ॥१॥
णावइ तमु दीवय-सिह-सहियउ । णावइ जलहरु विज्जु-पगहियउ ॥२॥
णावइ करि करिणिहेँ आसत्तउ । चलणेँहिँ पडिउ वलहोँ स-कलत्तउ ॥३॥
'चारु चारु भो णयणाणन्दण । कहिँ पइँ कण्ण लद्ध रिउमद्दण' ॥४॥
वुत्तु कुमारें 'विज्ज व सगुणिय । धरणीधरहोँ धीय किं ण मुणिय ॥५॥
जा महु पुव्वयण्ण-उवदिट्ठी । सा वणमाल एह वणेँ दिट्ठी' ॥६॥
हरि अप्फालइ जाव कहाणउ । ताम रत्ति गय विमलु विहाणउ ॥७॥
सुहड विउद्ध कुद्ध जस-लुद्धा । 'केण वि लइय कण्ण' सण्णद्धा ॥८॥

घत्ता

ताव णिहालिय दुज्जएँहिँ पुणु रह-गएँहिँ चाउद्दिसु चवल-तुरङ्गेँहिँ ।
वेढिय रणउहेँ वे वि जण वल-महुमहण पञ्चाणण जेम कुरङ्गेँहिँ ॥९॥

[९]

अब्भिट्टु सेण्णु कलयलु करन्तु । 'जिह लइय कण्ण तिह हणु' भणन्तु ॥१॥
त वयणु सुणेप्पिणु हरि पलित्तु । उद्धाइउ सिहि ण घिएँण सित्तु ॥२॥
एक्कल्लउ लक्खणु वलु अणन्तु । आलग्गु तो वि तिण-समु गणन्तु ॥३॥
परिसक्कइ थक्कइ चलइ वलइ । तरुवर उम्मूलेँवि सेण्णु दलइ ॥४॥

कहाँ चले गये ?"। यह सुनकर महीधर राजाकी पुत्री, पुलकित बाहु वनमालाने नटकी तरह अपना मन नचाते हुए कहा,—"आज मेरे सभी मनोरथ सफल हो गये, कि जो मुझे लक्ष्मण जैसा पति मिल गया ॥१-६॥

[८] तदनन्तर, भुवनानंददायक राघवचन्द्रने लक्ष्मणको वनमालाके साथ आते हुए देखा। वह ऐसा लग रहा था मानो दीपशिखा तमके साथ हो, या बिजली मेघके, या हथिनीमें आसक्त गजराज हो। अपनी पत्नी वनमालासहित वह रामके चरणोंमे गिर पड़ा। रामने तब उससे पूछा, अरे प्रिय लक्ष्मण,. सुन्दर-सुन्दर यह कन्यारत्न तुमने कहाँ प्राप्त किया।" (यह सुनकर) कुमारने उत्तर दिया—"क्या आप महीधर राजाकी गुणवती पुत्री विद्याधरी वनमालाको नहीं जानते"। वह मुझे पहले ही निर्दिष्ट कर दी गई थी। वही मुझे (अचानक) इस वनमे दीख गई।" इस प्रकार कुमार लक्ष्मणके पूरी कहानी बताते-बताते ही (पहले ही) रात्रि समाप्त हो गई और निर्मल प्रभात हो गया। उधर (उपवनमे) कन्याको न पाकर, यशालोलुप रक्षक सैनिक विरुद्ध हो उठे। वे कहने लगे "कन्याका हरण किसने किया।" तब रणमें दुर्जेय सैनिकोंने चपल अश्व, रथ और गजोंसे युद्ध क्षेत्रमे दोनों (राम लक्ष्मण) को इस प्रकार घेर लिया जिस प्रकार हरिण सिंहको घेर लें ॥१-६॥

[६] कलकल करती हुई सेना उठी, और यह चिल्लाने लगी, "जिसने कन्या ली हो उसे मारो" यह सुनकर लक्ष्मण प्रदीप्त हो उठा। मानो घी पड़नेसे आग ही भड़क उठी हो। सेना असंख्य थी और लक्ष्मण अकेला। तब भी उसे तिनकेके समान समझकर वह भिड़ गया। वह ठहरता, चलता, मुड़ता, पेड़ उखाड़

उव्वडइ भिडइ पाडइ तुरङ्ग । महि कमइ भमइ आमइ रहङ्ग ॥५॥
अवगाहइ साहइ धरइ जोह । दलवट्टइ लोट्टइ गयवरोह ॥६॥
विणिवाइय घाइय सुहड-थट्ट । कडुआविय विवरामुह पयट्ट ॥७॥
णासन्ति के वि जे समरें चुक्क । कायर-णर-कर-पहरणइँ मुक्क ॥८॥

घत्ता

गम्पिणु कहिउ महीहरहों 'एक्कहों णरहों आवट्टु सेण्णु भुव-दण्डएँ ।
जिम णासहि जिम भिडु समरें विहिँ एक्कु करें वणमाल लइय वलिमण्डएँ' ॥९॥

[१०]

त वयणु सुणेप्पिणु थरहरन्तु । धरणीधरु धाइउ विप्फुरन्तु ॥१॥
आरूढु महारहें दिण्णु सङ्खु । सण्णद्धु कुद्धु जय-लच्छि-कङ्खु ॥२॥
तो दुज्जय दुद्धर दुण्णिवार । 'हणु हणु' भणन्त णिग्गय कुमार ॥३॥
वणमाल - कुसुम - कल्लाणमाल । जयमाल - सुमाल - सुवण्णमाल ॥४॥
गोपाल-पाल इय अट्ठ भाइ । सहुँ राए णव गह कुइय णाइँ ॥५॥
एत्थन्तरें रणें वहु-मच्छरेण । हक्कारिउ लक्खणु महिहरेण ॥६॥
'वलु वलु समरङ्गणें देहि जुज्झु । णिय-णामु गोत्तु कहें कवणु तुज्झु' ॥७॥
त णिसुणें वि वोल्लिउ लच्छि-गेहु । 'कुल-णामहों अवसरु कवणु एहु ॥८॥

घत्ता

पहरु पहरु ज पइँ गुणिउ किण्ण वि मुणिउ जसु भाइ महन्तउ रामु ।
रहुकुल-णन्दणु लच्छि-हरु तउ जीवहरु णरवइ महु लक्खणु णामु' ॥९॥

[११]

कुलु णामु कहिउ ज सिरिहरेण । धणु घत्तें वि महिहेँ महीहरेण ॥१॥

कर शत्रुओंका दलन करता, उछलता, भिड़ता, घोड़ोंको गिराता, धरतीको चाँपता, चक्रको घुमाता, अवगाहन करता, सहता, योधाओंको पकड़ता, गजसमूहको दलकर लोट पोट करता हुआ (दीख पड़ा)। आघातसे उसने सुभट-समूहको गिरा दिया। पीड़ित होकर वे पराङ्मुख हो गये। कितने ही मारे गये, और कितने ही कायर योधा चूककर, उसके खर-प्रहारसे बच गये। तब किसीने राजा महीधरसे जाकर कहा,—"एक नरने अपने भुजदण्डसे समूची सेनाको रोक लिया है, जिस तरह हो युद्धमें भिड़कर उसे नष्ट कीजिये। भाग्यसे वह एक हाथमें बलपूर्वक वनमालाको लिये है" ॥ १-९ ॥

[१०] यह सुनकर राजा महीधर क्रोधसे थर्रा उठा। वह तमतमाता हुआ दौड़ा। महारथ पर आरूढ़ होकर उसने शंख बजवा दिया, इस प्रकार क्रुद्ध और विजय-लक्ष्मीका आकांक्षी वह संनद्ध हो गया। तब उसके दुर्जेय दुर्बार कुमार भी 'मारो-मारो' कहते हुए निकल पड़े। इस तरह, वनमाल कुसुम कल्याणमाल जयमाल सुकुमाल सुवर्णमाल गोपाल और पाल ये आठ भाई तथा राजा, कुल मिलाकर नौ ही लोग क्रुद्ध हो उठे। ईर्ष्यासे भरकर महीधरने लक्ष्मणको ललकारते हुए कहा,—"मुड़ो मुड़ो, युद्धमें लड़ो, बताओ तुम्हारा नाम गोत्र क्या है।" इसपर लक्ष्मणने उत्तर दिया, "कुल नाम पूछनेका यह कौन अवसर है। प्रहार करो जो तुमने सोचा है। कुछ भी समझ सकते है मुझे। जिसका राम सा महान् भाई है। मैं रघुकुलका पुत्र लक्ष्मीका धारक और तुम्हारा अन्त करनेवाला हूँ। मेरा नाम लक्ष्मण है" ॥ १-९ ॥

[११] लक्ष्मणके अपने कुल गोत्रका नाम बताते ही महीधरने धनुप-बाण फेंककर स्नेहोचित अपने विशाल बाहुओंमें (गजशुण्डकी

सुरकरि-कर-सम - भुअ - पञ्जरेण । अवरुण्डिउ णेह-महाभरेण ॥२॥
हवि सक्खिकरेंवि अपरायणासु । सइँ दिण्ण कण्ण णारायणासु ॥३॥
आरूढु महीहरु एक्क-रहेँ । अट्ठ वि कुमार अण्णेक्क-रहेँ ॥४॥
वणमाल स लक्खण एक्करहेँ । थिय स-बल सीय अण्णेक्क-रहेँ ॥५॥
पडु - पडह - सङ्ख - वद्धावणेहिँ । णच्चन्तेंहिँ खुज्जय-वामणेहिँ ॥६॥
उच्छाहेँहिँ धवलेंहिँ मङ्गलेहिँ । कंसालेंहिँ तालेंहिँ मद्दलेहिँ ॥७॥
आणन्दें णयरें पइट्ठाइँ । लीलएँ अत्थाणेँ वइट्ठाइँ ॥८॥

घत्ता

सहुँ वणमालएँ महुमहणु परितुट्ठ-मणु जं वेइहेँ जन्तु पदीसिउ ।
लोएँहिँ मङ्गलु गन्तएँहिँ णच्चन्तएँहिँ जिणु जम्मणेँ जिह सइँ भूसिउ ॥९॥

●

[३०. तीसमो संधि]

तहिँ अवसरेँ आणन्द-भरेँ उच्छाह-करेँ जयकारहोँ कारणेँ णिक्किउ ।
भरहहोँ उप्परि उचलिउ रहमुच्छलिउ णरु णन्दावत्त-णराहिउ ॥

[१]

जो भरहहोँ दूउ विसज्जियउ । आइउ सन्माण-विवज्जियउ ॥१॥
लहु णन्दावत्त-णराहिवहोँ । वज्जरिउ अणन्तवीर-णिवहोँ ॥२॥
'हउँ पेक्खु केम विच्छारियउ । सिरु मुण्डेंवि कह वि ण मारियउ ॥३॥
सो भरहु ण इच्छइ सन्धि रणेँ । ज जाणहोँ त चिन्तवहोँ मणेँ ॥४॥
अण्णु वि उक्खन्धेँ आइयउ । सहुँ सेण्णे विञ्झु पराइयउ ॥५॥
तहिँ णरवइ वालिखिल्लु वलिउ । सीहोयरु वज्जयण्णु मिलिउ ॥६॥

तरह प्रचण्ड) (भरकर) उसे गलेसे लगा लिया। उसने अग्निकी साक्षी (मानकर) अपनी कन्या वनमाला अपराजितकुमार लक्ष्मणको अर्पित कर दी। बादमें राजा महीधर एक रथपर बैठ गया। वनमाला और लक्ष्मण एक रथ पर और सीता और राम दूसरे पर। चलकर जब उन्होंने नगरमें प्रवेश किया तो पट-पटह शंख तथा तरह-तरहके वाद्य बज उठे। कुब्ज ब्राह्मण नाच रहे थे। कंसाल ताल और मर्दल की उत्साह और मंगलपूर्ण ध्वनि हो रही थी। वे लोग लीला पूर्वक दरबारमें जा बैठे ॥१–८॥

वनमालाके साथ वेदीपर जाता हुआ संतुष्ट मन लक्ष्मण ऐसा मालूम हो रहा था मानो जन्मके अवसर पर, लोगोंने गाते बजाते हुए, जिनको विभूषित कर दिया हो ॥९॥

•

तीसवीं संधि

आनन्द और उत्साहसे परिपूर्ण इसी अवसरपर, निर्दय नन्दावर्तके राजा अनन्तवीर्यने, हर्षसे भरकर जय पानेके लिए राजा भरतके ऊपर चढ़ाई कर दी।

[१] उसने भरतके पास जो अपना दूत भेजा था वह अपमानित होकर वापस आ गया। शीघ्र उसने नन्दावर्तके राजा अनन्तवीर्यसे कहा—"देखिये मेरी कैसी दुर्गति की, मेरा सिर मुड़वा दिया, किसी तरह मारा भर नहीं है, वह भरत राजा युद्धमें सन्धि नहीं चाहता, अब जो जानो वह मनमें सोच लो, एक और आपका बैरी आया है वह सेनाके साथ विंध्याचल तक पहुँच गया है। वहाँ नरपति बालिखिल्य सिंहोदर

तहिँ रुद्दभुत्ति सिरिवच्छ-धरु। मरुभुत्ति सुभुत्ति विभुत्ति-करु ॥७॥
अवरेहि सि समउ समावडिउ। पेक्खेसहि कल्लएँ अब्भिडिउ' ॥८॥

घत्ता

ताम अणन्तवीरु खुहिउ पइजारुहिउ 'जइ कल्लएँ भरहु ण मारमि।
तो अरहन्त-भडाराहोँ सुर-साराहोँ णउ चलण-जुवलु जयकारमि' ॥९॥

[२]

पइजारूढु णराहिउ जावँहिँ। साहणु मिलिउ असेसु वि तावँहिँ ॥१॥
लेहु लिहेप्पिणु जग-विक्खायहोँ। तुरिउ विसज्जिउ महिहर-रायहोँ ॥२॥
अग्गएँ घित्तु वद्धु लम्पिक्कु व। हरिणक्खरहिँ लीणु णण्डिक्कु व ॥३॥
सुन्दरु पत्तवन्तु वर-साहु व। णाव-वहुलु सरि-गङ्ग-पवाहु व ॥४॥
दिट्ठ राय तहिँ आय अणन्त वि। सल्ल-विसल्ल - सीहविक्कन्त वि ॥५॥
दुज्जय-अजय-विजय - जय-जयमुह। णरसद्दूल - विउल-गय - गयमुह ॥६॥
रुद्दवच्छ - महिवच्छ - महद्धय। चन्दण - चन्दोयर - गरुडद्धय ॥७॥
केसरि - मारिचण्डु - जमघण्टा। कोङ्कण - मलय - पण्डियाणट्टा ॥८॥
गुज्जर - गङ्ग - वङ्ग - मङ्गाला। पइंविय - पारियत्त - पञ्चाला ॥९॥
सिन्धव - कामरूव - गम्भीरा। तज्जिय - पारसीय - परतीरा ॥१०॥
मरु- कण्णाड - लाड - जालन्धर। टक्काहीर - कीर - खस - वव्वर ॥११॥
अवर वि जे एक्केक्क-पहाणा। केण गणेप्पिणु सक्किय राणा ॥१२॥

और वज्रकर्ण भी मिल गये हैं। रुद्रभूति श्रीवत्सधर मरुभूति सुभुक्ति विभुक्तिकर आदि दूसरे राजा भी आकर उससे मिल गये है। अब समय आ गया है, देखिएगा ही युद्ध होगा।" यह सुनकर अनन्तवीर्य एकदम क्षुब्ध हो गया, और उसने प्रतिज्ञा की "यदि मैं कल तक भरतका हनन न करूँ तो सुरश्रेष्ठ भट्टारक अरहंतके चरण-कमलकी जय न बोलूँ" ॥१-६॥

[२] इस प्रकार अनन्तवीर्य जब प्रतिज्ञा कर रहा था तभी अशेष सेना उससे आ मिली। तब उसने तुरन्त ही एक लेखपत्र लिखवाकर विश्वविख्यात राजा महीधरके पास भी भेजा। वाहकने वह पत्र लाकर महीधरके सम्मुख डाल दिया। वह लेखपत्र चोर की तरह बँधा हुआ, व्याधकी तरह चाडिक्क (चितकबरे मृगचर्म और चितकबरे अक्षरो) से सहित, उत्तम साधुके समान सुन्दर पत्र वाला (पात्रता और पत्ता), गंगाके प्रवाह की भाँति (नाम और नावोंसे सहित) नावालऊ' था। उस लेख पत्रको पढ़ते ही, बहुतसे राजा अनन्तवीर्यके यहाँ पहुँचने लगे। शल्य, विशल्य, सिंहविक्रांत, दुर्जय, अज, विजय, नरशार्दूल, विपुलगज, गजमुख, रुद्रवत्स, महिवत्स, महाध्वज, चन्दन, चन्द्रोदर, गरुड़ध्वज, केशरी, मारिचण्ड, यमघण्ट, कोकण, मलय, आनर्त, गुर्जर, गंग, बंग, मंगाल, पइवई? पारियात्र, पांचाल, सैंधव, कामरूप, गंभीर, तर्जित, पारसीक, परतीर, मरु, कर्णाटक, लाट, जालंधर, टक्क, आभीर, कीरखस, बर्बर, आदि (के) राजा, उनमेंसे प्रमुख थे। और भी जो दूसरे एकाकी प्रमुख राजा थे उन्हें कौन गिना सकता है। तब श्यामवर्ण राजा महीधर सहसा उन्मन हो उठा। मानो उसके सिरपर वज्र गिर पड़ा हो। उसके सिरपर यह चिन्ता सवार

घत्ता

ताम णराहिउ कसण-तणु थिउ विमण-मणु ण पडिउ सिरत्थलेँ वज्जु ।
'किह सामिय-सम्माण-भरु विसहिउ दुद्धरु किह भरहहोँ पहरिउ अज्जु' ॥१३॥

[३]

ज णरवइ मणेँ चिन्तावियउ । हलहरु एक्कन्त-पक्खेँ थियउ ॥१॥
अट्ठ वि कुमार कोक्किय खणेँण । वइदेहि आय सहुँ लक्खणेँण ॥२॥
मेल्लेप्पिणु मन्तिउ मन्तणउ । वलु भणइ 'म दरिसहोँ अप्पणउ ॥३॥
रह-तुरय-महागय परिहरेँवि । तिय-चारण-गायण-वेसु करेँवि ॥४॥
त रिउ-अत्थाणु पईसरहोँ । णच्चन्त अणन्तवीरु धरहोँ' ॥५॥
त वयणु सुणेँवि परितुट्ठ-मण । थिय कामिणि-वेस कियाहिरण ॥६॥
वलएवें जोइउ पिय-वयणु । किं होइ ण होइ वेस-गहणु ॥७॥
'लइ सुन्दरि ताव तिट्ठ णयरेँ । अम्हेँहिँ पुणु जुज्झेवउ समरेँ' ॥८॥

घत्ता

लग्ग कडच्छएँ जणय-सुय कण्टइय-भुय 'लहु णरवर-णाह ण एसहि ।
महँ मेल्लेँवि भासुरएँ रण-सासुरएँ मा कित्ति-वहुअ परिणेसहि' ॥९॥

[४]

खेड्डु करेँवि सचल्ल महाइय । णिविसें णन्दावत्तु पराइय ॥१॥
दिट्ठु जिणालउ खणेँ परिअञ्चेँवि । अग्गएँ गाएँ वि वाएँ वि णच्चेँवि ॥२॥
सीय ठवेँवि पइट्ठ पुर-सरवरेँ । रहवर - तुरय-महागय - जलयरेँ ॥३॥
देउल - वहल - धवल-कमलायरेँ । णन्दणवण - घण-तीर - लयाहरेँ ॥४॥
चारु-विलासिणि-णलिणि-करम्विएँ । छप्पण्णय-छप्पय - परिचुम्विएँ ॥५॥

थी कि मैं अब स्वामीके सम्मान-भारको कैसे निभाऊँ और राजा भरतकी किस प्रकार रक्षा करूँ ॥१-१३॥

[३] राजा महीधरको मन ही मन चिन्तित देखकर राम एकांतमे जाकर बैठ गये। एक ही क्षणमे उन्होंने महीधरके आठों कुमारोंको बुलवा लिया। लक्ष्मण सहित सीता देवी भी आ गईं। तब मन्त्रियों और मन्त्रणाको छोड़कर रामने कहा—"अपने आपको प्रकट मत करो। गज, अश्व और महागजको छोड़कर, स्त्री भाट और गायकका वेप बनाकर शत्रुके दरबारमें घुस पड़ो और नाचते हुए अनन्तवीर्यको पकड़ लो।" यह वचन सुनकर संतुष्ट मन उन लोगोंने स्त्रीका वेष बना लिया और गहने पहन लिये। तब रामने सीता देवीसे कहा, "शायद तुमसे यह रूप धारण करते बने या न बने, इसलिए तुम तब तक इसी नगरमे रहना, हम युद्ध मे जाकर लड़ेंगे।" परन्तु पुलकितबाहु सीतादेवी कुछ तिरछी देखकर उनके साथ हो लीं। वह बोली—"हे नरनाथ! तुम शीघ्र नही लौटोगे, क्या पता कहीं तुम युद्ध रूपी ससुरालमे चमक-दमक वाली कीर्ति-वधूसे विवाह न कर लो" ॥१-६॥

[४] तब महनीय वे लोग खेल करते हुए चले और पल भरमे ही नन्दावर्त नगरमे पहुँच गये। उन्हें (पहले) एक जिनालय दीख पड़ा। तब उसके सम्मुख गा बजा और नाचकर उन लोगोंने उसी मन्दिरकी परिक्रमा दी। फिर सीतादेवीको वहीं छोड़ राम लक्ष्मण आदिने नगरमे प्रवेश किया। उस नगर रूप सरोवरमे प्रचुर देवकुल रूपी कमलाकर थे। रथ श्रेष्ठ अश्व और गजरूपी जलचर भरे थे। नन्दन बन ही, उसके तटवर्ती घने लतागृह थे। सुन्दर विलासिनीरूपी कमलिनियोसे वह नगर सरोवर अंचित था। और विटरूपी भ्रमरोसे चुम्बित। उसमें जनरूपी निर्मल जल

सज्जण-णिम्मल - सलिलालङ्किएँ । पिसुग-वयण-घण - पङ्कुप्पङ्किएँ ॥६॥
कामिणि-चल-मण - मच्छुत्थल्लिएँ । णरवर-हस-सएहिँ अमेल्लिएँ ॥७॥
तहिँ तेहएँ पुर-सरवरें दुज्जय । लीलएँ णाइँ पइट्ठ दिसागय ॥८॥

घत्ता

कामिणि-वेस कियाहरण विहसिय-वयण गय पत्त तेत्थु पडिहारु ।
वुच्चइ 'आयइँ चारणाइँ भरहहाँ तणइँ जिव कहेँ जिव देइ पइसारु' ॥९॥

[५]

त वयणु सुणेँवि पडिहारु गउ । विण्णत्तु णराहिउ रणेँ अजउ ॥१॥
'पहु एत्तइँ गायण आयाइँ । फुडु माणुस-मेत्तेँण जायाइँ ॥२॥
णउ जाणहुँ किं विज्जाहरइँ । किं गन्धव्वइँ कि किण्णरइँ ॥३॥
अइ-सुसरइँ जण-मण-मोहणइँ । मुणिवरहु मि मण-सखोहणइँ ॥४॥
तं वयणु सुणेवि णराहिवेँण । 'दे दे पइसारु' वुत्तु णिवेँण ॥५॥
पडिहारु पधाइउ तुट्ठ-मणु । 'पइसरहाँ' भणन्तु कण्टइय-तणु ॥६॥
त वयणु सुणेवि समुच्चलिय । ण दस दिसि-वह एक्कहिँ मिलिय ॥७॥

घत्ता

पइठ णरिन्दत्थाण-वणेँ रिउ-रुक्ख-घणेँ सिंहासण-गिरिवर-मण्डिएँ ।
पोढ-विलासिणि-लय-वहलेँ वर-वेल्लहलेँ अइ-वीर-सीह-परिचड्डिएँ ॥८॥

[६]

तहिँ तेहएँ रिउ-अत्थाण-वणेँ । पञ्चाणण जेम पइट्ठ खणेँ ॥१॥
णन्दियउ-णराहिउ दिट्ठु किह । णक्खत्तहँ मज्झेँ मियङ्कु जिह ॥२॥

भरा था, और जो चुगलखोरोंकी वाणीरूपी कीचड़से पंकिल था। कामिनियोंकी चञ्चल मनरूपी मछलियाँ उसमें उथल-पुथल कर रही थीं। उत्तम नररूपी हंस उस नगर-सरोवरका कभी भी त्याग नहीं करते थे। इस प्रकारके उस अजेय नगररूपी सरोवरमें, दिग्गजोंकी भाँति लीला करते हुए उन लोगोंने प्रवेश किया ॥१-८॥

स्त्रीका वेष बनाकर और आभरण पहनकर, हँसी मजाक करते जब वे चले तो (पहले) उन्हें प्रतिहार मिला। उनमेंसे एकने कहा,—"हम राजा भरतके चारण हैं, अपने राजासे इस तरह कहो कि जिससे हमें (दरबार) में प्रवेश मिल जाय" ॥ ९ ॥

[५] यह वचन सुनकर प्रतिहार गया। और उसने अजेय राजा प्रतिहारसे निवेदन किया, "प्रभु! कुछ गाने-बजानेवाले आये हैं। वैसे तो वे मनुष्य रूपमें हैं, पर मैं नहीं कह सकता कि वे गंधर्व हैं या किन्नर, या विद्याधर। जन-मन-मोहक उनके स्वर अत्यन्त सुन्दर मुनियोंके मनको भी लुब्ध करनेवाले हैं।" यह सुनकर राजाने कहा,—"शीघ्र भीतर ले आओ।" तब तुष्टमन प्रतिहार दौड़ा-दौड़ा बाहर गया और पुलकित होकर उनसे बोला, "चलिए भीतर।" उसके वचन सुनकर वे लोग भीतर गये। मानो दशों दिशापथ एक ही में मिल गये हों। वे उस दरबार रूपी वनमें प्रविष्ट हुए। वह शत्रुरूपी वृक्षोंसे सघन, सिंहासनरूपी पहाड़ोंसे मण्डित और प्रौढ विलासिनीरूपी लताओंसे प्रचुर, अनन्तवीर्य-रूपी बेलफलसे युक्त, और अतिवीररूपी सिंहोंसे चित्रित था ॥ १-८ ॥

[६] उस शत्रुके दरबाररूपी वनमें वे लोग सिंहकी भाँति घुसे। नन्दावर्तका राजा अनन्तवीर्य उन्हें ऐसा दीख पड़ा, मानो तारोंसे सहित चन्द्र हो। उसके आगे उन्होंने अपना प्रदर्शन

आरम्भिउ अग्गएँ पेक्खणउ । सुकलत्तु व सवलु सलक्खणउ ॥३॥
सुरय पिव वन्ध-करण-पवरु । कव्व पिव छन्द-सद्द-गहिरु ॥४॥
रण्ण पिव वस-ताल-सहिउ । जुज्झ पिव राय-सेय-सहिउ ॥५॥
जिह जिह उव्वेल्लइ हल-वहणु । तिह तिह अप्पाणु णवेइ जणु ॥६॥
मयरद्धय - सर - सखोहियउ । मिग-णिवहु व गेए मोहियउ ॥७॥
वलु पढइ अणन्तवीरु सुणइ । 'को सीहें समउ केलि कुणइ ॥८॥

घत्ता

जाम ण रणमुहें उत्थरइ पहरणु धरइ पइँ जीवगाहु सहुँ राएँहिँ ।
ताम अयाण मुएवि छलु परिहरें वि वलु पडु भरह-णरिन्दहों पाएँहिँ' ॥९॥

[७]

राहवचन्दु मणेण ण कम्पिउ । पुणु पुणरुत्तेंहिँ एव पजम्पिउ ॥१॥
'भो भो णरवइ भरहु णमन्तहुँ । कवणु पराहउ किर अणुणन्तहुँ ॥२॥
जो पर-वल समुद्दें महणायइ । जो पर-वल-मियङ्कें गहणायइ ॥३॥
जो पर-वल-गयणेंहिँ चन्दायइ । जो पर-वल-गइन्दें सीहायइ ॥४॥
जो पर-वल-रयणिहिँ हसायइ । जो पर-वल-तुरङ्गें महिसायइ ॥५॥
जो पर-वल-भुयङ्गें गरुडायइ । जो पर-वल-वणोहें जलणायइ ॥६॥
जो पर-वल-घणोहें पवणायइ । जो पर-वल-पवणोहें धरायइ ॥७॥
। जो पर-वल-धरोहें वज्जायइ' ॥८॥

प्रारम्भ कर दिया। उनका वह प्रदर्शन, अच्छी स्त्रीकी तरह सबल (अंगबल, और रामसे सहित) और सलक्खन [लक्षण और लक्ष्मण सहित] था। सुरतिके समान बंधकरणमें प्रबल, काव्यकी तरह छन्द और शब्दोंमें गंभीर, अरण्यकी तरह [वंश और ताल] से भरपूर, युद्धकी तरह [राजा और प्रस्वेद, तथा कुंकुम और प्रस्वेद] से युक्त था। राम जैसे-जैसे उद्वेलित होते, श्रोता लोग वैसे-वैसे झुकते जाते। कामके बाणोंसे क्षुब्ध होकर मृगसमूहकी तरह, वे गानसे मुग्ध हो उठे। तब अनन्तवीर्यने रामको यह गाते हुए सुना, "सिंहके साथ क्रीड़ा कौन कर सकता है, जब तक वह (भरत) रणमुखमें नहीं उछलता, आयुध नहीं उठाता और दूसरे राजाओंके साथ तुम्हें जीवित नहीं पकड़ता, तब तक हे मूर्ख, सब छल प्रपंच छोड़कर और अपनी सेना हटाकर भरत राजाके चरणोंमें गिर जा" ॥१-६॥

[७] रामचन्द्र जरा भी नहीं काँपे, बार-बार वह यही दुहरा रहे थे, "अरे राजन्, भरतको राजा मानकर, उनकी आज्ञा माननेमें तुम्हारा क्या पराभव है? वह भरत शत्रुरूपी सेनासमुद्रके लिए मन्दमंथनकी तरह है। जो शत्रु सेनारूपी चन्द्रके लिए राहुके समान है, जो शत्रुसेनारूपी आकाशमें चन्द्रमाकी भाँति चमकता है, जो शत्रुरूपी गजराजके लिए सिंह है, शत्रुबलरूपी निशाके लिए सूर्य है, शत्रुबलरूपी वनके लिए दावानल है। परबलरूपी अश्वके लिए महिषके समान है। परबलरूपी सर्पके लिए जो गरुड़ है। परबलरूपी मेघसमूहके लिए पवनका आघात है। परबलरूपी पवनसमूहके लिए पर्वत है। और पर-बलरूपी पर्वतसमूहके लिए वज्रकी तरह है।" यह सुनकर अनन्त

घत्ता

तं णिसुणेवि विरुद्धएँण मणेँ कुद्धएँण अइवीरें अहर-फुरन्तें ।
रत्तुप्पल-दल-लोयणेँण जग-भोयणेँण णं किउ अवलोउ कियन्तें ॥९॥

[८]

भय-भीसणु अमरिस-कुइय-देहु । गज्जन्तु समुट्ठिउ जेम मेहु ॥१॥
करेँ असिवरु लेइ ण लेइ जाम । णहेँ उडुँवि रामें धरिउ ताम ॥२॥
सिरेँ पाउ देवि चोरु व णिवद्धु । ण वारणु वारि-णिवन्धेँ छुद्धु ॥३॥
रिउ चम्पेँवि पर-वल-मड्डयवट्टु । जिण-भवणहोँ सम्मुहु वलु पयट्टु ॥४॥
एत्थन्तरेँ महुमहणेण वुत्तु । 'जो ढुक्कइ त मारमि णिरुत्तु' ॥५॥
त सुणेँवि परोप्परु रिउ चवन्ति । 'किं एय परक्कम तियहँ होन्ति' ॥६॥
एत्तडिय वोल्ल पडिवक्खेँ जाम । णर दस वि जिणालउ पत्त ताम ॥७॥
जे गिलिय आसि पुर-रक्खसेण । ण मुक्क पडीवा भय-वसेण ॥८॥

घत्ता

तावन्तेउरु विमण-मणु गय-गइ-गमणु वहु-हार-दोर-खुप्पन्तउ ।
आयउ पासु जियाहवहोँ तहोँ राहवहोँ 'दे दइय-भिक्ख' मग्गन्तउ ॥९॥

[९]

ज एव वुत्तु वणियायणेण । पहु पभणिउ दसरह-णन्दणेण ॥१॥
'जइ भरहहोँ होहि सुभिच्चु अज्जु । तो अज्जु वि लइ अप्पणउ रज्जु' ॥२॥
त वयणु सुणेँवि परलोय-भीरु । विहसेप्पिणु भणइ अणन्तवीरु ॥३॥
'पाडेवउ जो चलणेहिँ णिच्चु । तहोँ केम पडीवउ होमि भिच्चु ॥४॥
वलिमण्डएँ तव-चरणेण जो वि । पाडेवउ पायहिँ भरहु तो वि' ॥५॥
त वयणु सुणेप्पिणु तुट्ठु रामु । 'सच्चउ जेँ तुज्झु अइवीरु णामु ॥६॥
पुणरुत्तेँहिँ वुच्चइ 'साहु साहु' । हक्कारिउ तहोँ सुउ सहसवाहु ॥७॥

वीर्य अपने मनमें भड़क उठा। अपने ओंठ चबाने लगा। उसने लाल-लाल आँखोंसे ऐसे देखा मानो जगसंहारक कृतान्तने ही देखा हो ॥१–६॥

[८] भयभीषण और अमर्षसे क्रुद्ध कलेवर वह मेघकी भाँति गरज उठा। वह अपनी तलवार हाथमे ले या न ले, इतनेमे रामने उछलकर (आकाशमे) उसे पकड़ लिया। उसके सिरपर पैर रखकर चोरकी तरह ऐसे बाँध लिया मानो हाथीकी पाली बनाकर जलको बाँध लिया हो। तब शत्रुसेना-संहारक राम अनन्तवीर्यको बाँधकर जिन-मन्दिर पहुँचे। लक्ष्मणने इतनेमे कहा, "जो इधर आयगा निश्चय ही मैं उसे मारूँगा।" यह सुनकर शत्रु लोग आपसमे बात करने लगे, "क्या स्त्रियोंमें इतना पराक्रम हो सकता है"। इस तरहकी बाते उनमे हो ही रही थीं कि शेष जन भी उस जिन-मंदिरमे, ऐसे आ पहुँचे मानो पहले जिन्हें पुररक्षकने पकड़ लिया था परन्तु बादमे मारे डरके छोड़ दिया हो। इसी बीच अनन्तवीर्यका अन्तःपुर युद्धविजेता रामके पास आया। विमन, गजगामी वह प्रचुर हार डोरसे स्खलित हो रहा था। वह यह याचना कर रहा था कि "पतिकी भीख दो"॥१–६॥

[९] स्त्रीजनकी इस प्रार्थनापर दशरथपुत्र रामने कहा, "यदि यह भरतका अनुचर बन जाय तो वह आज ही अपना राज्य पा सकता है।" यह सुनकर परलोकभीरु अनन्तवीर्य बोला, "अरे जो जिन सदैव अपने चरणोंमें डाले रहेगा उसे छोड़कर मैं और किसका अनुचर बनूँ। प्रत्युत मैं तपश्चरण कर, भरतको ही बलपूर्वक अपने पैरो पर झुकाऊँगा।" यह सुनकर रामने कहा "सचमुच तुम्हारा अनन्तवीर्य नाम सच है। उन्होने यही दुहराया, "साधु साधु"। बादमे उसके पुत्र सहस्रबाहुको बुला उसे

सो णिम्र संताणहों रइउ राउ। अण्णु वि भरहहों पाइक्कु जाउ ॥८॥

घत्ता

रिउ मेल्लेप्पिणु दस वि जण गय तुट्ठ-मण णिय-णयरु पराइय जावँहिँ।
णन्दावत्त-णराहिवइ जिणँ करॅवि मइ दिक्खहँ समुट्ठिउ तावँहिँ ॥९॥

[१०]

एत्थन्तरॅ पुर परमेसराहँ। दिक्खाएँ समुट्ठिउ सउ णराहँ ॥१॥
सद्दूल - विउल - वरवीरभद्द। मुणिभद्द - सुभद्द - समन्तभद्द ॥२॥
गरुडद्धय - मयरद्धय - पचण्ड। चन्दण - चन्दोयर - मारिचण्ड ॥३॥
जयघण्ट - महद्धय - चन्द - सूर। जय विजय-अजय-दुज्जय-कुकूर ॥४॥
इय एत्तिय पहु पव्वइय तेत्थु। लाहण-पव्वएँ जय-णन्दि जेत्थु ॥५॥
थिय पञ्च मुट्ठि सिरॅ लोउ देवि। सइँ वाहहिँ आहरणइँ मुएवि ॥६॥
णीसङ्ग वि थिय रिसि-सङ्घ-सहिय। सम्मार वि भव-ससार-रहिय ॥७॥
णिम्माण वि जीव-सयहुँ समाण। णिग्गन्थ वि गन्थ-पयत्थ-जाण ॥८॥

घत्ता

इय एक्केक्क-पहाण रिसि भव-तिमिर-ससि तव-सूर महावय-धारा।
छट्ठट्ठम-दस-वारसॅहिँ वहु-उववसॅहिँ अप्पाणु खवन्ति भडारा ॥९॥

[११]

तव-चरणॅ परिट्ठिउ ज जि राउ। तहों वन्दण-हत्तिएँ भरहु आउ ॥१॥
तें दिट्ठु भडारउ तेय-पिण्डु। जो मोह-महीहरॅ वज्ज-दण्डु ॥२॥
जो कोह-हुवासणॅ जल-णिहाउ। जो मयण-महाघणॅ पलय-वाउ ॥३॥
जो दप्प-गइन्दॅ महा-मइन्दु। जो माण-भुअङ्गमॅ वर-खगिन्दु ॥४॥
सो मुणिवर दसरह-णन्दणेण। वन्दिउ णिय-गरहण-णिन्दणेण ॥५॥
भो साहु साहु गम्भीर धीर। पइँ पूरिय पइजाऽणन्तवीर ॥६॥
ज पाडिउ हउँ चलणेहिँ देव। त तिहुअणु काराविउ सेव ॥७॥

समस्त राज्य दे दिया। इस प्रकार भरतका एक और अनुचर बढ़ गया। शत्रुको इस प्रकार मुक्त कर, वे सब अपने नगर वापस आ गये। उधर राजा महीधरने अपनी सारी आस्था जिनमे केन्द्रितकर दीक्षाके लिए कूच कर दिया ॥१-६॥

[१०] पुरपरमेश्वर महीधरके साथ और भी दूसरे राजा दीक्षाके लिए प्रस्तुत हो गये। शार्दूल, विपुल, वीरभद्र, मुनिभद्र, सुभद्र, समंतभद्र, गरुड़ध्वज, मकरध्वज, प्रचण्ड, चन्दन, चन्द्रोदर, मारिचण्ड, जयघण्ट, महाध्वज, चन्द्र, सूर, जय, विजय, अजय, दुर्जय और कुक्करने भी उसी पर्वतपर जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली जहाँ आचार्य जयनन्दी दीक्षा दान कर रहे थे। अपनी पाँच मुट्ठियोंसे केश लोचकर सवारियोंके साथ आभूषणोका त्याग कर, अनासंग वे सब मुनिसंघके साथ हो लिये। वे मुनिजन मानरहित होकर भी जीवोंके मानके साथ थे। और निर्ग्रन्थ होकर भी ग्रन्थोंके प्रशस्त जानकार थे। उस संघमे प्रत्येक ऋषि मुख्य थे। जो भवरूपी अन्धकारके लिए चन्द्र, तपःसूर और महाव्रतोका धारण करनेवाले थे। वे छह, आठ और बारह तक उपवास करके अपने आपको खपाने लगे ॥१-६॥

[११] जब राजा अनन्तवीर्य तप साधने चला गया तो भरत राजा भी वहाँ उसकी वन्दना-भक्तिके लिए गया। उसने तेजके पिंड भट्टारक अनन्तवीर्यको देखा। वह, मोहरूपी महीधरके लिए प्रचण्डवज्र, क्रोधाग्निके लिए मेघसमूह, काम-महा-घनके लिए प्रलय वात, दर्पगजके लिए सिंह, मानसूर्यके लिए गरुड़ थे। मनमें अपनी निंदा करते हुए भरत वन्दनापूर्वक बोला, "साधु! धीर वीर अनन्तवीर्य, तुमने, सचमुच अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। लो तुमने आखिर मुझे अपने चरणोंमे नत कर ही लिया। और

गउ एम पसंसेवि भरहु राउ । णिय णयरु पत्तु साहण-सहाउ ॥८॥

घत्ता

हरि-वल पइठ जयन्तपुरेँ धण-कण-पउरेँ जय-मङ्गल-तूर-वमालेँहिँ ।
लक्खणु लक्खणवन्तियएँ णिय-पत्तियएँ अवगूढु स इं भु व-डालेँहिँ ॥९॥

●

[३१. एकतीसमो संधि]

धण-धण्ण-समिद्धहों पुहइ-पसिद्धहों जण-मण णयणाणन्दणहों ।
वण-वासहोँ जन्तेहिँ रामाणन्तेँहिँ किउ उम्माहउ पट्टणहो ॥

[१]

छुडु छुडु उहय समागम-लुद्धइँ । रिसि-कुलइँ व परमागम-लुद्धइँ ॥१॥
छुडु छुडु अवरोप्परु अणुरत्तइँ । सञ्झ-दिवायरइँ व अणुरत्तइँ ॥२॥
छुडु छुडु अहिणव-वहु-वरइत्तइँ । सोम-पहा इव सुन्दर-चित्तइँ ॥३॥
छुडु छुडु चुम्विय-तामरसाइँ । फुल्लन्धुय इव लुद्ध-रसाइँ ॥४॥
ताम कुमारें णयण-विसाला । जन्तें आउच्छिय वणमाला ॥५॥
'हे मालूर-पवर-पीवर-थणेँ । कुवलय-दल - पप्फुल्लिय-लोअणेँ ॥६॥
हंस गमणेँ गय-लील-विलासिणि । चन्द-वयणेँ णिय-णाम पगासिणि ॥७॥
जामि कन्तेँ हउँ दाहिण देसहोँ । गिरि-किक्किन्ध - णयर - उद्देसहोँ' ॥८॥

घत्ता

सुरवर-वरइत्तेँ णव-वरइत्तेँ ज आउच्छिय णियय धण ।
ओहुल्लिय-वयणी पगलिय-णयणी थिय हेट्ठामुह विमण-मण ॥९॥

त्रिभुवनसे अपनी सेवा करा ली।" इस प्रकार उसकी प्रशंसा कर, राजा भरत सेनासहित अपने नगरको चला गया। राम और लक्ष्मणने भी जयमंगल और तूर्यध्वनिके साथ, धनकनसे भरपूर जयंतपुर नगरमें प्रवेश किया। तब लक्ष्मणकी सुलक्षणा पत्नीने अपनी भुजारूपी डालोंसे उसका आलिङ्गन किया ॥१-६॥

•

इकतीसवीं संधि

कुछ समयके उपरांत राम और लक्ष्मण, धन-धान्यसे सम्पन्न पृथ्वीमें सुप्रसिद्ध, जनोंके मन और नेत्रोंको आनन्ददायक, उस नगरको छोड़कर वनवासके लिए कूच कर गये।

[१] इस अवसरपर लक्ष्मण वनमालासे मिलनेके लिए एकदम आतुर हो उठे। क्योंकि वे दोनों—मुनिकुलकी तरह परमागम लुब्ध (परमशास्त्र और दूसरेके आगमके लोभी) थे। एक दूसरे पर आसक्त वे दोनों एक दूसरे पर अनुरक्त हो उठे। वैसे ही जैसे सूर्य और चन्द्र अनुरक्त हो उठते हैं। वे दोनों अभिनव वर-वधू चन्द्र और उसकी प्रभाकी तरह, सुन्दर चित्त थे। रक्तकमलका चुम्बन करनेवाले भ्रमरकी तरह वे दोनों रसलुब्ध हो रहे थे। जाते समय कुमार लक्ष्मणने विशालनयना वनमालासे कहा, हे हंसगामिनी गजलीला विलासिनी चन्द्रमुखी, स्वयं अपना नाम प्रसिद्ध करनेवाली वनमाले! मैं किष्किंध नगरको लक्ष्य बनाकर दक्षिण देशके लिए जा रहा हूँ"। पूतन यक्षसे वर प्राप्त करनेवाले कुमार लक्ष्मणके यह कहने पर (पूछने पर) विमना गलितनेत्र म्लानमुख, वह अपना मुख नीचा करके रह गई ॥१-६॥

[२]

कज्जल - वहलुप्पील - सणाहें । महि पक्खालिय असु-पवाहें ॥१॥
'एत्तिउ विरुवउ माणुस-लोउ । ज जर-जम्मण - मरण - विओउ' ॥२॥
धीरिय लक्खणेण एत्थन्तरें । 'रामहों णिलउ करेवि वणन्तरें ॥३॥
कइहि मि दिणेंहिं पडीवउ आवमि । सयल स-सायर महि भुञ्जावमि ॥४॥
जइ पुणु कहवि तुल-लग्गेँ णायउ । हउँ ण होमि सोमित्तिएँ जायउ ॥५॥
अण्णु वि रयणिहेँ जो भुञ्जन्तउ । मस-भक्खि महु मज्जु पियन्तउ ॥६॥
जीव वहन्तउ अलिउ चवन्तउ । पर-धणेँ पर-कलत्तेँ अणुरत्तउ ॥७॥
जो णरु आएँहिँ वसणेंहिँ भुत्तउ । हउँ पावेण तेण सजुत्तउ ॥८॥

घत्ता

जइ एम वि णावमि वयणु ण दावमि तो णिव्वूढ-महाहवहोँ ।
णव-कमल-सुकोमल णह-पह-उज्जल छित्त पाय मइँ राहवहोँ' ॥९॥

[३]

वणमाल णियत्तेंवि भग्गमाण । गय लक्खण-राम सुपुज्जमाण ॥१॥
थोवन्तरें मच्छुत्थल्ल देन्ति । गोला-णइ दिट्ठ समुव्वहन्ति ॥२॥
सुसुअर - घोर - घुरुघुरुहुरन्ति । करि - मयरड्डोहिय - डुहुडुहन्ति ॥३॥
डिण्डीर-सण्ड-मण्डलिउ देन्ति । दद्दुरय - रडिय - दुरुदुरुदुरन्ति ॥४॥
कल्लोलुल्लोलहिँ उव्वहन्ति । उग्घोस - घोस - घवघवघवन्ति ॥५॥
पडिखलण-वलण खलखलखलन्ति । खलखलिय-खलक्क-भडक्क देन्ति ॥६॥
ससि-सङ्ख-कुन्द - धवलोज्झरेण । कारण्डड्डाविय - डम्वरेण ॥७॥

घत्ता

फेणावलि-वङ्किय वलयालङ्किय ण महि-कुलवहुअहेँ तणिय ।
जलणिहि-भत्तारहोँ मोत्तिय-हारहोँ वाह पसारिय दाहिणिय ॥८॥

[२] काजल मिश्रित अश्रुधारासे वह धरतीको प्लावित करने लगी। तब लक्ष्मणने धीरज बँधाते हुए कहा—"संसारमे यही बात तो बुरी है कि यह बुढ़ापा, जन्म, मरण और वियोग होता है। किसी अन्य वनमे रामका आश्रय बनाकर मै कुछ ही दिनोमे वापस आ जाऊँगा, और फिर तुम्हारे साथ धरतीका भोग करूँगा। यह कहकर भी, यदि मै तुलालग्नमे वापस नहीं आया तो सुमित्राका बेटा नहीं, और भी, निशाभोजन, मांसभक्षण, मधु और मद्यका पान, जीव-हत्या, झूठ बोलना, परधन और परस्त्रीमे अनुरक्त होना इत्यादि व्यसनोमे जो पाप लगता है, वह सब पाप मुझे लगे। यदि मै लौटकर न आऊँ, या अपना मुँह न दिखाऊँ। मै महायुद्धमे समर्थ, श्रीरामके नव कमलकी तरह कोमल, और नव प्रभासे उज्ज्वल रामके चरण छूकर कह रहा हूँ" ॥१–६॥

[३] इस प्रकार भग्न वनमालाको समझा-बुझाकर, सुपूज्य राम और लक्ष्मणने वहाँसे प्रस्थान किया। थोड़ी दूर जाने पर उन्हें गोदावरी नदी मिली। उसमे मछलियाँ उछल-कूद मचा रही थीं। शिशुमारोमे घोर घुरघुराती हुई, गज और मगरोके आलोड़नसे डुहडुहाती हुई, फेन-समूहके मण्डल बनाती हुई, मेंढकोकी ध्वनिसे टर्राती हुई, तरङ्गोके उद्वेलसे बहती हुई, उद्घोषके शब्दसे छप-छप करती हुई, वह गोदावरी नदी शशि, शंख और कुन्द-कुसुमोसे धवल हो रही थी। कारंडवके उड्डयनसे भयङ्कर, जलप्रपातोके स्खलन और मोड़से खल-खल करती हुई और चट्टानो पर सर-सराती हुई वह बह रही थी। वलय (आवर्त और चूड़ी) से अंकित, वह मानो धरती रूपी नव-वधूकी कुल पुत्री ही हो जो अपने प्रिय समुद्रके आगे मुक्ताहारके लिए अपना दॉया हाथ पसार रही थी ॥१–८॥

[४]

थोवन्तरेँ वल-णारायणेहिँ । खेमञ्जलि-पट्टणु दिट्ठु तेहिँ ॥१॥
अरिदमणु णराहिउ वसइ जेत्थु । अइचण्डु पयण्डु ण को वि तेत्थु ॥२॥
रज्जेसरु जो सव्वहँ वरिट्ठु । सो पहु पहियाह मि मूलेँ दिट्ठु ॥३॥
णह-भासुरु जो लङ्गूल-दीहु । सो मायङ्गेहि मि लइउ सीहु ॥४॥
जो दुद्दम-दाणव - सिमिर-चूरु । सो तिय-मुहयन्दहोँ तसइ सूरु ॥५॥
ज रायहँ त छत्तह मि छित्तु । ज सुहडहँ त कुहुह मि चित्तु ॥६॥
तहोँ णयरहोँ थिउ अवरुत्तरेण । उज्जाणु अद्ध - कोसन्तरेण ॥७॥
सुरसेहरु णामेँ जगेँ पयासु । ण अग्घ-विहत्थउ थिउ वलासु ॥८॥

घत्ता

तहिँ तेहएँ उववणेँ णव-तरुवर-घणेँ जहिँ अमरिन्दु रइ करइ ।
तहिँ णिलउ करेप्पिणु वे वि थवेप्पिणु लक्खणु णयरेँ पईसरइ ॥९॥

[५]

पइसन्तेँ पुर-वाहिरेँ करालु । भड-मडय-पुन्जु दीसइ विसालु ॥१॥
ससि-सङ्ख-कुन्द-हिम-दुद्ध - धवलु । हरहार - हस - सरयब्भ-विमलु ॥२॥
त पेक्खेँवि लहु हरिसिय-मणेण । गोवालु पपुच्छिय लक्खणेण ॥३॥
'इउ दीसइ काइँ महा-पयण्डु । ण णिम्मलु हिमगिरि-सिहर-खण्डु' ॥४॥
त णिसुणेँवि गोवहिँ वुत्तु एम । 'किं एह वत्त पइँ ण सुअ देव ॥५॥
अरिंदमण-धीय जियपउम-णाम । भड-थड-सघारणि जिह दुणाम ॥६॥

[४] थोड़ी दूरपर राम-लक्ष्मणको क्षेमंजली नगर दीख पड़ा। उसमें अरिदमन नामक राजा रहता था। उसके समान प्रचण्ड वहाँ दूसरा कोई व्यक्ति नहीं था। वह राजेश्वर, सबमें श्रेष्ठ था। रास्तागीरों तककी बात भाँप लेनेमें वह समर्थ था। वह सिंहकी तरह, नखोंसे भास्वर, लंगूलदीहु (लम्बी पूँछ और हथियार विशेषसे सहित) था। सिंह मातंगों (हाथियोंसे) अग्राह्य होता है, पर वह राजा मातंग (लक्ष्मीके अंगों) से ग्राह्य था। अर्थात् लक्ष्मी उसे प्राप्त थी। पर दुर्दम दानव-समूहको चूरनेवाला वह स्त्रियोंके मुख-चन्द्रको सतानेके लिये सूर्य था। जैसे वह राजाओंसे, वैसे ही छत्रोंसे स्पृष्ट था। और जैसे सुभटोंसे वैसे ही उड्ड (गहना विशेष) से भूषित था। उस नगरसे, वायव्य कोणमें आधे कोसकी दूरी पर, सुरशेखर नामसे जगत्‌में प्रसिद्ध एक उद्यान था, मानो वह उद्यान बलभद्र रामके लिए हाथोंमें अर्घ लेकर खड़ा था। नये वृक्षोंसे सघन उस उपवनमें देवेन्द्र क्रीड़ा करता था। लक्ष्मणने वहीं घर बनाया। और राम-सीताको वहीं ठहराकर उसने उस नगरमें प्रवेश किया ॥१–६॥

[५] घुसते ही उसे नगरके बाहर भटोंका भयङ्कर और विशाल, शव-समूह मिला। वह ढेर शशि, शंख, कुन्द, हिम तथा दूधकी तरह सफेद; हर, हार, हंस और शरद् मेघकी तरह स्वच्छ था। उसे देखकर, हर्षितमन होकर लक्ष्मणने एक गोपालसे पूछा, "यह महाप्रचण्ड क्या दिखाई दे रहा है? यह ऐसा लगता है मानो हिमालयके निर्मल शिखर हों।" यह सुनकर गोपालने उत्तर दिया, "देव, क्या आपने यह नहीं सुना, यहाँके राजा अरिदमनकी जित-पद्मा नामकी एक लड़की है, वह, महाभट समूहोंका नाश करने वाली, मानो साक्षात् डाकिनी है। वह आज भी वर-कुमारी है,

सा अज्ज वि अच्छइ वर-कुमारि । पच्चक्ख णाइँ आइय कु-मारि ॥७॥
तहेँ कारणेँ जो जो मरइ जोहु । सो घिप्पइ त हड्डुइरि एहु ॥८॥

घत्ता

जो घइँ अवगण्णेँ वि तिण-समु मण्णेँ वि पञ्च वि सत्तिउ धरइ णरु ।
पडिवक्ख-विमद्दणु णयणाणन्दणु सो पर होसइ ताहेँ वरु' ॥९॥

[६]

त वयणु सुणेप्पिणु दुण्णिवारु । रोमञ्चिउ खणेँ लक्खण-कुमारु ॥१॥
वियड-प्पय-छोहेँ हिँ पुणु पयट्टु । ण केसरि मयगल-मइय-वट्टु ॥२॥
कत्थइ कप्पद्दुम दिट्ठ तेण । णं पन्थिय थिय णयरासएण ॥३॥
कत्थइ मालइ कुसुमइँ खिवन्ति । सीस व सुकइहेँ जसु विक्खिरन्ति ॥४॥
कत्थइ लक्खइ सरवर विचित्त । अवगाहिय सीयल जिह सुमित्त ॥५॥
कत्थइ गोरसु सव्वहँ रसाहुँ । ण णिग्गउ माणु हरेवि ताहुँ ॥७॥
कत्थइ आवाह डज्झन्ति केम । दुज्जण-दुव्वयणेँ हिँ सुयण जेम ॥७॥
कत्थइ अरहट्ट भमन्ति केम । ससारिय भव-संसारेँ जेम ॥८॥
ण धउ हक्कारइ 'एहि एहि । भो लक्खण लहु जियपउम लेहि' ॥९॥

घत्ता

वारुब्भड-वयणें दीहिय-णयणें देउल दाढा-भासुरेँण ।
ण गिलिउ जणद्दणु असुर-विमद्दणु एन्तउ णयर-णिसायरेँण ॥१०॥

[७]

पायार-भुएँहिँ पुरणाइँ तेण । अवरुण्डिउ लक्खणु णाइँ तेण ॥१॥
कत्थइ कुम्भा सहु णाडएहिँ । णं णड णाणाविह णाडएहिँ ॥२॥

मानो वह धरती पर प्रत्यक्ष मौत बनकर ही आई है। जो योधा उसके लिए अपनी जान गँवाता है, उसे इस हड्डियोंके पहाड़में डाल देते है। जो सुभट अपनी उपेक्षा करते हुए, प्राणोंको तिनकेके बराबर समझकर, पाँचों ही शक्तियोंको धारण कर लेगा, शत्रु-संहारक और नेत्रोंके लिए आनन्ददायक वह, उसका वर होगा" ॥ १-९ ॥

[६] यह वचन सुनकर दुर्निवार लक्ष्मणको एक क्षणमे रोमांच हो आया। विकट क्षोभसे भरकर वह नगरमे ऐसे प्रविष्ट हुआ मानो मत्तगजके संहारक सिंहने ही प्रवेश किया हो। कही उसने कल्प वृक्षोंको इस तरह देखा मानो नगरकी आशासे पथिक ही ठहर गये हो। कही मालतीसे फूल झड़ रहे थे, मानो शिष्य ही सुकविका यश फैला रहे थे। कहीं पर विचित्र सरोवर दीख पड़ रहे थे। जो अवगाहन करनेसे अच्छे मित्रकी तरह शीतल थे। कही पर सब रसोका गोरस था मानो वह उनका मान हरण करते ही निकल आया हो। कही पर ईखके खेत ऐसे जलाये जा रहे थे मानो दुर्जन सज्जनको सता रहा हो। कहीं पर अरहट ऐसे घूम रहे थे जैसे जीव भवरूपी चक्रमे घूमते रहते है। हिलती डुलती पताका मानो लक्ष्मणसे कह रही थी,—"हे लक्ष्मण, आओ आओ और शीघ्र ही जितपद्माको ले लो", आते हुए असुरसंहारक लक्ष्मणको नगररूपी निशाचरने मानो लील लिया। द्वारही उसका विकट मुख था, वापिकाएँ नेत्र थीं, और देवकुलरूपी डाढोंसे वह भयङ्कर था ॥ १-९ ॥

[७] अथवा उस नगररूपी कोतवालने अपनी प्राकार की भुजाओंसे लक्ष्मणको रोक लिया। (अर्थात् उसने नगरके परकोटेके भीतर प्रवेश किया)। कहीं पर रस्सियोंके साथ घड़े थे, कहीं मानो नाना नाटकोंके साथ नट थे। कहीं पर विशुद्ध वंशवाले

कत्थइ वसारि समुद्ध-वस । णाइव सु-कुलीण विशुद्ध-वस ॥३॥
कत्थइ धय-वड णच्चन्ति एम । वरि अम्हि सुरायर सग्गें जेम ॥४॥
कत्थइ लोहारेंहिँ लोहखण्डु । पिट्टिज्जइ णरएँ व पावपिण्डु ॥५॥
त हट्टमग्गु मेल्लॅवि कुमारु । णिविसेण पराइउ रायवारु ॥६॥
पडिहारु वुत्तु 'कहि गम्पि एम । वरु वुच्चइ आइउ एक्कु देव ॥७॥
जियपउमहें माण-मरट्ट-दलणु । पर-वल-मसक्कु दरियारि-दमणु ॥८॥
रिउ-सघायहों सघाय-करणु । सहुँ सत्तिहिँ तुज्झु वि सत्ति-हरणु ॥९॥

घत्ता

(अह) कि वहुए जम्पिएँण णिप्फल-चविएँण एम भणहि तं अरिदमणु ।
दस-वीस ण पुच्छइ सउ वि पडिच्छइ पञ्चहॅ सत्तिहिँ को गहणु' ॥१०॥

[८]

तं णिसुणेवि गउ पडिहारु तेत्थु । सह-मण्डवें सो अरिदमणु जेत्थु ॥१॥
पणवेप्पिणु वुच्चइ तेण राउ । 'परमेसर विण्णत्तिएँ पसाउ ॥२॥
भडु कालें चोइउ आउ इक्कु । ण मुणहुँ किं अक्कु मियङ्कु सक्कु ॥३॥
किं कुसुमाउहु अतुलिय-पयाउ । पर पञ्च वाण णउ एक्कु चाउ ॥४॥
तहों णरहों णवल्ली भङ्गि का वि । फिट्टइ ण लच्छि अङ्गहों कयावि ॥५॥
सो चवइ एम जियपउम लेमि । किं पञ्चहिँ दस सत्तिउ धरेमि ॥६॥
त णिसुणॅवि पभणइ सत्तुदमणु । 'पेक्खमि कोकहि वरइत्तु कवणु' ॥७॥
पडिहारें सहिउ आउ कण्हु । जयलच्छि-पसाहिउ जुज्झ-तण्हु ॥८॥

घत्ता

अच्चुब्भड-वयणेंहिँ दीहर-णयणेंहिँ णरवइ-विन्दहिँ दुज्जएहिँ ।
लक्खिज्जइ लक्खणु एन्त स-लक्खणु जेम मइन्दु महागएँहिँ ॥९॥

सुकुलीनोंकी भाँति उत्तम वंशके हाथी थे। कहीं पर ध्वज-पताकाएँ ऐसी फहरा रही थीं मानो वे स्वर्गके देव-समूहकी तरह अपनेको भी ऊपर समझ रही हों। कहीं पर लोहार लोहखंडको उसी प्रकार पीट रहे थे जिस प्रकार पापी नरकमे पीटे जाते है। वाजारके मार्गको छोड़कर लक्ष्मण राज्यद्वारके निकट पहुँच गया। तब प्रतिहारने टोककर पूछा, "इस प्रकार कहाँ जाओगे"। इस पर कुमारने कड़ककर कहा, "जाओ और राजासे कहो कि जितपद्माका मान जीतनेवाला आ गया है। पर-बलका संहारक, गर्वितशत्रुका दमनकर्ता, रिपु-समूहका घातक तथा शक्तियो सहित अरिदमनका भी हरण करनेवाला एक देव आया है। अथवा बहुत कहने से क्या? उस राजासे कहना कि मै दस वीसकी वात तो कौन पूछे (कमसे कम) सौ शक्तिको पानेकी इच्छा रखता हूँ। पाँच शक्तियोका ग्रहण करनेसे क्या होगा" ॥ १–९ ॥

[८] यह सुनकर प्रतिहार, मण्डपमे आसनपर बैठे हुए राजाके पास गया। प्रणाम करके उसने निवेदन किया, "परमेश्वर, विज्ञप्तिसे प्रसन्न हो। यमसे प्रेरित एक योधा आया है, मै नहीं जानता कि वह चन्द्र है या इन्द्र, या अतुलित प्रतापी कामदेव है। पर उसके पास पाँच वाण है और एक धनुप नही है। उस नरकी कोई अनोखी ही भंगिमा है कि उसके शरीरके एक भी अंगकी शोभा नष्ट नही होती। वह कहता है कि मै जितपद्माको लेकर रहूँगा। इन पाँच शक्तियोको क्या लूँ?" यह सुनकर राजा अरिदमनने आवेशमे कहा, "वुलाओ, देखूँ कौन-सा आदमी है।" तव प्रतिहारके पुकारने पर, जय-लक्ष्मीको प्रसन्न करने-वाला, युद्धका प्यासा कुमार लक्ष्मण भीतर आया। भयङ्कर मुख, दीर्घनेत्र वहुतसे अजेय नर-पतियोने सुलक्षण लक्ष्मणको आते हुए ऐसे देखा मानो महागज सिंहको देख रहे हो ॥ १–९ ॥

[९]

लक्खणु पासु पराइउ ज जे । वुत्तु णिवेण हसेप्पिणु तं जे ॥१॥
'को जियपउम लएवि समत्थु । केण हुवासणेँ ढोइउ हत्थु ॥२॥
केण सिरेण पडिच्छिउ वज्जु । केण कियन्तु वि घाइउ अज्जु ॥३॥
केण णहङ्गणु छित्तु करग्गें । केण सुरिन्दु परज्जिउ भोग्गें ॥४॥
केण वसुन्धरि दारिय पाए । केण पलोट्टिउ दिग्गउ घाए ॥५॥
केण सुरेहहोँ भग्गु विसाणु । केण तलप्पएँ पाडिउ भाणु ॥६॥
लङ्घिउ केण समुद्दु असेसु । के फण-मण्डवें चूरिउ सेसु ॥७॥
केण पहञ्जणु वद्धु पडेण । मेरु-महागिरि टालिउ केण ॥८॥

घत्ता

जिह तुहुँ तिह अण्ण वि णीसावण्ण वि गरुयहँ गज्जिय वहुय णर ।
महु सत्ति-पहारेँहिँ रणेँ दुव्वारेँहिँ किय सय-सक्कर दिट्ठ पर' ॥९॥

[१०]

अरिदमणें भड्डु ज अहिखित्तु । महुमहु जेम दवग्गि पलित्तु ॥१॥
'हउँ जियपउम लएवि समत्थु । मइँ जि हुआसणेँ ढोइउ हत्थु ॥२॥
मइँ जि सिरेण पडिच्छिउ वज्जु । मइँ जि कियन्तु वि घाइउ अज्जु ॥३॥
मइँ जि णहङ्गणु छित्तु करग्गें । मइँ जि सुरिन्दु परज्जिउ भोग्गें ॥४॥
मइँ जि वसुन्धरि दारिय पाए । मइँ जि पलोट्टिउ दिग्गउ घाए ॥५॥
मइँ जि सुरेहहोँ भग्गु विसाणु । मइँ जि तलप्पएँ पाडिउ भाणु ॥६॥
लङ्घिउ मइँ जि समुद्दु असेसु । मइँ फण-मण्डवेँ चूरिउ सेसु ॥७॥
मइँ जि पहञ्जणु वद्धु पडेण । मेरु महागिरि टालिउ जेण ॥८॥

घत्ता

हउँ तिहुअण-डामरु हउँ अजरामरु हउँ तेत्तीसहुँ रणेँ अजउ ।
खेमञ्जलि-राणा अवुह अयाणा मेल्लि सत्ति जइ सत्ति तउ' ॥९॥

[९] लक्ष्मणके निकट आने पर अरिदमनने हँसकर कहा, "अरे जितपद्माको कौन ले सकता है, आगको हाथसे किसने उठाया, किसने सिर पर वज्रकी इच्छा की, कृतान्तको आज तक किसने मारा? अंगुलीसे आकाशको कौन छेद सका है, भोगमे इन्द्रको किसने पराजित किया, कौन पैरसे धरतीका दलन कर सका। आघातसे मृगेन्द्रको कौन गिरा सका ? ऐरावतके दाँत किसने उखाड़े, सूर्यको तल पर किसने गिराया, अशेष समुद्रको कौन बाँध सका, धरणेन्द्रके फनको कौन चूर-चूर कर सका, हवाको कपड़ेसे कौन बाँध सका, मंदराचलको कौन टाल सका ? तुम्हारी ही तरह और भी बहुतसे युवक अपनेको असाधारण बताकर यहाँ गरजे थे पर युद्धमे दुर्धर मेरी शक्तियोंने अपने प्रहारोंसे उनके सौ सौ टुकड़े कर दिये" ॥१-९॥

[१०] अरिदमनने जब सुभट लक्ष्मण पर इस प्रकार आक्षेप किया तो वह दावानलकी तरह भड़क उठा, उसने कहा, "मै जितपद्माको लेनेमे समर्थ हूँ, मैने हाथ पर आग उठाई है, मैंने सिर पर वज्र झेला है, मै आज भी कृतान्तका घात कर सकता हूँ, मैने अँगुलीसे आकाशमें छेद किया है, मैंने भोगमे इन्द्रको पराजय दी है, धरतीको मैने पैरोंसे चॉपा है, मैने आघातसे गजको भूमिसात् किया है, मैने ऐरावत हाथीका दाँत उखाड़ा है, मैंने सूर्यको तल पर गिराया है, मैने अशेष समुद्रका उल्लंघन किया है, मैने धरणेन्द्रके फनको चूर-चूर किया है, वस्त्रसे मैने हवाको बाँधा है, मैं वही हूँ जिसने मेरुपर्वतको भी टाल दिया। मै तीनों भुवनोंमे भयंकर हूँ। मै अजर अमर हूँ, तेतीस करोड़ देवोंके रणमे अजेय हूँ। क्षेमंजलिराज, तुम अपंडित और अज्ञानी हो, यदि तुममें शक्ति हो तो अपनी शक्ति मुझ पर छोड़ो" ॥१-९॥

[११]

तं णिसुणेँवि खेमञ्जलि-राणउ । उट्ठिउ गलगज्जन्तु पहाणउ ॥१॥
सत्ति-विहत्थउ सत्ति-पगासणु । धगधगधगधगन्तु स-हुआसणु ॥२॥
अम्बरेँ तेय-पिण्डु णउ दिणयरु । णिय-मज्जाय-चत्तु णउ सायरु ॥३॥
जणेँ अणवरय-दाणु णउ मयगलु । परमण्डल-विणासु णउ मण्डलु ॥४॥
रामायणहोँ मज्झेँ णउ रामणु । भीम-सरीरु ण भीमु भयावणु ॥५॥
तेण विमुक्क सत्ति गोविन्दहोँ । ण हिमवन्तें गङ्ग समुद्दहोँ ॥६॥
धाइय धगधगन्ति समरङ्गणेँ । ण तडि तडयडन्ति णह-अङ्गणेँ ॥७॥
सुरवर णहेँ वोल्लन्ति परोप्परु । 'एण पहारें जीवइ दुक्करु' ॥८॥

घत्ता

एत्थन्तरेँ कण्हें जय-जस-तण्हें धरिय सत्ति दाहिण करेण ।
सकेयहोँ ढुक्की थाणहोँ चुक्की णावइ पर-तिय पर-णरेण ॥९॥

[१२]

धरिय सत्ति ज समरेँ समत्थें । मेल्लिउ कुसुम-वासु सुर-सत्थें ॥१॥
पुण्णिम-इन्दु-रुन्द - मुह - सोमहेँ । केण वि कहिउ गम्पि जियपोमहेँ ॥२॥
'सुन्दरि पेक्खु पेक्खु जुज्झन्तहोँ । णोखी का वि भङ्गि वरइत्तहोँ ॥३॥
जा तउ ताए सत्ति विसज्जिय । लग्ग हत्थेँ असइ व्वालज्जिय ॥४॥
णर-भमरेण एण अकलङ्कउ । पर चुम्बेवउ तुह मुह-पङ्कउ' ॥५॥
त णिसुणेप्पिणु विहसिय-वयणएँ । णव-कुवलय-दल - दीहर-णयणएँ ॥६॥
जाल-गवक्खएँ जो अन्तर-पट्ठु । णाइँ सहत्थें फेडिउ मुह-वडु ॥७॥
लक्खणु णयण-कडक्खिउ कण्णएँ । ण जुज्झन्तु णिवारिउ सण्णएँ ॥८॥
ताम कुमारें दिट्ठु सुदसणु । धवलहरम्बरेँ मुह-मयलञ्छणु ॥९॥
सुह-णक्खत्तेँ सुजोग्गे सुहङ्करु । णयणामेलउ जाउ परोप्परु ॥१०॥

[११] यह सुनते ही क्षेमंजलि-राज गरजकर उठा, कुछ शक्तियोंको प्रकाशित करता और कुछ को हाथमें लिये हुए वह धक-धककर रहा था। वह ऐसा लगता था मानो आकाशमे तेजपिंड सूर्य हो, या मर्यादारहित समुद्र हो या अनवरत मद झरता हुआ महागज हो। या परमण्डलका नाश करनेवाला मांडलिक राजा हो, या रामायणके बीचमे रावण हो। या भीम शरीरवाला भीम ही हो। उसने तब लक्ष्मणके ऊपर उसी तरह शक्ति फेंकी जिस तरह हिमालयने समुद्रमे गंगा प्रक्षिप्त की। वह शक्ति धकधकाती हुई समरांगणमे इस तरह दौड़ी मानो नभमे तड़-तड़ करती बिजली ही चमक उठी हो। (यह देखकर) देवता आकाशमे यह बातें करने लगे कि अब इसके आघातसे लक्ष्मणका बचना कठिन है। परन्तु यश और जयके लोभी लक्ष्मणने अपने दाहिने हाथमें उस शक्तिको उसी तरह धारण कर लिया जिस तरह संकेतसे चूकी हुई परस्त्रीको पर-पुरुष पकड़ लेता है ॥१–९॥

[१२] लक्ष्मणके युद्धमे शक्तिके झेलते ही सुरसमूह पुष्प-वर्षा करने लगा। किसीने जाकर पूर्ण चन्द्रमुखी जितपद्मासे कहा, "सुंदरी, सुंदरी, लड़ते हुए लक्ष्मणकी अनोखी भंगिमा तो देखो, तातने जो शक्ति छोड़ी थी वह असती स्त्रीकी तरह लक्ष्मणसे जा लगी। यह नररूपी भ्रमर तुम्हारे मुख-कमलको अवश्य चूमेगा।" यह सुनकर नव-कमलकी तरह दीर्घनयन, विहँसितमुख उसने अपने मुखपटकी तरह, जालीदार झरोखेके अन्तःपटको हटाकर लक्ष्मणको अपने नेत्र-कटाक्षसे देखा मानो उसने संकेतसे लड़ते हुए उसे निवारण किया हो, इतने मे ही कुमारने भी धवलगृहके आकाशमे सुदर्शन मुखचन्द्र देखा। इस तरह शुभ नक्षत्र और सुयोगमे उन दोनोकी ऑखोका परस्पर शुभङ्कर मिलाप हो गया।

घत्ता

एत्थन्तरें दुट्ठें मुक्कारुट्ठें लहु अण्णेक्क सत्ति णरेंण।
स वि धरिय सरग्गे वाम-करग्गें णावइ णव-वहु णव-वरेंण ॥११॥

[१३]

अण्णेक्क मुक्क वहु-मच्छरेण । वज्जासणि णाइँ पुरन्दरेण ॥१॥
स हि दाहिण-कक्खहिँ छुद्ध तेण । अवरुण्डिय वेस व कामुएण ॥२॥
अण्णेक्क विसज्जिअ धगधगन्ति । णं सिहि-सिह जाला-सय मुअन्ति ॥३॥
स वि धरिय एन्ति णारायणेण । वामद्धें गोरि व तिणयणेण ॥४॥
ण महिहरु देवइणन्दणेण । पञ्चमिय मुक्क वहु-मच्छरेण ॥५॥
पम्मुक्क पधाइय णरवरासु । ण कन्त सुकन्तहों सुहयरासु ॥६॥
स विसाणेँ हिँ एन्ति णिरुद्ध केम । णव-सुरय-समागमेँ जुवइ जेम ॥७॥
एत्थन्तरें देवहिँ लक्खणासु । सिरें मुक्क पडीवउ कुसुम-वासु ॥८॥
अरिदमणु ण सोहइ सत्ति-हीणु । खल-कुपुरिसु व्व थिउ सत्ति-हीणु ॥९॥

घत्ता

हरि रोमञ्चिय-तणु सहइ स-पहरणु रण-मुहेँ परिसक्कन्तु किह ।
रत्तुप्पल-लोयणु रस-वस-भोयणु पञ्चाउहु वेयालु जिह ॥१०॥

[१४]

समरङ्गणेँ असुर - परायणेण । अरिदमणु वुत्तु णारायणेण ॥१॥
'खल खुद्द पिसुण मच्छरिय राय । मइँ जेम पडिच्छिय पञ्च घाय ॥२॥
तिह तुहु मि पडिच्छहि एक्क सत्ति । जइ अत्थि का वि मणेँ मणुस-सत्ति' ॥
किर एम भणेप्पिणु हणइ जाम । जियपउमएँ घत्तिय माल ताम ॥४॥

इसी बीचमें उस दुष्ट और क्रोधी अरिदमनने एक और शक्ति लक्ष्मणके ऊपर छोड़ी परंतु लक्ष्मणने उसे भी वायें हाथमें वैसे ही ले लिया जैसे नया वर नई दुलहिनको ले लेता है ॥१-६॥

[१३] तब उसने इन्द्रके वज्रकी भाँति एक और शक्ति छोड़ी उसने उसे भी दाहिनी काखमें ऐसे ही चाप लिया जैसे कामुक वेश्याको आलिंगनबद्ध कर लेता है। राजाने एक और शक्ति छोड़ी जो धक-धक करती हुई बालशिखाकी तरह सैकड़ों लपटें उगलने लगी। लक्ष्मणने आती हुई उसे वैसे ही धारण कर लिया, जैसे शिवजीने पार्वतीको अपने वायें अर्द्धांगमें धारण कर लिया था। तब अत्यंत मत्सरसे भरकर देवकीपुत्र राजा अरिदमनने पाँचवीं शक्ति विसर्जित की। वह भी नरश्रेष्ठ लक्ष्मणके पास इस तरह दौड़ी मानो कांता ही अपने सुभगराशि कांतके पास जा रही हो। किंतु कुमार लक्ष्मणने उसे भी अपने दाँतोंसे वैसे ही रोक लिया, पति जैसे सुहागरातमें आती हुई युवतीको रोक लेता है। तब देवोंने पुन. लक्ष्मणपर फूल बरसाये। शक्तिसे हीन होकर राजा अरिदमन बिलकुल भी नहीं सोह रहा था। तब वह शक्तिहीन दुष्ट पुरुष की तरह स्थित हो गया। पुलकितशरीर युद्धस्थलमें इधर-उधर दौड़ता हुआ सशस्त्र लक्ष्मण वैसे ही सोह रहा था, जैसे रक्तकमलकी तरह नेत्रवाला, रसमज्जाका भोजी पंचायुध वेताल शोभित होता है ॥१-६॥

[१४] समरांगणसे असुरोंको पराजित करनेवाले लक्ष्मणने अरिदमनसे कहा, "खल, क्षुद्र, दुष्ट, नीच ईर्ष्यालु राजन्! जिस तरह मैंने तेरे पाँच आघात झेले। उसी तरह यदि तेरे मनमें थोड़ी भी मनुष्यशक्ति हो तो मेरी एक शक्ति झेल। यह कहकर कुमार लक्ष्मण जब तक मारने लगा तब तक जितपद्माने उसके गलेमें

'भो साहु साहु रणेँ दुण्णिरिक्ख । म पहरु देव दइ जणण-भिक्ख ॥५॥
जें समरेँ परज्जिउ सत्तुदमणु । पइँ मुएँ वि अण्णु वरइत्तु कवणु' ॥६॥
त वयणु सुणेप्पिणु लक्खणेण । आउद्धइँ घित्तइँ तक्खणेण ॥७॥
मुक्काउहु गउ अरिदमण-पासु । सहसक्खु व पणविउ जिणवरासु ॥८॥

घत्ता

'ज अमरिस-कुद्धे जय-जस-लुद्धें विप्पिउ किउ तुम्हेहिँ सहुँ ।
अण्णु वि रेकारिउ कह वि ण मारिउ त मरुसेज्जहि माम महु' ॥९॥

[१५]

खेमञ्जलिपुर - परमेसरेण । सोमित्त वुत्तु रज्जेसरेण ॥१॥
'किं जम्पिएण वहु-अमरिसेण । लइ लइय कण्ण पइँ पउरिसेण ॥२॥
तुहुँ दीसहि दणु-माहप्प-चप्पु । कहेँ कवणु गोत्तु का माय वप्पु' ॥३॥
महुमहणु पवोल्लिउ 'णिसुणि राय । महु दसरहु ताउ सुमित्ति माय ॥४॥
अण्णु वि पयडउ इक्खक्कु वसु । वड्ढारउ जिह तरुवरहोँ वसु ॥५॥
वे अम्हइँ लक्खण-राम भाय । वणवासहोँ रज्जु मुएवि आय ॥६॥
उज्जाणेँ तुहारएँ असुर-मद्दु । सहुँ सीयएँ अच्छइ रामभद्दु' ॥७॥
वयणेण तेण कण्टइउ राउ । सचल्लु णवर साहण-सहाउ ॥८॥

घत्ता

जण-मण-परिओसें तूर-णिघोसें णरवइ कहि मि ण माइयउ ।
जहिँ रामु स-भज्जउ वाहु-सहेज्जउ त उद्देसु पराइयउ ॥९॥

[१६]

एत्थन्तरेँ पर-वल-भड-णिसामु । उट्ठिउ जण-णिवहु णिएवि रामु ॥१॥
करेँ धणुहरु लेइ ण लेइ जाम । सकलत्तउ लक्खणु दिट्ठु ताम ॥२॥

माला डाल दी और वह बोली, "हे रणमें दुर्दर्शनीय, साधु-साधु, प्रहार मत करो, पिताकी भीख दो मुझे। तुमने युद्धमे अरि-दमनको जीत लिया। तुम्हें छोड़कर और कौन मेरा पति हो सकता है।" यह सुनकर लक्ष्मणने तुरंत अपने हथियार डाल दिये। और अरिदमनके पास जाकर उसने वैसे ही उसको प्रणाम किया जैसे इन्द्र जिनको प्रणाम करता है। उसने कहा—"अमर्प और क्रोधसे, तथा यश और जयके लोभसे मैंने आपके साथ बुरा-वर्ताव किया है और भी 'रे' कहकर बुलाया। किसी तरह मारा भर नहीं। हे मामा (ससुर) वह क्षमा कर दीजिए।" ॥१–९॥

[१५] तव क्षेमंजलिका राज-राजेश्वर अरिदमन बोला, "वहुत अमर्पपूर्ण प्रलापसे क्या, तुमने अपने पौरुपसे कन्या ले ली। तुम दानवोंके माहात्म्यको चॉपनेवाले दिखाई देते हो, बताओ तुम्हारा गोत्र क्या है? माँ और बाप कौन है?" इसपर लक्ष्मण वोला, "सुनिये राजन्! दशरथ मेरे पिता है और सुमित्रा माँ। और भी मेरा प्रसिद्ध इक्ष्वाकु कुल तरुवरके वंशकी तरह बड़ा है। हम राम और लक्ष्मण दो भाई हैं, जो राज्य छोड़कर वनवासके लिए आये है। असुरसंहारक भद्र राम सीता देवीके साथ तुम्हारे उद्यानमे ठहरे है।" यह सुनकर राजा पुलकित हो उठा और सेनाको लेकर चल पड़ा। जनोंके मनके परितोप और तूर्यके निर्घोपसे वह नरपति अपने तईं नही समा सका। शीघ्र ही वह उस स्थान पर जा पहुँचा जहाँ अपने ही बाहुओका भरोसा करने-वाले राम अपनी पत्नीके साथ थे ॥१–९॥

[१६] यहाँ भी शत्रु-सेनाके सुभटोका संहार करनेवाले राम जनसमूहको देखकर उठे। जव तक वह अपने हाथमे धनुप ले या न ले तव तक उन्होंने स्त्रीसहित लक्ष्मणको आते देखा।

सुरवइ व स-भज्जउ रहें णिविट्ठु । अण्णेक्कु पासें अरिदमणु दिट्ठु ॥३॥
सन्दणहों तरेप्पिणु दुण्णिवारु । रामहों चलणें हिँ णिवडिउ कुमारु ॥४॥
जियपउम स-विब्भम पउम-णयण । पउमच्छि पफुल्लिय-पउम-वयण ॥५
पउमहों पय-पउमें हिँ पडिय कण्ण । तेण वि सु-पसत्थासीस दिण्ण ॥६॥
एत्थन्तरें मामें ण किउ खेउ । कणय-रहें चडाविउ रामएउ ॥७॥
पड्डु पडह पहय किय-कलयलेहिँ । उच्छाहेंहिँ धवलेंहिँ मङ्गलेहिँ ॥८॥

घत्ता

रहें एक्कें णिविट्ठइँ णयरें पइट्ठइँ सीय-वलइँ वलवन्ताइँ ।
णारायणु णारि वि थियइँ चयारि वि रज्जु स इं भु ञ्ज न्त इँ ॥९॥

[३२. वत्तीसमो संधि]

हलहर-चक्कहर परचक्क-हर जिणवर-सासणें अणुराइय ।
मुणि-उवसग्गु जहिँ विहरन्त तहिँ वसत्थलु णयरु पराइय ॥

[१]

ताम विसन्थुलु पाणक्कन्तउ । दिट्ठु असेसु वि जणु णासन्तउ ॥१॥
दुम्मणु दीण-वयणु विद्दाणउ । गउ विच्छित्त व गलिय-विसाणउ ॥२॥
पण्णय-णिवहु व फणिमणि-तोडिउ । गिरि-णिवहु व वज्जासणि-फोडिउ ॥३॥
पङ्कय-सण्डु व हिम-पवणाहउ । उब्भड-वयणु समुब्भिय-वाहउ ॥४॥
जणवउ ज णासन्तु पदीसिउ । राहवचन्दें पुणु मम्भीसिउ ॥५॥
'थक्कहों म मज्जहों म भज्जहों । अभउ अभउ भउ सयलु विवज्जहों'॥६॥
ताम दिट्ठु ओखण्डिय-माणउ । णासन्तउ वसत्थल - राणउ ॥७॥

इन्द्रकी भाँति वह पत्नीके साथ रथपर आरूढ़ था। उसके निकट दूसरा अरिदमन था। (रामको देखते ही) दुर्निवार कुमार लक्ष्मण उनके चरणोंपर गिर पड़ा। खिले हुए कमलकी तरह मुख-वाली कमलनयनी कन्या जितपद्मा विलासके साथ रामके चरण-कमलोपर नत हो गई। उन्होंने भी उसे प्रशस्त आशीर्वाद दिया। इतनेमे मामाने (ससुरने) जरा भी देर नही की। उसने रामदेवको सोनेके रथ पर बैठाया। पटु पटह बज उठे। कलकल ध्वनि और धवल तथा मंगल गीतोके साथ, एक ही रथमे बैठकर बलवंत राम और सीताने नगरमे प्रवेश किया। ऐसे मानो वे विष्णु और लक्ष्मी हों। वे चारो इस तरह राज्यका उपभोग करते हुए वही रहने लगे॥ १-९॥

बत्तीसवीं संधि

जिनशासनमे अनुरक्त, दूसरेके चक्रका हरण करनेवाले वे दोनो राम और लक्ष्मण वहाँसे चलकर उस वंशस्थल नगरमे पहुँचे जहाँ मुनियो पर उपसर्ग हो रहा था।

[१] वह नगर जैसे सिसक रहा था, उन्होने देखा सारे जन नष्ट हो रहे है, दुर्मन, दीनमुख और विद्रूप वे लोग दन्तहीन हाथीकी तरह एकदम कान्तिहीन हो उठे थे। वह जनपद वैसे ही नष्ट हो रहा था जैसे, फणमणि तोड़ लेनेपर सर्पराज, वज्रसे विदीर्ण पर्वतसमूह और हिमपवनसे आहत होकर कमलसमूह नष्ट हो जाता है। हाथ उठाये और मुँह ऊपर किये हुए उन्हें देखकर, रामने यह अभय वचन दिया, "ठहरो ठहरो, भागो मत।" इतने ही मे उन्हे वंशस्थलका गलितमान राजा दीख पड़ा। उसने कहा,

तेण वुत्तु 'म णयरेँ पईसहों । तिण्णिमि पाण लएप्पिणु णासहों ॥८॥

घत्ता

एत्तिउ एत्थु पुरेँ गिरिवर-सिहरेँ जो उट्ठइ णाउ भयङ्करु ।
तेण महन्तु डरु णिवडन्ति तरु मन्दिरइँ जन्ति सय-सक्करु ॥६॥

[२]

एँउ दीसइ गिरिवर-सिहरु जेत्थु । उवसग्गु भयङ्करु होइ तेत्थु ॥१॥
वाओलि धूलि दुव्वाइ एइ । पाहण पडन्ति महि थरहरेइ ॥२॥
धर भमइ समुट्ठइ सीह णाउ । वरसन्ति मेह णिवडइ णिहाउ ॥३॥
तें कज्जें णासइ सयलु लोउ । म तुम्ह वि उट्ठु उवसग्गु होउ' ॥४॥
त णिसुणेवि सीय मणें कम्पिय । भीय-विसन्थुल एव पजम्पिय ॥५॥
'अम्हहुँ देसें देसु भमन्तहुँ । कवणु पराहउ किर णासन्तहुँ' ॥६॥
त णिसुणेवि भणइ दामोयरु । 'वोल्लिउ काइँ माएँ पइँ कायरु ॥७॥
विहि मि जाम करेँ अतुल-पयावइँ । सायर - वज्जावत्तइँ चावइँ ॥८॥
जाम विहि मि जय-लच्छि परिट्ठिय । तोणीरहिँ णाराय अहिट्ठिय ॥६॥
ताम माएँ तुहुँ कहोँ आसङ्कहि । विहरु विहरु मा मुहु ओवङ्कहि ॥१०॥

घत्ता

धीरेँ वि जणय-सुय कोवण्ड-भुय सचल्ल वे वि वल-केसव ।
सग्गहोँ अवयरिय सइ-परियरिय इन्द-पडिन्द-सुरेस व ॥११॥

[३]

पहन्तरेँ भयङ्करो । झसाल - छिण्ण - कक्करो ॥१॥
वलो व्व सिङ्ग दीहरो । णियच्छिओ महीहरो ॥२॥
कहिँ जेँ भीम-कन्दरो । झरन्त-णीर - णिज्झरो ॥३॥
कहिँ जि रत्तचन्दणो । तमाल-ताल - वन्दणो ॥४॥

"नगरमे मत घुसो, नहीं तो तीनोंके प्राण चले जॉयगे। यहॉ इस नगरमे पहाड़की चोटीपर जो भयङ्कर नाद उठता है, उससे वहुत भय होता है, वड़े-वड़े पेड़ तक गिर जाते है, और प्रासाद सौ-सौ खण्ड हो जाते है" ॥१-६॥

[२] जहॉ यह विशाल पर्वत दीख पड़ता है, वहॉ भयङ्कर उत्पात हो रहा है। तूफान, धूलि और दुर्वात आ रहे है। पत्थर गिर रहे है और धरती कॉप रही है। घर घूम रहे है, वज्राघात और सिंहनाद हो रहा है। मेघ वरस रहे है। अत. समूचा नगर ही नष्ट हुआ जाता है। तुमपर भी कहीं उत्पात न हो जाय" यह सुनते ही सीता देवी अपने मनमे कॉप उठीं। वह भयकातर होकर वोलीं, "एक देशसे दूसरे देशमे घूमते और मारे-मारे फिरते हुए हम लोगोपर कौन-सा पराभव आना चाहता है।" यह सुनकर कुमार लक्ष्मणने कहा, "मॉ तुम इस तरह कायर वचन क्यो कहती हो ! जव तक वज्रावर्त और सागरावर्त धनुप हमारे हाथमे है और जव तक तूणीर और वाणोसे अधिष्ठित विजय-लक्ष्मी हमारे पास है तव तक मॉ तुम आशङ्का ही क्यों करती हो, आगे चलनेमे मुँह मत विचकाओ"। इस तरह जनकसुताको धीरज वॅधाकर और हाथमे धनुप-वाण लेकर वे लोग चल दिये। जाते हुए वे ऐसे लगते थे मानो स्वर्गसे उतरकर, इन्द्र-प्रतीन्द्र ही शचीके साथ जा रहे हो ॥१-११॥

[३] थोड़ी दूरपर उन्हें कंकड़ और पत्थरोसे आच्छन्न एक भयङ्कर पर्वत दिखाई दिया। उसके शृङ्ग (चोटी और सीग) वैलकी तरह विशाल थे। कहीं भीपण गुफाएँ थीं और कहीं पर पानी भरते हुए झरने। कहीं रक्तचंदनके वृक्ष थे और कहींपर तमाल, ताल तथा पीपलके पेड़ थे। कहीं कांतिसे रंजित मत्त मयूर

कहिँ जि दिट्ठ-छारया । लवन्त मत्त - मोरया ॥५॥
कहि जि सीह-गण्डया । धुणन्त - पुच्छ-दण्डया ॥६॥
कहिँ जि मत्त-णिब्भरा । गुलुग्गुलन्ति कुञ्जरा ॥७॥
कहि जि दाढ-भासुरा । घुरुग्घुरन्ति सूयरा ॥८॥
कहि जि पुच्छ-दीहरा । किलिकिलन्ति वाणरा ॥९॥
कहि जि थोर-कन्धरा । परिब्भमन्ति सम्वरा ॥१०॥
कहिँ जि तुङ्ग-अङ्गया । हयारि - तिक्खसिङ्गया ॥११॥
कहिँ जि आणणुण्णया । कुरङ्ग चुण्ण-कण्णया ॥११॥

घत्ता

तहिँ तेहएँ सइलेँ तरुवर-वहलेँ आरूढ वे वि हरि-हलहर ।
जाणइ-विज्जुलएँ धवलुज्जलएँ चिञ्चइय णाइँ णव जलहर ॥१२॥

[४]

पिहुल-णियम्ब - बिम्ब-रमणीयहेँ । राहउ दुम दरिसावइ सीयहेँ ॥१॥
एँहु सो धणेँ णग्गोह-पहाणु । जहिँ रिसहहोँ उप्पण्णउ णाणु ॥२॥
एँहु सो सत्तवन्तु कि न मुणिउ । अजिउ स-णाण-देहु जहिँ पथुणिउ॥२॥
एँहु सो इन्दवच्छु सुपसिद्धउ । जहिँ सभव-जिणु णाण-समिद्धउ ॥४॥
एँहु सो सरलु सहलु सभूअउ । अहिणन्दणु स-णाणु जहिँ हूअउ ॥५॥
एँहु पीयङ्गु सीएँ सच्छायउ । सुमइ स-णाणपिण्डु जहिँ जायउ ॥६॥
एँहु सो सालु सीएँ णियच्छिउ । पउमप्पहु स-णाणु जहिँ अच्छिउ ॥७॥
एँहु सो सिरिसु महद्दुमु जाणइ । णाणु सुपासेँ भणेँवि जगु जाणइ ॥८॥
एँहु सो णागरुक्खु चन्दपहेँ । णाणुप्पत्ति जेत्थु चन्दप्पहेँ ॥९॥
एँहु सो मालइरुक्खु पदीसिउ । पुप्फयन्तु जहिँ णाण-विहूसिउ ॥१०॥

घत्ता

एँहु सो पक्खतरु फल-फुल्ल-भरु तेन्दुइ-समाणु दुह-णासहुँ ।
जहिँ परिहूयाइँ सभूयाइँ सीयल-सेयसहुँ ॥११॥

थे और कहीं पर अपनी पूँछ घुमाते हुए सिंह और मेढ़े। कहीं पर मदमाते गज गुरगुरा रहे थे और कही भयङ्कर दाढ़वाले सुअर घुर-घुरा रहे थे। कहीं मोटी और लम्बी पूँछके बन्दर किल-कारी भर रहे थे। कहीं स्थूल कंधोके सांभर घूम रहे थे, कहीं लम्वे शरीर और तीखे सीगोके भैंसे थे और कहींपर ऊपर मुख किये खिन्न कानवाले हिरन थे। ऐसे उस वृक्षोंसे सघन पर्वत पर दोनो भाई (आगे बढ़ते) चले गये। अत्यन्त गोरी जानकीके साथ वे दोनो भाई ऐसे ज्ञात हो रहे थे मानो बिजलीसे अंचित मेघ ही हो ॥१-१३॥

[४] तब राम सीताको, (मोटे नितम्बो और अधरोसे रमणीय) अच्छी तरह पेड़ दिखाने लगे। उन्होंने कहा, "धन्ये, देखो वह मुख्य वटवृक्ष है जहॉ आदि तीर्थङ्कर आदिनाथको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। क्या तुम इस सत्यवंत वृक्षको जानती हो जिसके नीचे अजित केवलीकी खूब स्तुति हुई थी। और यह वह इन्द्र वृक्ष है जहॉ सम्भव-जिनने केवल ज्ञान प्राप्त किया था। यह वह सरल द्रुम है जहॉ अभिनंदन स्वामी केवलज्ञानी बने थे। यह वह सच्छाय प्रियंगु वृक्ष है जहॉ सुमतिनाथने केवलज्ञान प्राप्त किया। सीतादेवी देखो, यह वह शाल वृक्ष है जहॉ पद्मप्रभ-जिन केवलज्ञानी हुए थे और हे जानकि, यह शिरीषका महाद्रुम है जहॉ भगवान् सुपार्श्वने ध्यान धारणकर समस्त विश्वको जाना था। चन्द्रमाके समान देखो यह नाग वृक्ष है जिसके नीचे चन्द्र प्रभु भगवान्ने केवलज्ञान प्राप्त किया था। यह वह मालती वृक्ष है जहॉ पुष्पदंत ज्ञानसे विभूपित हुए थे। फल-फूलोसे लदा हुआ यह वह तेंदुकी की तरह प्लक्ष वृक्ष है जहॉ दुखनाशक शीतलनाथ और श्रेयांस भगवान्को केवलज्ञानकी उत्पत्ति हुई थी ॥१-११॥

[५]

एँह सा पाडलि सुहल सुपत्ती । वासुपुज्जँ जहिँ णाणुप्पत्ती ॥१॥
एँसु सो जम्बू एहु असत्थु । विमलाणन्तहुँ णाण-समत्थु ॥२॥
उहु दहिवण्ण-णन्दि सुपसिद्धा । धम्म-सन्ति जहिँ णाण-समिद्धा ॥३॥
उहु साहार - तिलउ दीसन्ति । कुन्थु-अरहुँ जहिँ णाणुप्पत्ति ॥४॥
एँहु सो तरु कङ्केल्लि-पहाणु । मल्लिजिणहोँ जहिँ केवल-णाणु ॥५॥
एँहु सो चम्पउ किण्ण णियच्छिउ । मुणि सुव्वउ स-णाणु जहिँ अच्छिउ॥६॥
इय उत्तिम-तरु इन्दु वि वन्दइ । जणु कज्जेण तेण अहिणन्दइ' ॥७॥
एम चवन्त पत्त वल-लक्खण । जहिँ कुलभूसण-देसविहूसण ॥८॥
दिवस चयारि अणङ्ग-वियारा । पडिमा-जोगें थक्क भडारा ॥९॥

घत्ता

वेन्तर-घोणसेँ हिँ आसीविसेँ हिँ अहि-विच्छिय-वेल्लि-सहासेँ हिँ ।
वेढिय वे वि जण सुह-लुद्ध-मण पासण्डिय जिस पसु-पासेँ हिँ ॥१०॥

[६]

ज दिट्ठु असेसु वि अहि-णिहाउ । वलएउ भयङ्करु गरुडु जाउ ॥१॥
तोणीर-पक्खु वइदेहि-चन्चु । पक्खुज्जल - सर - रोमञ्च - कन्चु ॥२॥
सोमित्ति-वियड-विप्फुरिय-वयणु । णाराय - तिक्ख - णिट्ठुरिय-णयणु ॥३॥
दोण्णि वि कोवण्डइँ कण्ण दो वि । थिउ राहउ भीसणु गरुडु होवि ॥४॥
त णयण-कडक्खेँ वि दुग्गमेहिँ । परिचिन्तिउ कज्जु भुअङ्गमेहिँ ॥५॥
'लहु णासहुँ कि णर-सगमेण । खज्जेसहुँ गरुड-विहङ्गमेण' ॥६॥
एत्थन्तरेँ विहडिय अहि मयन्ध । गय खयहोँ णाइँ मुणि-कम्मवन्ध ॥७॥
भय-भीय विसन्थुल मणेँण तट्ठ । खर-पवण-पहय घण जिह पणट्ठ ॥८॥

[५] यह अच्छे पत्तोंवाली पाटली लता है जिसकी छायामें वासुपूज्यको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ था। ये वे जामुन और पीपल के वृक्ष है जिनके नीचे विमलनाथ और अनन्तनाथ ज्ञानसे समर्थ हुए थे। वे दधिपर्ण और नन्दीवृक्ष है जिनके नीचे धर्मनाथ और शान्तिनाथ ज्ञानसे समृद्ध हुए। ये वे तिलक और सहकार वृक्ष दिखाई दे रहे हैं जहाँ कुंथुनाथ और अरहनाथको ज्ञानकी उत्पत्ति हुई। यह वह अशोक वृक्ष है जहाँ मल्लिनाथ जिनने केवलज्ञान-प्राप्त किया। क्या तुम वह चंपक पेड़ नहीं देख रही हो जहाँ केवल ज्ञानी, मुनिसुव्रत ध्यानके लिए बैठे थे। इस उत्तम वृक्षकी तो इन्द्र तक वन्दना करता है और इसीलिए लोग भी इसका अभिनन्दन करते है।" इस प्रकार बाते करते हुए वे लोग वहाँ पहुँचे जहाँपर भट्टारक, जितकाम, देशभूषण और कुलभूषण मुनि प्रतिमा योगध्यानमे लीन बैठे थे। शुद्धमन वे दोनों यति घूरते हुए व्यन्तर देवों, विषाक्त साँपों-बिच्छुओ और लताओंसे इस प्रकार घिरे हुए थे जैसे पाखंडीजन घर, स्त्री आदि परिग्रहसे घिरे रहते हैं ॥१-१०॥

[६] रामने जब वहाँ सब ओर सर्प-समूह देखा तो स्वयं भयङ्कर गरुड़ बनकर बैठ गये। तूणीर उनके पंख थे, सीतादेवी चोंच थीं। रोमांच और कंचुक उजले पंखके बाण थे। लक्ष्मण ही खुला हुआ विकट मुख था। तीखे तीर डरावने नेत्र थे। दोनोके दो धनुष, उस (गरुड़) के कान थे। इस तरह राम भीषण गरुड़ का रूप धारण करके बैठ गये। उस (रामरूपी गरुड़) को देखकर सर्पोंके लिए अपने प्राणोंकी चिन्ता होने लगी कि इस नरसंगममे हम शीघ्र ही नष्ट हो जायँगे। यह गरुड़ पक्षी हमे खा लेगा। इस प्रकार उन सर्पोंका नाश वैसे ही हो गया जैसे मुनिके कर्मबन्धका नाश हो जाता है। मनसे त्रस्त, भयभीत और कातर वे ध्वस्त होने

घत्ता

वेल्ली-सङ्कुलहों वसत्थलहों विसहर-फुक्कार-करालहों ।
जाय पगास रिसि णहें सूर-ससि उम्मिल्ल णाइँ घण-जालहों ॥६॥

[७]

अहि-णिवहु ज जें गउ ओसरें वि । मुणि वन्दिय जोग-भत्ति करें वि ॥१॥
जे भव-ससारारिहें डरिय । सिव-सासय-गमणहों अइतुरिय ॥२॥
विहिं दोसहिं जे ण परिग्गहिय । विहिं वज्जिय विहिं झाणहिं सहिय ॥३॥
तिहिं जाइ-जरा-मरणेंहिं रहिय । दसण - चारित्त - णाण - सहिय ॥४॥
जे चउगइ-चउकसाय-महण । चउ-मङ्गल-कर चउ-सरण-मण ॥५॥
जे पञ्च-महव्वय-दुधर-धर । पञ्चेन्दिय-दोस-विणासयर ॥६॥
छत्तीस-गुणड्ढि-गुणेंहिं पवर । छज्जीव-णिकायहुँ खन्ति-कर ॥७॥
जिय जेहिं सभय सत्त वि णरय । जे सत्त सिवङ्कर अणवरय ॥८॥
कम्मट्ठ - मयट्ठ - दुट्ठ - दमण । अट्ठविह-गुणड्ढी-सरसवण ॥९॥

घत्ता

एक्केक्कोत्तरिय इय गुण-भरिय पुणु वन्दिय वल-गोविन्दें हिं ।
गिरि-मन्दिर-सिहरें वर-वेइहरें जिण-जुवलु व इन्द-पडिन्दें हिं ॥१०॥

[८]

भावें तिहि मि जणेंहिं धम्मजणु । किउ चन्दण-रसेण सम्मज्जणु ॥१॥
पुप्फच्चणिय छुद्ध-सयवत्तेंहिं । पुणु आढत्तु गेउ मुणि-भत्तेंहिं ॥२॥
रामु सुघोस वीण अप्फालइ । जा मुणिवरहु मि चित्तइँ चालइ ॥३॥
जा रामउरिहिं आसि रवण्णी । तूसेंवि पूयण-जक्खें दिण्णी ॥४॥
लक्खणु गाइ सलक्खणु गेउ । सत्त वि सर ति-गाम-सर-भेउ ॥५॥
एक्कवीस वर-मुच्छण-ठाणइँ । एक्कुणपञ्चास वि सर-ताणइँ ॥६॥

लगे। उसके अनंतर, लताओंसे संकुल, और सर्पोंकी फूत्कारोंसे कराल उस वंशस्थल प्रदेशमें प्रकाश करते हुए उसी प्रकार प्रवेश किया जिस प्रकार मेघमुक्त आकाशमें सूर्य और चन्द्र चमकते है ॥१-६॥

[७] सर्पसमूहका नाश होने पर रामने उचित भक्तिके साथ मुनिकी वन्दना की कि "आप दोनों ही भवसागरसे डरे हुए मोक्ष जानेकी शीघ्रतामें हैं, आप दोनों दोषरहित और दृढ़ हैं। दोनों ही ध्यानमें स्थित जन्म, जरा और मृत्यसे हीन है। दर्शन ज्ञान और चारित्रसे संपन्न चारो गतियों और कषायोंका नाश करनेवाले धर्मकी शरण अपने मानसमें धारण करनेवाले, पॉच महाकठोर व्रतोंके पालक, पॉचों ही इन्द्रियोंके दोषोंको दूर करनेवाले, छत्तीस उत्तम गुणोंसे सम्पन्न, छह प्रकारके निकायोंके जीवोंके प्रति क्षमाशील, सप्त महाभयङ्कर नरकोंके विजेता, सप्त कल्याणोंको निरन्तर धारण करनेवाले, दुष्ट आठ कर्मोंका नाश करनेवाले आप आठगुण-ऋद्धियोंसे परिपूर्ण हैं।" इस प्रकार एकसे एक उत्तम गुणोंसे भरपूर उन मुनियोंकी उसी तरह वन्दना-भक्ति की जिस तरह, मंदराचलकी वेदी पर इन्द्र और उपेन्द्र बाल जिनकी वन्दना-भक्ति करते है ॥१-१०॥

[८] फिर राम लक्ष्मणने भावपूर्वक धर्मलाभ किया और स्वच्छ कमलोंसे उनकी पुष्प-पूजा की। तदनन्तर मुनियोंकी भक्तिसे प्रेरित होकर उन्होंने गीत प्रारम्भ किया। और मुनियोंके मनको डगमगा देनेवाले सुघोष वीणाका वादन किया। यह वही सुन्दर वीणा थी जिसे राम-पुरीमें प्रसन्न होकर पूतन यक्षने रामको प्रदान की थी। लक्ष्मणने शास्त्रीय संगीत प्रारम्भ किया। उसमें सात स्वर, तीन ग्राम और दूसरे दूसरे स्वर-भेद थे। मूर्छनाके सुन्दर इक्कीस स्थान और उनचास स्वर-ताने थीं। तालपर

ताल-विताल पणच्चइ जाणइ। णव रस अट्ठ भाव जा जाणइ ॥७॥
दस दिट्ठिउ वावीस लयाइँ। भरहें भरह-गविट्ठइँ जाइँ ॥८॥

घत्ता

भावें जणय-सुय चउसट्ठि भुय दरिसन्ति पणच्चइ जावेँ हिँ।
दिणयर-अत्थवणेँ गिरि-गुहिल-वणेँ उवसग्गु समुट्ठिउ तावेँ हिँ ॥९॥

[९]

तो कोवग्गि करम्बिय - हासइँ। दिट्ठइँ णहयलेँ असुर-सहासइँ ॥१॥
अण्णइँ विप्फुरियाहर-वयणइँ। अण्णइँ रत्तुम्मिल्लिय-णयणइँ ॥२॥
अण्णइँ पिङ्गङ्गइँ पिङ्गक्खइँ। अण्णइँ णिम्मसइँ दुप्पेक्खइँ ॥३॥
अण्णइँ णहेँ णच्चन्ति विवत्थइँ। अण्णइँ तहिँ चामुण्ड-विहत्थइँ ॥४॥
अण्णइँ कङ्कालइँ वेयालइँ। कत्तिय-मडय-करइँ विकरालइँ ॥५॥
अण्णइँ मसि-वण्णइँ अपसत्थइँ। णर-सिर-माल - कवाल-विहत्थइँ ॥६॥
अण्णइँ सोणिय-मइर पियन्तइँ। णच्चन्तइँ घुम्मन्त-घुलन्तइँ ॥७॥
अण्णइँ किलकिलन्ति चउ-पासेँ हिँ। अण्णइँ कहकहन्ति उवहासेँ हिँ ॥८॥

घत्ता

अण्णइँ भीसणइँ दुद्दरिसणइँ 'मरु मारि मारि' जम्पन्तइँ।
देसविहूसणहँ कुलभूसणहँ आयइँ उवसग्गु करन्तइँ ॥९॥

[१०]

पुणु अण्णइँ अण्णण्ण-पयारेँ हिँ। ढुक्कइँ विसहर-फण-फुक्कारेँ हिँ ॥१॥
अण्णइँ जम्बुव-सिव-फेक्कारेँ हिँ। वसह - झडक्क - मुक्क-ढेक्कारेँ हिँ ॥२॥
अण्णइँ करिवर-कर - सिक्कारेँ हिँ। सर-सन्धिय-धणु-गुण - टङ्कारेँ हिँ ॥३॥
अण्णइँ गद्दह - मण्डल-सद्देँ हिँ। अण्णइँ वहुविह-भेसिय-णद्देँ हिँ ॥४॥
अण्णइँ गिरिवर-तरुवर-घाएँ हिँ। पाणिय-पाहण - पवणुप्पाएँ हिँ ॥५॥
अण्णइँ अमरिस-रोस फुरन्तइँ। णयणेँ हिँ अग्गि-फुलिङ्ग मुयन्तइँ ॥६॥

सीता नाच रही थीं। वह भी नौ रस, आठ भाव, दस दृष्टियो और वाईस लयोंको जानती थी। इन सबका भरतके नाट्यशास्त्रमे भलीभॉति वर्णन है। इस प्रकार चौसठ हस्त-कलाओंका प्रदर्शन करती हुई सीतादेवी जब नाच रही थीं, तभी सूर्यास्त होने पर उस गहन वनमे फिर घोर उपसर्ग होने लगा ॥ १–६ ॥

[६] क्रोधसे भरे हुए हजारों राक्षस आकाशमे दिखाई देने लगे। उनमेसे कितनों ही के अधर और मुख कॉप रहे थे। कईके नेत्र आरक्त थे। कितनोंकी ऑखे पीली-पीली थी। कई निर्मास और दुर्दर्शनीय हो रहे थे। कितने ही आकाशमे नग्ननृत्य कर रहे थे। कई चामुण्ड हाथमे लिये हुए थे। कितने ही कंकाल और वेताल थे। कई कृत्तिका और शव अपने हाथ रखते थे। कोई अप्रशस्त काले रंगके थे। कईके हाथोंमे मुण्डमाला और खप्पर थे। कई रक्तकी मदिरा पीकर, और नाच-घूमकर मत्त हो रहे थे। कई चारो ओर खिलखिलाकर उपहास कर रहे थे। कितने ही दुर्दर्शनीय 'मारो मारो' चिल्ला रहे थे। इस प्रकार वे सब कुलभूपण और देश-भूपण मुनियोंपर उपसर्ग करनेके लिए आये ॥१–८॥

[१०] दूसरे (उपद्रवी) सर्पके फनों और फूत्कारोंके साथ वहॉ उपसर्ग करने पहुँचे। कितने ही शृगाल और जम्बूककी फेक्कार ध्वनि कर रहे थे। कई गजशुंडके शीत्कार, सरसंधान और धनुषकी डोरीके साथ आये। दूसरे गर्दभ मण्डलकी ध्वनि तथा और और ध्वनियोंके साथ आये। दूसरे पेड़ों और पहाड़ोंके आघात, पानी, पत्थर और पवनका उत्पात करते हुए आये। दूसरे कई, क्रोध और असमर्पसे भरकर आये। कई ऑखोंसे चिनगारियॉ वरसाते हुए दस-दस और सौ-सौ मुख वनाकर आये। दूसरे

अण्णइँ दह-वयणइँ सय-वयणइँ । अण्णइँ सहस-मुहइँ वहु-णयणइँ ॥
तहिँ तेहएँ वि कालेँ मइ-विमलहुँ । तो वि ण चलिउ झाणु मुणि-धवलहुँ॥

घत्ता

वइरु सरन्ताइँ पहरन्ताइँ सव्वल-हुलि-हल-मुसलग्गेँहिँ ।
कालेँ अप्पणउ भीसावणउ दरिसाविउ णं वहु-भङ्गेँहिँ ॥९॥

[११]

उवसग्गु णिएँवि हरिसिय-मणेँहिँ । णीसङ्केँहिँ वल-णारायणेँहिँ ॥१॥
मम्भीसेँवि सीय महावलेँहिँ । मुणि-चलण-धराविय करयलेँहिँ ॥२॥
धणुहरइँ विहि मि अप्फालियइँ । ण सुर-भवणइँ सचालियइँ ॥३॥
वुण्णइँ भय-भीय - विसण्ठुलइँ । ण रसियइँ णहयल-महियलइँ ॥४॥
त सद्दु सुणेँवि आसङ्कियइँ । रिउ-चित्तइँ माण-कलङ्कियइँ ॥५॥
धणुहर-टङ्कारेँहिँ वहिरियइँ । णट्ठइँ खल-खुद्दइँ वइरियइँ ॥६॥
ण अट्ठ वि कम्मइँ णिज्जियइँ । ण पञ्चेन्दियइँ परज्जियइँ ॥७॥
ण णासेँवि गयइँ परीसहइँ । तिह असुर-सहासइँ दूसहइँ ॥८॥

घत्ता

छुडु छुड्डु णट्ठाइँ भय-तट्ठाइँ मेल्लेप्पिणु मच्छरु माणु ।
ताव भण्डाराहुँ वय-धाराहुँ उप्पण्णउ केवल-णाणु ॥९॥

[१२]

ताव मुणिन्दहँ णाणुप्पत्तिएँ । आय सुरासुर-वन्दणहत्तिएँ ॥१॥
जेहिँ कित्ति तइलोक्केँ पगासिय । जोइस वेन्तर भवण-णिवासिय ॥२॥
पहिलउ भावण सङ्ख-णिणद्देँ । वेन्तर तूरयफालिय - सद्देँ ॥३॥
जोइस-देव वि सीह-णिणाएँ । कप्पामर जयघण्ट - णिणाएँ ॥४॥
सचलिएं चउ-देवणिकाएँ । छाइउ णहु णं घण-सघाएं ॥५॥
वहइ विमाणु विमाणें चप्पिउ । वाहणु वाहण-णिवह-झडप्पिउ ॥६॥

हजारों मुखों और असंख्य नेत्रोंको बनाकर आये। यह सब होनेपर भी उन विमलबुद्धि दोनों मुनियोंका ध्यान डिगा नहीं। (आततायी) सब्बल हलि हल और मूसलसे प्रहार कर रहे थे, अपनी तरह-तरह की भंगिमाओंसे वे यमकी तरह कराल जान पड़ रहे थे ॥१–६॥

[११] उस भयानक उपसर्गको देखकर हर्षितमन, निःशंक, महाबली राम और लक्ष्मणने सीताको अभयवचन दिया और अपने करतलसे मुनियोंके चरण-कमल पकड़कर, दोनों धनुष चला दिये। उनकी कठोर ध्वनिसे सुमेरु पर्वत भी हिल उठा। धरती और आसमान दोनों भयकातर हो गूँज उठे। उस शब्दसे शत्रुओंके हृदय दहल गये। उनका मान खण्डित हो गया। उन धनुषोंकी टंकारसे बड़े-बड़े क्षुब्ध राक्षस वैसे ही प्रणष्ट हो गये जिस प्रकार जिनके द्वारा आठ कर्म और पाँचों इन्द्रियाँ विजित कर ली जाती है। इस प्रकार मान और मत्सरसे भरे हुए राक्षसोंके नष्ट होते होते, उन व्रतधारी मुनियोंको केवलज्ञान उत्पन्न हो गया ॥१–६॥

[१२] तब सुर और असुर उनकी वन्दना भक्तिके लिए आये। और उनकी कीर्ति चारों लोकोंमे फैल गई। ज्योतिष, भवन और व्यंतरवासी देव आने लगे। सबसे पहले भवनवासी देवोंने शङ्खध्वनि की। फिर व्यन्तर देवोंने अपना तूर्य बजाया और ज्योतिष देवोंने सिंहनाद किया तथा कल्पवासी देवोंने जय-घण्टोंका निनाद किया। इस प्रकार चारों निकायोंके देवोंके प्रस्थान करते ही आकाश इस प्रकार ढक गया मानो मेघोंसे ही आच्छन्न हो उठा हो। विमान विमानको चापकर उड़ रहे थे। सवारीसे सवारी टकरा गई। अश्वोंसे अश्व और रथोंसे रथ अवरुद्ध हो उठे।

तुरउ तुरङ्गमेण ओमाणिउ । सन्दणु सन्दणेण संदाणिउ ॥७॥
गयवरु गयवरेण पडिखलियउ । लग्गँ वि मउडें मउडु उच्छलियउ ॥८॥

घत्ता

भावें पेल्लियउ भय-मेल्लियउ सुर-साहणु लीलए आवइ ।
लोयहुँ मूढाहुँ तमें छूढाहुँ ण धम्म-रिद्धि दरिसावइ ॥९॥

[१३]

ताव पुरन्दरेण अइरावउ । साहिउ जण-मण-णयण-सुहावउ ॥१॥
सोह दिन्तु चउसट्ठी-णयणेंहिँ । गुलगुलन्तु वत्तीसहिँ वयणेंहिँ ॥२॥
वयणें वयणें अट्ठट्ठ विसाणइँ । णाइँ सुवण्ण - णिवद्ध-णिहाणइँ ॥३॥
एक्कक्कएँ विसाणें जण-मणहरु । एक्केकउ जें परिट्ठिउ सरवरु ॥४॥
सरें सरें सर-परिमाणुप्पण्णी । कमलिणि एक्क-एक्क णिप्पण्णी ॥५॥
एक्केक्कहें पउमिणिहें विसालइँ । पङ्कयाइँ वत्तीस स-णालइँ ॥६॥
कमलें कमलें वत्तीस जि पत्तइँ । पत्तें पत्तें णट्टाइ मि तेत्तइँ ॥७॥
वड्ढिउ जम्वूदीव - पमाणें । पुणु जि परिट्ठिउ तेण जि थाणें ॥८॥
तहिँ दुग्घोट्टें चडें वि सुर-सुन्दरु । वन्दणहत्तिएँ आउ पुरन्दरु ॥९॥
पुरउ सुरिन्दहों णयणाणन्दें हिँ । गुरु पोमाइउ वन्दिण-वन्दें हिँ ॥१०॥

घत्ता

देवहों दाणवहों खल-माणवहों रिसि चलणेंहिँ केव ण लग्गहों ।
जेहिँ तवन्तऍहिँ अचलन्तएँहिँ इन्दु वि अवयारिउ सग्गहों ॥११॥

[१४]

जिणवर-चलण कमल-दल - सेवहिँ । केवल-णाण-पुज्ज किय देवहिँ ॥१॥
भणइ पुरन्दरु अहों अहों लोयहों । जइ सङ्किय जर-मरण-विओयहों ॥२॥
जइ णिव्विण्णा चउ-गइ-गमणहों । तो कि ण ढुक्कहो जिणवर-भवणहों ॥३॥
पुत्तु कलत्तु जाव मणें चिन्तहों । जिणवर-विम्वु ताव कि ण चिन्तहों ॥४॥

गजसे गज और मुकुटसे मुकुट टकराकर उछल पड़े। भावविह्वल और अभय देवसेना वहाँ इस तरह आई मानो मूढलोकका अन्धकार दूर करनेके लिए धर्मऋद्धि ही चारों ओर बिखर गई हो ॥१-६॥

[१३] तब इन्द्रने भी अपना ऐरावत हाथी सजाया। जनोंके मन और नेत्रोंके लिए सुहावने उस गजकी चौसठ आँखे अत्यन्त शोभित हो रही थीं। अपने बत्तीस मुखोंसे वह गुरगुरा रहा था। उसके एक-एक मुखमे आठ-आठ दाँत थे जो स्वर्णिम निधानकी तरह लगते थे। एक-एक दाँतपर एक-एक सरोवर था, प्रत्येक सरोवरमे उसीके अनुरूप आकार-प्रकारकी कमलिनी थी। एक-एक कमलिनीपर मृणालसहित बत्तीस कमल थे। एक-एक कमलमे बत्तीस पत्ते थे और पत्ते-पत्तेपर उतनी ही अप्सराएँ नृत्य कर रही थी। जम्बूद्वीप प्रमाण वह गज अपने स्थानसे चल पड़ा। उसपर सुरसुन्दर पुरन्दर भी मुनिकी वन्दना-भक्ति करनेके लिए आया। इन्द्रके सम्मुख नयनानन्द दायक देवसमूहने जिनकी स्तुति प्रारम्भ की। देव, दानव, खल और मनुष्योंमे उस समय कौन ऐसा था जो उन मुनियोंके चरणोंमें नत न हुआ हो और तो और, स्वयं इन्द्र तकको स्वर्गसे उतरकर आना पड़ा ॥१-११॥

[१४] जिनवरके चरण-कमलोंके सेवक देवोंने केवलज्ञानी उन मुनियोंकी खूब अर्चना की। फिर इन्द्रने कहा—"अरे, अरे! तुम्हें यदि जन्म, जरा, मरण और वियोगसे आशंका हो, और यदि तुम चारगतियोंके भ्रमणसे छूटना चाहते हो तो जिनवर भवनकी शरणमे क्यों नहीं आते। जितनी पुत्र-कलत्रकी अपने मनमे चिन्ता करते हो उतनी जिन-प्रतिमाकी चिन्ता क्यों नही करते। जितना तुम मांस और कामका चिन्तन करते हो, उतना जिन-शासनका

चिन्तहों जाव मासु मयरासणु । कि ण चिन्तवहों ताव जिणसासणु ॥५॥
चिन्तहों जाव रिद्धि सिय सम्पय । कि ण चिन्तवहों ताव जिणवर-पय ॥६॥
चिन्तहों ताव रूउ धणु जोव्वणु । धण्णु सुवण्णु अण्णु घरु परियणु ॥७॥
चिन्तहों जाव वलिउ भुव-पञ्जरु । कि ण चिन्तवहों ताव परमक्खरु ॥८॥

घत्ता

पेक्खहु धम्म-फलु चउरङ्गवलु पयहिण ति-वार देवाविउ ।
स इँ भु वणेसरहों परमेसरहों अत्थक्कएँ सेव कराविउ' ॥९॥

०

[३३. तेत्तीसमो संधि]

उप्पणएँ णाणेँ पुच्छइ रहु-तणउ ।
'कुलभूसण-देव किं उवसग्गु कउ' ॥

[१]

तं णिसुणेँवि पभणइ परम-गुरु । 'सुणु जक्खथाणु णामेण पुरु ॥१॥
तहिँ कासव-सुरव महाभविय । एयारह - गुणथाणग्घविय ॥२॥
एक्कोवर किङ्कर पुरवइहेँ । ण तुम्बुरु-णारय सुरवइहेँ ॥३॥
हम्मन्तु विहङ्गमु लुद्धएँहिँ । परिरक्खिउ तेहिँ पवुद्धएँहिँ ॥४॥
खगवइ तुणु वहुकालेण मुउ । विन्झाचलेँ भिल्लाहिवइ हुउ ॥५॥
तो कासव-सुरव वे वि मरेँवि । थिय अमियसरहों घरेँ ओअरेँवि ॥६॥
उवओवाढेविहेँ दोहलेँहिँ । उप्पण्णा वड्डुहिँ सोहलेँहिँ ॥७॥
वद्धावउ आयउ वन्धुजणु । किउ उइय-मुइय णामग्गहणु ॥८॥

चिन्तन क्यों नही करते ? जितनी चिन्ता तुम ऋद्धि, श्री और सम्पदा की करते हो उतनी जिनवरके चरणोंकी क्यों नहीं करते ? जितनी चिन्ता तुम्हें रूप, धन और यौवनकी है, और भी धान्य, सुवर्ण, घर और परिजनोंकी है, जितनी चिन्ता तुम्हें नश्वर भव-पञ्जर (शरीर) की है, उतनी चिन्ता परमाक्षरोंवाले (जिनवर) की क्यों नहीं है ? जरा, धर्मका फल तो देखो कि चतुरंग देवसेना मुनिवरकी तीन वार प्रदक्षिणा दे रही है। वह भुवनेश्वर-परमेश्वर जिनकी सेवा कर रही है ॥१-६॥

•

तेतीसवीं संधि

केवलज्ञान उत्पन्न होने पर रामने पूछा, "कुलभूषण देव आप पर यह उपसर्ग क्यों हुआ।"

[१] यह सुनकर वह परम गुरु बोले, "सुनो बताता हूँ। यक्षस्थानपुर नामका एक नगर था। उसमे कर्षक और सूरप नामके दो ग्यारह प्रतिमाधारी भाई रहते थे। वे दोनों एक राजाके उसी प्रकार अनुचर थे जिस प्रकार इन्द्रके तुम्बुरु और नारद अनुचर है। प्रबुद्ध उन दोनोंने एक दिन व्याधसे आहत एक पक्षी की रक्षा की। बहुत दिनोंके बाद मरने पर वह पक्षी विंध्याटवीमे भिल्लराज हुआ। सूरप और कर्षक, दोनों भाई भी मरकर राजा अमृतसरकी पत्नीसे उत्पन्न हुए। उनके जन्म दिनका उत्सव खूब धूमधामसे मनाया गया। बन्धुजन बधाई देने आये। उनके

घत्ता

ण अमर-कुमार छुडु सग्गहों पडिय ।
णाणङ्कुस-हत्थ जोव्वण-गएँ चडिय ॥६॥

[२]

तो पउमिणिपुर - परमेसरहों । दरिसाविय विजय-महीहरहों ॥१॥
तेण वि णिय-सुअहों जयन्धरहों । किय किङ्कर वड्डिय-रणभरहों ॥२॥
अच्छन्ति जाम भुञ्जन्ति सिय । तो ताम जणेरहों गमण-किय ॥३॥
पट्ठविउ णरिन्दें अमियसरु । अइभूमि - लेह - रिञ्छोलि-धरु ॥४॥
वसुभूइ सहेज्जउ तासु गउ । तें णवर पाण-विच्छोउ कउ ॥५॥
पल्लट्टइ पल्लट्टिउ भणेंवि । ते उइय-मुइय तिण-समु गणेंवि ॥६॥
सो उववुवाएविएँ सहुँ जियइ । अमिओवमु अहर-पाणु पियइ ॥७॥
परियाणेंवि जेट्ठें दुच्चरिउ । वसुभूइहें जीविउ अवहरिउ ॥८॥

घत्ता

उप्पण्णउ विज्झें होप्पिणु पल्लिवइ ।
पुव्वक्किउ कम्मु सव्वहों परिणवइ ॥९॥

[३]

जय-पव्वय - पवरुज्जाणु जहिँ । रिसि-सङ्घु पराइउ ताव तहिँ ॥१॥
किय रुक्खें रुक्खें आवास-किय । णं रुक्खें रुक्खें अवइण्ण सिय ॥२॥
संजायइँ अङ्गइँ कोमलइँ । अहियइँ पण्णइँ फुल्लइँ फलइँ ॥३॥
रिसि रुक्ख व अविचल होवि थिय । किसलएँ परिवेढावेढि किय ॥४॥
रिसि रुक्ख व तवण-ताव तविय । रिसि रुक्ख व मूल-गुणग्घविय ॥५॥

नाम उदित और मुदित रक्खे गये। वे दोनों ऐसे प्रतीत होते थे मानो अमर कुमार ही स्वर्गसे अवतरित हुए हों। धीरे-धीरे वे यौवनरूपी महागज पर आरूढ़ हो चले। तो भी उन पर विवेक का अंकुश उनके हाथमे था ॥१-६॥

[२] (कुछ समयके बाद) पिताने पद्मिनीपुरके राजा विजयको अपने पुत्र दिखाये। उसने उन दोनोंको युद्धभार उठानेमे समर्थ जानकर अपने पुत्र जयन्धरका अनुचर नियुक्त कर दिया। इस प्रकार सम्पदाका उपभोग करते हुए वे दोनों रहने लगे। एक दिन उनके पिता अमृतसरको (किसी कामसे) वाहर जाना पड़ा। राजाने उसे भूमिसंवन्धी कोई लेखमाला देकर बहुत दूर भेजा। वसुभूति नामका ब्राह्मण भी उसके साथ गया। वह वहाँ (परदेशमें) कुछ और नहीं कर सका तो अमृतसरके प्राणोंको ही समाप्त कर बैठा। (उसका अमृतसरकी पत्नीसे अनुचित सम्वन्ध था) वहाँसे लौटकर पतिको मरा समझ वह ब्राह्मण उसकी पत्नीके साथ आनन्दोपभोग करने लगा। उसे उदित-मुदितकी जरा भी परवाह नहीं थी। वह इस प्रकार उपभोगके साथ अधरामृतका पान करने लगा। तब बड़े भाईने उसे दुश्चरित्र समझकर मार डाला। वह भी मरकर विंध्याटवीमे भीलोंका राजा हुआ। पूर्वकृत कर्म सभीको भोगने पड़ते हैं ॥१-६॥

[३] इसी बीच राजा विजयके उद्यानमे एक मुनि संघका आगमन हुआ। वृक्षोंके नीचे निवास करता हुआ वह संघ ऐसा जान पड़ता था मानो वृक्षोंके नीचे श्री ही अवतरित हुई हो। उनके अंकुर कोमल हो गये। नये पत्ते, फल और फूल आ गये। मुनि वृक्षोंकी ही भाँति अपने ध्यानमे अचल थे। पेड़ोंके पल्लव

रिसि रुक्ख व आलवाल-रहिय । रिसि रुक्ख व मोक्ख-फलब्भहिय ॥६॥
गउ णन्दणवणिउ तुरन्तु तहिं । सो विजय-महीहर-राउ जहिं ॥७॥
"परमेसर केसरि - विक्कमेंहिं । उज्जाणु लइउ जइ-पुङ्गवेंहिं ॥८॥

घत्ता

वारन्तहों मज्झु उम्मग्गिम करेंवि ।
रिसि-सीह-किसोर (व) थिय वणें पइसरेंवि" ॥९॥

[४]

तं णिसुणेंवि णरवइ गयउ तहिं । आवासिउ महरिसि-सत्थु जहिं ॥१॥
वोल्लाविय अहों "अहों मुणिवरहों । अवुहहों अयाण - परमक्खरहों ॥२॥
परमप्पउ अप्पउ होवि थिउ । कज्जेण केण रिसि-वेसु किउ ॥३॥
अइदुल्लहु लहेंवि मणुअत्तणउ । कें कज्जें विणडहों अप्पणउ ॥४॥
कहों केरउ परम-मोक्ख-गमणु । वरि माणिउ मणहरु तरुणियणु ॥५॥
सच्छाइँ आयइँ अङ्गाइँ । सोलह - आहरणहँ जोग्गाइँ ॥६॥
वित्थिण्णइँ आयइँ कडियलइँ । हय - गय-रह - वाहण-पच्चलइँ ॥७॥
लायण्णइँ रूवइँ जोव्वणइँ । णिप्फलइँ गयइँ तुम्हहँ तणइँ ॥८॥

घत्ता

सुपसिद्धु लोएँ एक्कु वि तउ ण कउ ।
पुम्हाण किलेसु सयलु णिरत्थु गउ" ॥९॥

[५]

तो मोक्ख-रुक्ख - फल - वद्धणेंण । महिपालु वुत्तु मइवद्धणेंण ॥१॥
"पइँ अप्पउ काइँ विडम्बियउ । अच्छहि सुह - दुक्ख-करम्बियउ ॥२॥
कहों घरु कहो पुत्त-कलत्ताइँ । धय चिन्धइँ चामर-छत्ताइँ ॥३॥

उन्हें बार-बार ढक लेते थे। वह वृक्षकी ही तरह तपनशील (तप और घामको सहनेवाले) उन्हींकी तरह मूलगुणों (अट्ठाईस मूल गुण और जड़) से महान् थे। फिर भी वे महामुनि वृक्षोंके समान आलवाल (परिग्रह और लता आदि) से रहित थे। परन्तु फल (मोक्ष) से सहित थे। उन्हें देखकर वनपाल राजा विजयके पास दौड़ा गया और जाकर बोला, "परमेश्वर सिंहकी भाँति पराक्रमी, उत्तम मुनियोंने बलात् उद्यानमें प्रवेश कर लिया है।" मना करने पर भी वे वैसे ही भीतर घुस आये हैं जैसे किशोर सिंह वनमें घुस आता है ॥१-९॥

[४] यह सुनते ही राजा वहाँ जा पहुँचा जहाँ वह मुनि-संघ विराजमान था। जाकर उसने भर्त्सना करते हुए कहा, "अरे अपण्डित परममूर्ख यतिवरो ! तुम तो स्वयं परमात्मा बनकर बैठे हो। तुमने मुनिका यह वेष किस लिए बनाया ? अत्यन्त दुर्लभ मानव शरीर पाकर उसका नाश क्यों कर रहे हो ? फिर परममोक्ष किसने आज तक प्राप्त किया ? इसलिए सुन्दर स्त्री-जनको ही बढ़िया समझो। ये सुन्दर कान्तिमय अङ्ग सोलह शृङ्गारके योग्य हैं। यह चौड़ा कटिभाग हय, गज और रथोंकी सवारीके लिए है। तुम्हारा लावण्य, रूप और यौवन सभी कुछ व्यर्थ गया। लोकमें प्रसिद्ध (मौजकी) तुमने एक भी बात नहीं की। तुम्हारा यह सब क्लेश उठाना एक प्रकारसे व्यर्थ गया ॥१-९॥

[५] तब मोक्ष महावृक्षके फलको बढ़ानेवाले मतिवर्धन नामके यतिने राजासे कहा "तुम अपनी विडम्बना क्यों कर रहे हो, सुख-दुखमें सने क्यों बैठे हो, किसका यह घर, किसके पुत्र-

स-विमाणइँ जाणइँ जोग्गाइँ । रह तुरय - महग्गय - दुग्गाइँ ॥४॥
धण-धण्णइँ जीविय-जोव्वणइँ । जल-कीलउ पाणइँ उववणइँ ॥५॥
वइसणउ वसुन्धरि वज्जाइँ । णउ कासु वि होन्ति सहेज्जाइँ ॥६॥
आयहिँ वहुयहिँ वेयारियइँ । वम्भाणहँ लक्खइँ मारियइँ ॥७॥
सुरवइहिँ सहासइँ पाडियइँ । चक्कवइ-सयइँ णिद्धाडियइँ ॥८॥

घत्ता

एय वि अवरे वि कालें कवलु किय ।
सिय कहोँ समाणु एक्कु वि पउ ण गय'' ॥९॥

[६]

परमेसरु पुणु वि पुणु वि कहइ । ''जिउ तिण्णि अवत्थउ उव्वहइ ॥१॥
उप्पत्ति - जरा - मरणावसरु । पहिलउ जेँ णिवद्धउ देह-घरु ॥२॥
पुग्गल-परिमाण - सुत्तु धरेँ वि । कर-चलण चयारि खम्भ करेँ वि ॥३॥
वहु-अत्थि जि अन्तहिँ ढङ्कियउ । मासिट्टु चम्म-छुह - पङ्कियउ ॥४॥
सिर - कलसालङ्किउ सञ्चरइ । माणुसु वर-भवणहोँ अणुहरइ ॥५॥
तरुणत्तणु जाम ताम वहइ । पुणु पच्छएँ जुण्ण-भाउ लहइ ॥६॥
सिरु कम्पइ जम्पइ ण वि वयणु । ण सुणन्ति कण्ण ण णियइ णयणु ॥७॥
ण चलन्ति चलण ण करन्ति कर । जर-जज्जरिहोइ सरीरु पर ॥८॥

घत्ता

पुणु पच्छिम-कालें णिवडइ देह-घरु ।
जिउ जेम विहङ्गु उड्डइ मुएँ वि तरु ॥९॥

[७]

त णिसुणेँ वि णरवइ उवसमिउ । णिय-णन्दणु णिय-पएँ सण्णिमिउ ॥१॥
अप्पुणु पुणु भाव-गाह-गहिउ । णिक्खन्तु णराहिव-सय-सहिउ ॥२॥

कलत्र ? ध्वजचिह्न, चामर, छत्र, विमान, बढ़िया योग्य रथ, अश्व, महागज, दुर्ग, धन-धान्य, जीवित, यौवन, जलक्रीड़ा, प्राण, उपवन, आसन, धरती और हीरा रत्न किसीके भी साथी नहीं होते। इन्होंने बहुतोंको खंडित किया है, लाखों ब्रह्मज्ञानियो ब्राह्मणोंको मार दिया है। इनसे हजारों इन्द्र धराशायी हो गये। सैकड़ों चक्रवर्ती विनष्ट हो गये। इनको और दैत्योंको भी कालने कवलित किया है। सम्पदा किसीके भी साथ एक भी पग नहीं गई ॥१-६॥

[६] तब परमेश्वरने बार-बार यही कहा—"जीवकी तीन अवस्थाएँ होती हैं। जन्म, जरा और मृत्यु। पहले ही (पूर्वजन्ममे) जो जीवने देहरूपी घर किया था (उसका बन्ध किया था।) उन्हीं पुद्गल परमाणुओंके सूत्रको लेकर हाथों और पैरोंके चार खम्भ बनाये जाते हैं फिर बहुत-सी हड्डियों और आंतोंसे उसे ढककर, मांस और चर्मके चूनेसे पोत दिया गया है। फिर सिर रूपी कलशसे अलंकृत होकर वह चलने लगता है। इस तरह मनुष्यका तन एक उत्तम भवनसे मिलता-जुलता है। यौवनको तो यह जिस किसी तरह ढकेलता है पर बादमे जीर्ण-शीर्ण हो जाता है। सिर कॉपने लगता है, मुखसे बात नहीं निकलती। कान सुनते नहीं, आंखे देखती नहीं। पैर चलते नहीं। हाथ काम नहीं करते, केवल शरीर जर्जर हो उठता है। फिर मरण-कालमें यह देहरूप घर ढह जाता है और जीव उससे उसी तरह उड़ जाता है जिस तरह पक्षी पेड़को छोड़कर उड़ जाता है ॥१-६॥

[७] यह सुनकर राजा शान्त हो गया। अपने पुत्रको उसने अपने पदपर नियुक्त कर दिया। वह स्वयं भवरूपी ग्राहसे गृहीत होकर दूसरे सौ राजाओंके साथ दीक्षित हो गया। वहीपर

तहिँ उइय-मुइय णिग्गन्थ थिय । कर-कमलेँहिँ केसुप्पाड किय ॥३॥
पुणु सवण-सङ्घु तहोँ पुरवरहोँ । गउ वन्दणहत्तिएँ जिणवरहोँ ॥४॥
सम्मेयहोँ जन्त जन्त वलिय । पहु छड्डेंवि उप्पहेण चलिय ॥५॥
ते उइय-मुइय दुइ णिव्वडिय । वसुभूइ-भिल्ल - पल्लिहेँ पडिय ॥६॥
धाइउ धाणुक्कु वद्ध-वइरु । गुञ्जाहल-णयणु पीय-मइरु ॥७॥
दुप्पेच्छ - वच्छु थिर-थोर-करु । अप्फालिय धणुहरु गहिर-सरु ॥८॥

घत्ता

वइरइँ ण कुहन्ति होन्ति ण जज्जरइँ ।
हउ हणइ णिरुत्तु सत्त-भवन्तरइँ ॥९॥

[८]

हक्कारिय विण्णि वि दुद्धरेण । णिय-वइयर - वइर-विरुद्धएण ॥१॥
"अहोँ सचारिम-णर - वणयरहोँ । कहिँ गम्मइ एवहिँ महु मरहोँ" ॥२॥
त सुणेंवि महावय-धारएँण । धीरिउ लहुवउ वड्डारएँण ॥३॥
"म भाहि थाहि अण्णहोँ भवहोँ । उवसग्ग-सहणु भूसणु तवहोँ" ॥४॥
तहिँ तेहएँ विहुरेँ समावडिएँ । अधुरन्धरेँ गरुअ-भारेँ पडिएँ ॥५॥
थिउ खन्धु समड्डेंवि एक्कु जणु । भिल्लाहिउ अब्भुद्धरण - मणु ॥६॥
जो पुव्व - भवन्तरेँ पक्खियउ । पुरेँ जक्खथाणेँ परिरक्खियउ ॥७॥
तेँ वुच्चइ "लोद्धा ओसरहि । को मारइ रिसि तुहुँ महु मरहि" ॥८॥

घत्ता

वोलाविय तेण कालान्तरेँण मय ।
दय चडेंवि णिसेणि लीलएँ सग्गु गय ॥९॥

उदित-मुदित भी दिगम्बर हो गये। अपने करकमलोंसे ही उन्होंने केश लोंच कर लिया। फिर वह श्रमणसंघ उस नगरसे जिनवरकी वंदना-भक्ति करनेके लिए चल पड़ा। परन्तु सम्मेदशिखरजीको जाते-जाते उदित-मुदित दोनो भाई मुड़कर, पथ छोड़कर गलत मार्गपर जा लगे। भूले-भटके वे दोनो वसुमति भीलराजके गांव मे पहुँच गये। उन्हें देखते ही आरक्त नेत्र, मदिरा पिये हुए वह वैर-भाव कर उनपर दौड़ा। उसका वक्ष दुर्दर्शनीय था और हाथ स्थूल और विशाल थे। उसने अपना गम्भीर स्वरवाला धनुप चढ़ा लिया। ठीक ही है कि वैर न तो नष्ट होता है और न जीर्ण। यह निश्चित है कि आहत व्यक्ति सात भवान्तरोमे भी मारता है ॥१-६॥

[८] अपने शत्रुओंके वैरसे विरुद्ध होकर दुर्धर उसने उन दोनोंको ललकारा, "हे हेरिको! कहाँ जाते हो? मैं तुम्हें मारता हूँ।" यह सुनकर महाव्रतधारी बड़े भाईने छोटे भाईको धीरज बंधाते हुए कहा, "डरो मत, दूसरे भवका मनमे विचार करो, उपसर्ग सहन करना ही तपका भूपण है"। उस ऐसे विधुर समयमे, अंधाधुन्ध घोर संकट आ पड़नेपर, एक और भिल्लराज उनके उद्धारकी इच्छासे कन्धा ऊँचा करके स्थित हो गया। यह पूर्व-भवका वही पक्षी था जिसकी यज्ञस्थानसे इन्होंने रक्षा की थी। उसने कहा, "अरे लुब्धक, हट। ऋपिको कौन मार सकता है, तू मुझसे मारा जायगा।" इस तरह उसने उससे हमें छुड़वा दिया। कालान्तरमे मरकर वह दयाकी नसैनी चढ़कर लीलापूर्वक स्वर्ग चला गया ॥१-६॥

[९]

पावासउ पउरु पाउ करवि । वहु-कालु णरय-तिरियहिँ फिरेँवि ॥१॥
वसुभूइ-भिल्लु धण-जण-पउरेँ । पट्टणेँ उप्पण्णु अरिट्ठउरेँ ॥२॥
णामेण अणुद्धरु दुद्दरिसु । कणयप्पह-जणणि - जणिय-हरिसु ॥३॥
दुल्लङ्घहोँ णिय-कुल-पव्वयहोँ । णन्दण णरवइहेँ पियव्वयहोँ ॥४॥
ते उइय-मुइय तासु 'जि तणय । विण्णाण - कला - पर-पार-गय ॥५॥
गिरि-धीर महोवहि-गहिर-गुण । पय-पालण रज्ज-कज्ज-णिउण ॥६॥
णामङ्किय रयण-विचित्त - रह । पउमावइ-सुअ ससि-सूर-पह ॥७॥
छद्दिवसइँ सल्लेहणु करेँवि । गउ सग्गु पियव्वउ तहिँ मरेँवि ॥८॥
जगडन्तु अणुद्धरु डामरिउ । रणेँ रयण-विचित्तरहेँ धरिउ ॥९॥

घत्ता

पच्चण्डेंहिँ तेहिँ छुड्डाविय,डमरु ।
हुउ अवर-भवेण अग्गिकेउ अमरु ॥१०॥

[१०]

वहु-कालेँ रयण- विचित्तरह । तउ करेँवि मरेँवि परिभमेँवि पह ॥१॥
उप्पण्ण वे वि सिद्धत्थपुरेँ । कण-कञ्चण-जण-धण-पय - पउरेँ ॥२॥
विमलग्गमहिसि - खेमङ्करहुँ । अवरोप्परु णयण - सुहङ्करहुँ ॥३॥
कुलभूसणु पढमु पुत्तु पवरु । लहु देसविहूसणु एक्कु अवरु ॥४॥
अण्णु वि उप्पण्ण एक्क दुहिय । कमलोच्छव रुन्द-चन्द-मुहिय ॥५॥
वेण्णि मि कुमार सालहिँ णिमिय । आयरियहोँ कहोँ वि समुल्लविय ॥६॥
पढमाण जुवाण-भावेँ चडिय । ण दइवेँ वे अणङ्ग घडिय ॥७॥
वित्थय - वच्छयल पलम्ब-भुअ । ण सग्गहोँ इन्द-पडिन्द चुअ ॥८॥

[९] परन्तु पापाशय वह भीलराज खूब पाप कर, बहुत समय तक नरक और तिर्यञ्च गतियोंमे सड़ता रहा। फिर धन-जनसे पूर्ण अरिष्ट नगरमे उत्पन्न हुआ। उसका नाम था अनुद्धर। दुर्दर्शन वह अपनी मां कनकप्रभाके लिए बहुत हर्षदायक था। वे उदित-मुदित भी, अपने कुलके दुर्लंघ्य पर्वत सदृश प्रियव्रत नामक राजाके पुत्र हुए। वे दोनों ही विज्ञान और कलामे पारङ्गत थे। पर्वतकी तरह धीर, समुद्रकी भांति गम्भीर, प्रजापालन और राज-काजमे निपुण। उनके नाम थे रत्नरथ और विचित्ररथ। शशि और सूर्यकी तरह प्रभावाले वे रानी पद्मावतीसे उत्पन्न हुए थे। (कुछ समयके बाद) छह दिनका सल्लेखना व्रत करके जब उनका पिता प्रियव्रत राजा मरकर स्वर्ग चला गया तब उन दोनों भाइयोंने विद्रोही और झगड़ालू अनुद्धरको पकड़ लिया। और उसका विद्रोह कुचल दिया। मरकर दूसरे जन्मसे वह अग्निकेतु नामका देव हुआ ॥१–९॥

[१०] बहुत कालके अनन्तर रत्नरथ और विचित्ररथ तप करके स्वर्गवासी हुए। और फिर घूम-फिरकर सिद्धार्थपुरमे उत्पन्न हुए। वह नगर धनकण कांचन जन और दुग्धसे खूब भरपूर था। परस्पर एक दूसरेके नेत्रोंके लिए शुभङ्कर विमला और क्षेमङ्कर उनके माता-पिता थे। उनमें बड़ेका नाम कुलभूषण और छोटेका देशभूषण था। एक और कमलोत्सवा नामकी चन्द्रमुखी कन्या उत्पन्न हुई। वे दोनों कुमार शासनमे आचार्य नेमिको सौप दिये गये। पढ लिखकर जब वे युवक हुए तो ऐसे मालूम होते थे जैसे दैवहीने उन्हें गढ़ा हो। उनके वक्षस्थल विशाल, बाहुएँ लम्बी थीं। वे ऐसे प्रतीत होते थे मानो स्वर्गसे इन्द्र उपेन्द्र ही अवतरित हुए

घत्ता

कमलोच्छव ताम कहि मि समावडिय ।
ण वम्मह-भल्लि हियएँ झत्ति पडिय ॥६॥

[११]

कुलभूसण - देसविहूसणहुँ । णिय-वहिणि-रूव - पेसिय-मणहुँ ॥१॥
पडिहाइ ण चन्दण-लेव-छवि । धवलामल-कोमल-कमलु ण वि ॥२॥
ण वि जलु जलद्द दाहिण-पवणु । कुसुमाउहेण ण णडिउ कवणु ॥३॥
पेक्खेप्पिणु पयइँ सु-कोमलइँ । ण सहन्ति रूइ - रत्तप्पलइँ ॥४॥
पेक्खेवि थणवट्टइँ चक्कलइँ । उव्विट्टइँ करि - कुम्भत्थलइँ ॥५॥
पेक्खेप्पिणु मुहु वालहेँ तणउ । पडिहाइ ण चन्दणु चन्दिणउ ॥६॥
लोयणइँ रूवेँ पङ्गुत्ताइँ । ढोरा इव कद्दमेँ खुत्ताइँ ॥७॥
पेक्खेप्पिणु केस-कलाउ मणेँ । ण सुहन्ति मोर णच्चन्त वणेँ ॥८॥

घत्ता

दिट्ठि-विस वाल सप्पहोँ अणुहरइ ।
जो जोअइ को वि सो सयलु वि मरइ ॥९॥

[१२]

तहिँ अवसरेँ पणइहिँ पहु भणिउ । खेमङ्कर तुहुँ जणणिएँ जणिउ ॥१॥
तुहुँ महियलेँ धण्णउ एक्कु पर । कमलोच्छव दुहिय जासु पवर ॥२॥
कुल-देसविहूसण जमल सुय । त णिसुणेँवि णाइँ कुमार मुय ॥३॥
हय-हियय काइँ चिन्तवसि तुहुँ । पाविज्जइ जेहिँ महन्तु दुहु ॥४॥
खल-खुद्दइँ दुक्किय-गाराइँ । णारइय णरय-पइसाराइँ ॥५॥
गय- वाहि- दुक्ख- हक्काराइँ । सिव- सासय- गमण- णिवाराइँ ॥६॥
तित्थङ्कर-गणहर- णिन्दियइँ । णउ खञ्चहि पञ्च-वि-इन्दियइँ ॥७॥
रूवेण पयङ्ग मीणु रसेँण । मिगु सवणेँ भसलु गन्धवसेँण ॥८॥

हों। एक दिन कमलोत्सवा कहींसे आती हुई उन्हें दिख गई। कामकी अनीकी तरह वह शीघ्र ही उनके हृदयमें विध गई ॥१-६॥

[११] अपनी ही बहिनके रूपमे आसक्तमन होकर उन दोनोको चन्द्रलेखाकी छवि भी नहीं भाती थी। न तो धवल, असल, कोमल, कमल अच्छा लगता और न जल या जलार्द्र दक्षिण-पवन। उसके सुकोमल चरण देखकर उन्हें सुन्दर रक्त-कमल अशोभन लगते थे। उसके गोल सुडौल स्तनोको देखकर उनका मन हाथीके कुम्भस्थलसे उचट गया। उस बालाका मुख देख लेनेपर, उन्हें चाँद या चाँदनी अच्छी नहीं लगती थी। उसके सौन्दर्यमे उन दोनोकी आँखे ऐसी लिप्त हो गई मानो ढोर ही कीचड़मे फँस गये हो। उसके केश-कलापको देखकर उनके मनको वनमे नाचता हुआ मोर अच्छा नहीं लगा। अपनी दृष्टिमे विप छिपाये हुए वह बाला—सांपके समान थी जो भी उसे देखता वही मारा जाता ॥ १-६ ॥

[१२] उस अवसरपर वन्दीजनोने राजासे कहा—"खेङ्कमर! सचसुच मासे उत्पन्न तुम्हीं हुए हो, महीमण्डलपर तुम्हीं एक धन्य हो, कि जिसकी कमलोत्सवा जैसी पुत्री है और कुल-भूपण देश-भूपण जैसे दो पुत्र है।" यह सुनकर वे दोनों कुमार जैसे सन्न रह गये। वे अपने तई सोचने लगे—"अभागे हृदय! तुम क्या चिन्तन कर रहे हो, इससे तुम घोर दुख पाओगे, इन पॉच इन्द्रियोमे तुम मत फँसो, ये क्षुद्र और दुष्ट बहुत ही अनर्थ करने-वाली हैं, ये नारकीय नरकमे ले जानेवाली हैं। ये, रोग-व्याधि और दुखोंको आमन्त्रण देती है, और शाश्वत शिवगमनका निवारण करती है। तीर्थङ्करो और गणधरोंने इनकी निन्दा की है। रूपसे

घत्ता

फरिसेण विणासु मत्त-गइन्दु गउ ।
जो सेवइ पञ्च तहों उत्तारु कउ ॥९॥

[१३]

तो किय णिविचि परिणेवाहों । सावज्जु रज्जु भुञ्जेवाहों ॥१॥
पारद्ध पयाणउ तव-पहेंण । णिय-देहमएण महारहेंण ॥२॥
विहि विण्णाणिय उप्पाइएँण । दुट्ठट्ठ- कम्म- पच्छाइएँण ॥३॥
इन्दिय- तुरङ्ग- सचालिएँण । सत्तविह- धाउ- वन्धालिएँण ॥४॥
चल- चलण- चक्क- सजोइएँण । मण- पक्कल- सारहि- चोइएँण ॥५॥
तव- सजम- णियम-धम्म-भरेंण । आइय णिय- णिय-तणु-रहवरेंण ॥६॥
थिय पडिमा-जोग्गें गिरि-सिहरें । सो अग्गिकेउ तेहएँऽवसरें ॥७॥
सचलिउ णहङ्गणें कहिँ वि जाम । गउ अम्हहँ उप्परि खलिउ ताम ॥८॥
पुव्वभउ सरें वि कोहें जलिउ । थिउ रुन्धवि णहयलेँ किलिकिलिउ ॥९॥
उवसग्गु जाम पारम्भियउ । वहु-रूवें हिँ गयणें वियम्भियउ ॥१०॥
पडिवण्णएँ तहिँ तेहएँऽवसरें । वट्टन्तएँ गुरु-उवसग्ग-भरें ॥११॥
तुम्हहँ जें पहावें तट्टाइँ । असुरइँ धणु-रवेंण पणट्ठाइँ ॥१२॥

घत्ता

तो अम्हहँ वप्पु कालन्तरेंण मुउ ।
सो दीसइ एत्थु गारुडु देउ हुउ ॥१३॥

[१४]

तो गरुडें परिओसिय-मणेंण । वे विज्जउ दिण्णउ तक्खणेंण ॥१॥
राहवहों सीहवाहणि पवर । लक्खणहों गरुडवाहणि अवर ॥२॥

शलभ, रससे मछली, शब्दसे मृग, गन्धसे भ्रमर और स्पर्शसे मत्त गज विनाशको प्राप्त होता है। पर जो पाँचोंका सेवन करता है उसका निस्तार कहाँ ? ॥ १-६॥

[१३] यह विचारकर उन्हें विवाह और दोषपूर्ण राज्यके भोगसे विरक्ति हो गई। अपने देहमय महारथसे उन्होंने तपके पथपर चलना प्रारम्भ कर दिया। और इस प्रकार हम दोनों विवेकशील (कुलभूषण और देशभूषण) दुष्ट आठ कर्मोंसे प्रच्छन्न, इन्द्रियरूपी अश्वोंसे संचालित, सात धातुओंसे आबद्ध, चञ्चल चरण चक्रसे संजोये मनरूपी मुख्य सारथिसे प्रेरित, एवं तप, संयम, नियम, धर्म आदिसे भरे हुए अपने-अपने इस शरीर-रूपी महारथोंसे चलकर इस पर्वत पर आये। और एक शिखरपर प्रतिमायोगमें लीन होकर बैठ गये। इसी अवसर पर अग्निकेतु आकाश-मार्गसे कहीं जा रहा था कि उसका विमान हम लोगोंके ऊपर आते ही अचानक स्खलित हो उठा। इसपर पूर्व जन्मके वैरका स्मरणकर वह क्रोधसे आगबबूला हो गया। अवरुद्ध हो वह आकाशमें किलकारी भरकर स्थित हो गया। (बादमें) उसने हम लोगोंके ऊपर अपना उपसर्ग करना प्रारम्भ कर दिया। वह नाना रूपोंसे आकाशमें विस्मय दिखाने लगा। तब उस घोर संकटके समय गुरुओंपर भारी उपसर्ग देखकर तुम्हारे प्रभावसे राक्षस अब त्रस्त हो गये और धनुषकी टंकार सुनते ही भाग खड़े हुए। कालान्तरमें मरणको प्राप्त हुए हमारे पिताजी भी गरुड़ हुए यहाँ दिखाई दे रहे हैं ॥१-१३॥

[१४] तब तत्काल प्रसन्न होकर—गरुड़देवने उन्हें दो विद्याएँ प्रदान कीं। राघवको प्रवर सिंहवाहिनी और लक्ष्मणको प्रवर गरुड़वाहिनी। पहली सातसौ और दूसरी तीनसौ शक्तियोंसे

पहिलारी सत्त-सएँहिँ सहिय । अणुपच्छिम तिहिँ सएँहिँ अहिय ॥३॥
तो कोसल-सुऍण सु-दुल्लहेण । वुच्चइ वइदेही- वल्लहेण ॥४॥
'अच्छन्तु ताव तुम्हहुँ जँ घरेँ । अवसरेँ पडिवण्णेँ पसाउ करेँ ॥५॥
सहुँ गरुडेँ सभासणु करेँवि । गुरु पुच्छिउ पुणु चलणेँहिँ धरेँवि ॥६॥
'अम्हहुँ हिण्डन्तहुँ धरगि-वहेँ । ज जिम होसइ त तेम कहेँ ॥७॥
कुलभूसणु अक्खइ हलहरहोँ । 'जलु लङ्घेँवि दाहिण-सायरहोँ ॥८॥

घत्ता

सगाम-सयाइँ विहि मि जिणेवाइँ ।
महि-खण्डइँ तिण्णि स इँ भुञ्जेवाइँ ॥९॥

•

[३४. चउतीसमो संधि]

केवलेँ केवलीहेँ उप्पण्णएँ चउविह-देव-णिकाय-पवण्णएँ ।
पुच्छइ रामु महावय-धारा 'धम्म-पाव-फलु कहहि भडारा ॥

[१]

काइँ फलु पञ्च-महव्वयहुँ । अणुवय-गुणवय - सिक्खावयहुँ ॥१॥
काइँ फलु लइएँ अणत्थमिएँ । उववास-पोसवएँ सथविएँ ॥२॥
फलु कइँ जीव सम्भीसियएँ । परहणेँ परदारेँ अहिंसियएँ ॥३॥
काइँ फलु सच्चेँ वोल्लिएँण । अलिअक्खरेण आमेल्लिएँण ॥४॥
काइँ फलु जिणवर-अञ्चियएँ । वर-विउलेँ वरासणेँ वञ्चियएँ ॥५॥
काइँ फलु मासेँ छण्डिएँण । रत्तिहिउ देहेँ दण्डिएँण ॥६॥
काइँ फलु जिण-समज्जणेँण । वलि- दीवङ्गार- विलेवणेँण ॥७॥

घत्ता

कि चारित्तेँ णाणेँ वएँ दसणेँ अण्णु पससिएँ जिणवर-सासणेँ ।
ज फलु होइ अणङ्ग-वियारा त विण्णासेँ वि कहहि भण्डारा ॥८॥

सहित थी। तब कौशल पुत्र सीतापति, दुर्लभ रामने (गरुड़से) कहा, "तबतक आप घरपर रहें और अवसर आनेपर प्रसाद करें।" इस प्रकार गरुड़से सम्भाषणकर और फिर गुरुके चरण छूकर रामने पूछा, "धरतीपर घूमते हुए हम लोगोंको क्या-क्या होगा? बताइए?" यह सुनकर कुलभूषणने कहा, "दक्षिण समुद्रको लांघकर तुम लोग शत युद्धोंसे जीतकर तीनों लोकोंकी धरतीका उपभोग करोगे" ॥१-६॥

•

चौंतीसवाँ संधि

[१] चारों देव-निकायोंको जाननेवाला केवलज्ञान जब कुलभूषण महाराजको उत्पन्न हो गया तो रामने उनसे पूछा,—"हे भट्टारक, धर्म और पापका फल बताइए। पाँच महाव्रत, अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रतका क्या फल है? अनर्थदण्ड व्रत ग्रहण करनेका क्या फल होता है? उपवास और प्रोपधोपवासका क्या फल है? जीवोंको अभयदान करने, और परस्त्री तथा परधनमें अभिलाषा न करनेका क्या फल है? सच बोलने और झूठ छोड़नेका क्या फल है? जिनवर पूजाके अनुष्ठान तथा गृहस्थाश्रमके प्रपञ्चसे वचनेमें क्या फल है? मांस छोड़ने और दिन-रात संयमके पालनमें क्या फल प्राप्त होता है? जिनका अभिषेक करने और नैवेद्य तथा दीप धूप और विलेपन करनेका क्या फल है? चारित्र व्रत ज्ञान दर्शन आदिका जिन-शासनमें जो फल वर्णित हो उसे बताइये। हे जितकाम! केवलज्ञानसे उसे जानकर प्रकट करें" ॥१-८॥

[२]

पुणु पुणु वि पडीवउ भणइ वलु । 'कहेँ सुकिय-दुक्किय-कम्म-फलु ॥१॥
कम्मेण केण रिउ-डमर-कर । सयरायर महि भुञ्जन्ति णर ॥२॥
कम्मेण केण पर-चक्क-धर । रह-तुरय-गएँहिँ वुज्झन्ति णर ॥३॥
परियरिय सु-णारिहिँ णरवरेँहिँ । विज्जिजमाण वर-चामरेँहिँ ॥४॥
सुन्दर सच्छन्द मइन्द जिह । जोहेँहिँ जोह वुज्झन्ति किह ॥५॥
कम्मेण केण किय पङ्गुलय । णर कुण्ट मण्ट वहिरन्धलय ॥६॥
काणीण दीण-मुह-काय-सर । वाहिल्ल भिल्ल णाहल सवर ॥७॥
दालिद्दिय पर-पेसणइँ कर । कें कम्मे उप्पज्जन्ति णर ॥८॥

घत्ता

धीर-सरीर वीर तव-सूरा सव्वहुँ जीवहुँ आसाऊरा ।
इन्दिय-पसवण पर-उवयारा ते कहिँ णर पावन्ति भडारा ॥९॥

[३]

के वि अण्ण णर दुह-परिचत्ता । देवलोएँ देवत्तणु पत्ता ॥१॥
चन्दाइच्च- राहु- अङ्गारा । अण्णहोँ अण्ण होन्ति कम्मारा ॥१॥
हस-स-मेस-महिस-विस-कुञ्जर । मोर- तुरङ्ग- रिच्छ- मिग- सम्वर ॥३॥
जइ देवहुँ जेँ मज्झेँ सभूआ । तो किं कज्जें वाहण हूआ ॥४॥
एँहु जो दीसइ कुलिस-प्पहरणु । सहसणयणु अइरावय-वाहणु ॥५॥
गिज्जइ किण्णर-मिहुण-सहासेँहिँ । सुरवर जय भणन्ति चउपासेँहिँ ॥६॥
हाहा- हूहू- तुम्वुरु- णारा । तेज्जा-तेण्णा जसु चक्कारा ॥७॥
चित्तङ्गो वि मुरव पडिपेल्लइ । रम्भ तिलोत्तिम सइ उव्वेल्लइ ॥८॥

[२] रामने दुबारा उनसे पूछा—"पुण्य-पापका फल भी बतलाइए। शत्रुके लिए भयंकर और चराचर धरतीका उपभोग करनेवाला किस कर्मके उदयसे जीव बनता है ? किस कर्मसे दूसरेके चक्रको ग्रहण करता है ? रथ, अश्व और गजसे युद्ध होता है। किस कर्मसे वह सुन्दर स्त्रियों और उत्तम मनुष्योंसे घिरा रहता है और उसपर उत्तम चॅवर डुलाये जाते है और योधा-गण उसे स्वच्छन्द मत्त गजकी भॉति समझते हैं ? किस कर्मसे मनुष्य पंगु, कुबड़ा, बहरा और अंधा बनता है ? किस कर्मके उदय से वह कुॅवारा तथा मुख-स्वर और शरीरसे दीन-हीन और रोगी बनता है ? भील, नाहर व्याध, शबर, दरिद्र और दूसरोका सेवक किस कर्मसे बनता है ? दृढ़शरीर तपःसूर सब जीवोंके आशापूरक जितेन्द्रिय और परोपकारी कौनसी गति प्राप्त करते है ? हे भट्टारक, बताइए ॥ १–६ ॥

[३] और भी मनुष्य, दूसरे-दूसरे दुखोंसे मुक्ति पाकर स्वर्ग कैसे जाते है ? चन्द्र, सूर्य, मङ्गल, राहु आदि एक दूसरेसे भिन्न कर्म करनेवाले क्यो है ? हंस, मेष, महिष, बैल, गज, मयूर, तुरङ्ग, रीछ, मृग, सांभर आदि देवोंके बीच उत्पन्न होकर उनके वाहन कैसे बनते हैं ? और जो यह वज्रसे प्रहार करनेवाले, ऐरावत गजपर आरूढ़ इन्द्र है, जिसकी सहस्रो किन्नर-दम्पति और बड़े-बड़े देव चारो ओरसे जय बोलते है, हा हा, हू हू नारे बोलते हुए तुम्बुरु तेज और तेण्ण जिसके चाकर है। चित्राङ्ग जिसके लिए मृदङ्ग वादक है। स्वयं तिलोत्तमा अप्सरा जिसके लिए प्रकट होती है। आखिर यह सब किस कर्मके फलसे होता है ? जो स्वयं

घत्ता

अप्पणु असुर-सुरहुँ अब्भन्तरें मोक्खु जेम थिउ सव्वहुँ उप्परें ।
दीसइ जसु एवहु पहुत्तणु पत्तु फलेण वेण इन्दत्तणु' ॥६॥

[४]

त वयणु सुणेंवि कुलभूसणेंण । कन्दप्प- दप्प- विद्धंसणेंण ॥१॥
सुणु अक्खमि वुच्चइ तेण वलु । आयण्णहि धम्महों तणउ फलु ॥२॥
महु मज्जु मसु जो परिहरइ । छज्जीव-णिकायहों दय करइ ॥३॥
पुणु पच्छइ सल्लेहणें मरइ । सो मोक्ख महा-पुरें पइसरइ ॥४॥
जो घइँ दरिसावइ पाणिवह । अण्णु वि महु-मँसहों तणिय कह ॥५॥
सो जोणी जोणि परिब्भमइ । चउरासी लक्ख जाम कमइ ॥६॥
एँउ सुकिय-दुक्किय कम्म-फलु । सुणु एवहिँ सच्चहों तणउ फलु ॥७॥
तुल-तोलिय महि स-महीहरिय । स-सुरासुर स-घण स-सायरिय ॥८॥

घत्ता

वरुणु कुबेरु मेरु कइलासु वि तुल-तोलिउ तइलोक्कु असेसु वि ।
तो वि ण गरुवत्तणउ पगासिउ सच्चु स-उत्तरु सव्वहँ पासिउ ॥९॥

[५]

जो सच्चउ ण चवइ कापुरिसु । सो जीवइ जणवएँ तिण-सरिसु ॥१॥
जो णरु पर-दव्वु ण अहिलसइ । सो उत्तिम-सग्ग-लोएँ वसइ ॥२॥
जो घइँ रत्तिहिणु मूढ-मणु । चोरन्तु ण थक्कइ एक्कु खणु ॥३॥
सो हम्मइ छिज्जइ भिज्जइ वि । कप्पिज्जइ सूलें भरिज्जइ वि ॥४॥
जो दुद्धरु वम्भचेरु धरइ । तहों जमु आरुट्ठउ किं करइ ॥५॥
जो घइँ त जोणि चारु रमइ । सो पङ्कएँ भमरु जेम मरइ ॥६॥
जो करइ णिवित्ति परिग्गहहों । सो मोक्खहों जाइ सुहावहहों ॥७॥
जो घइँ अविअण्हु परिग्गहहों । सो जाइ पुरहों तमतमपहहों ॥८॥

असुरों और देवोंके बीच मोक्षकी तरह सबसे ऊपर रहता है, और जिसकी इतनी प्रभुता दीख पड़ती है, वह इन्द्रत्व किस फल से मिलता है" ॥ १–६ ॥

[४] रामके वचन सुनकर, कामका भी मान खण्डित करने वाले कुलभूषण मुनिने कहा—"सुनो, राम बताता हूँ। धर्मका फल सुनो। मधु, मद्य और मांसका जो त्याग करता है, छह निकायके जीवोंपर दया करता है और (अन्तमें) संल्लेखनापूर्वक मरण करता है, वह तो मोक्षरूपी महानगरमे प्रवेश करता है। परन्तु जो मधु-मांसका भक्षण करता है, प्राणियोंका वध करता है वह योनि-योनिमें घूमता हुआ चौरासी लाख योनियोंमें भटका करता है, यह पुण्य-पापका फल है, अब सत्यका फल सुनो। महीधर, सुर, असुर, धन और समुद्र पर्यन्त यथेच्छ धरती है, तथा वरुण, कुबेर, मेरु, कैलाश प्रभृति जितना भी त्रिभुवन है वह भी सत्यका गौरव व्यक्त करनेमे असमर्थ है। सत्य सबसे उत्तम महान् है ॥ १–६ ॥

[५] जो मनुष्य सत्यवादी नहीं, वह समाजमें मृगकी तरह नगण्य होकर जीता है। और जो दूसरेके धनकी इच्छा नहीं करता है वह स्वर्ग लोकमे जाता है। जो मूढ़बुद्धि दिन-रात एक क्षण भी चोरीसे बाज नहीं आता वह मारा जाता है और नरक-निकाय मे छेदा-भेदा-काटा जाता है। परन्तु जो दुर्धर ब्रह्मचर्य व्रत धारण करता है उसका यम रूठकर भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता। जो व्यक्ति स्त्री-योनिमे खूब रमण करता है कमलमे भौरेकी तरह उसकी मृत्यु हो जाती है। जो परिग्रहसे निवृत्त होता है वह मोक्षके सुखद पथपर अग्रसर होता है। और जो सदैव परिग्रह से अतृप्त होता है वह महानमप्रभ नरकमें वास करता है। अथवा कितना वर्णन किया जाय। जब एक-एक व्रत पालन करनेमे इतना फल

घत्ता

अहवइ णिव्वण्णिज्जइ केत्तिउ एक्केक्कहों वयहों फलु एत्तिउ ।
जो पइँ पञ्च वि धरइ वयाइँ तासु मोक्खु पुच्छिज्जइ काइँ ॥६॥

[६]

फलु एत्तिउ पञ्च-महव्वयहों । सुणु एवहिँ पञ्चाणुव्वयहों ॥१॥
जो करइ णिरन्तर जीव-दया । पविरलु असच्चु सच्चउ मि सया ॥२॥
किस हिंस अहिंस सउत्तरिय । ते णरय-महाणइ-उत्तरिय ॥३॥
जे णर स-दार-सतुट्ठ-मण । परहण- परणारी- परिहरण ॥४॥
अपरिग्गह-दाण-करण पुरिस । ते होन्ति पुरन्दर-समसरिस ॥५॥
फलु एत्तिउ पञ्चाणुव्वयहुँ । सुणु एवहिँ तिहि मि गुणव्वयहुँ ॥६॥
दिस-पच्चक्खाणु पमाण-वउ । खल-सगहु जासु ण वज्जियउ ॥७॥

घत्ता

इय तिहिँ गुणवएहिँ गुणवन्तउ अच्छइ सग्गेँ सुहइँ भुञ्जन्तउ ।
जासु ण तिहि मि मज्झेँ एक्कु वि गुणु तहों संसारहों छेउ कहि पुणु ॥८

[७]

फलु एत्तिउ तिहि मि गुणव्वयहुँ । सुणु एवहिँ चउ-सिक्खावयहुँ ॥१॥
जो पहिलउ सिक्खावउ धरइ । जिणवरेँ तिकाल-वन्दण करइ ॥२॥
सो णरु उप्पज्जइ जहिँ जेँ जहिँ । वन्दिज्जइ लोएँहिँ तहिँ जेँ तहिँ ॥३॥
जो पइँ पुणु विसयासत्त-मणु । वरिसहों वि ण पेच्छइ जिण-भवणु ॥४॥
सो सावउ मज्झेँ ण सावयहुँ । अणुहरइ णवर वण-सावयहुँ ॥५॥
जो वीयउ सिक्खावउ धरइ । पोसह-उववास-सयइँ करइ ॥६॥

प्राप्त होता है तो पाँचों व्रतोंके धारण करने पर 'जीव' के मोक्षका क्या पूछना ॥१-६॥

[६] पांच महाव्रतोंका यह फल है अपरं च—अणुव्रतो का फल सुनिए। जो सदैव जीव दया करता है, तथा झूठ थोड़ा और सच बहुत बोलता है, हिंसा थोड़ी और अहिंसा अधिक करता है, वह नरक रूपी महानदीका संतरण कर लेता है। जो मनुष्य अपनी स्त्रीमे संतुष्ट रहकर परस्त्री और परधनका त्याग करता है और परिग्रहसे रहित होकर दान करनेमे समर्थ है, वह इन्द्रके समान हो जाता है। पाँच अणुव्रतोंका यह फल है। अब तीन गुणव्रतोंका फल सुनिए। जिसने दिग्व्रत और भोगोपभोग परिमाणव्रत लिया है, और जो दुष्ट जीव, मुर्गा, बिल्ली आदिका संग्रह नहीं करता, वह इन तीन गुणोसे अन्वित होकर स्वर्गलोकमे सुखका भोग करता है, और जिसके इन तीनोंमेसे एक भी नहीं है, कहो उसके संसारका नाश कैसे हो सकता है ॥१-८॥

[७] इस प्रकार तीन गुणव्रतोंका इतना फल है। अब चार शिक्षा व्रतोका फल सुनो। जो पहला शिक्षा व्रत धारण करता है और जो तीन समय जिनकी वन्दना करता है। वह मनुष्य फिर कहीं भी उत्पन्न हो, लोकमे वन्दनीय हो उठता है। परन्तु जिसका मन विषयासक्त है, जो वर्षभरमे एक भी वार जिन-भवनके दर्शन करने नहीं जाता, वह श्रावकोंके वीचमे (रहकर) भी श्रावक नहीं है। प्रत्युत वह श्रृगालकी भाँति है। जो दूसरा शिक्षाव्रत धारण करता है। वह सैकड़ो प्रोपधोपवास करता है, वह मनुष्य देवत्वकी कामना करता है और सौधर्म स्वर्गमे अप्सराओ के वीचमे रमण करता है। जो तीसरा शिक्षाव्रत धारण करता है, तपस्वियोंको आहारदान देता है और सम्यक्त्व धारण करता

सो णरु देवत्तणु अहिलसइ । सोहम्मेँ वहुव-मज्झेँ रमइ ॥७॥
जो तइयउ सिक्खावउ धरइ । तवसिहिँ आहार-दाणु करइ ॥८॥
अण्णु वि सम्मत्त-भारु वहइ । देवत्तणु देवलोएँ लहइ ॥९॥
जो चउथउ सिक्खावउ धरइ । सण्णासु करेप्पिणु पुणु मरइ ॥१०॥
सो होइ तिलोयहोँ वड्डियउ । णउ जम्मण-मरण-विओअ-भउ ॥११॥

घत्ता

सामाइउ उववासु स-भोयणु पच्छिम-कालेँ अण्णु सल्लेहणु ।
चउ सिक्खावयाइँ जो पालइ सो इन्दहोँ इन्दत्तणु टालइ ॥१२॥

[८]

एँउ फलु सिक्खावएँ सथविएँ । सुणु एवहिँ कहमि अणत्थमिएँ ॥१॥
वरि खद्धु मसु वरि मज्जु महु । वरि अलिउ वयणु हिंसाएँ महु ॥२॥
वरि जीविउ गउ सरीरु दहसिउ । णउ रयणिहिँ भोयणु अहिलसिउ ॥३॥
पुव्वण्णउ गण-गन्धव्वयहुँ । मज्जण्हउ सव्वहुँ देवयहुँ ॥४॥
अवरण्हउ पियर-पियामहहुँ । णिसि रक्खस-भूय-पेय-गहहुँ ॥५॥
णिसि-भोयणु-जेण ण परिहरिउ । भणु तेण काइँ ण समायरिउ ॥६॥
किमि-कीड-पयङ्ग-सयइँ असइ । कुसरीर-कुजोणिहिँ सो वसइ ॥७॥
जो घइँ णिसि-भोयणु उम्महइ । विमलत्तणु विमल-गोत्तु लहइ' ॥८॥

घत्ता,

सुअउ ण सुणइ ण दिट्ठउ देक्खइ केण वि वोल्लिउ कहोँ वि ण अक्खइ ।
भोअणेँ मउणु चउत्थउ पालइ सो सिव-सासय-गमणु णिहालइ' ॥९॥

[९]

परमेसरु सुट्ठु एम कहइ । जो जं मग्गइ सो तं लहइ ॥१॥
सम्मत्तइँ को वि को वि वयइँ । को वि गुण-गण-वयण-रयण-सयइँ ॥२॥
तवचरणु लइज्जइ पत्थिवेँण । वसत्थल-णयर-णराहिवेँण ॥३॥

●

है, वह देवलोकमें देवत्वको पाता है। जो चौथा शिक्षाव्रत धारण करता है और संन्यासपूर्वक मरण धारण करता है वह त्रैलोक्य मे भी वृद्धिको पाता है। उसे जन्म मरण और वियोगका भय नहीं होता। इस प्रकार सामायिक, उपवास, आहारदान और मरण-कालमे संलेखना इन चार शिक्षाव्रतोका जो पालन करता है, वह इन्द्रका इन्द्रपन टालनेमे भी समर्थ है ॥१-१२॥

[८] शिक्षाव्रतका फल यह है। अब अनर्थदंडव्रतका फल सुनो। मांस खाना, मद्य और मधु पान करना, हिंसा करना, झूठ बोलना, किसीका जीव अपहरण कर लेना अच्छा, पर रात्रिभोजन करना ठीक नहीं, चाहे शरीर स्खलित हो जाय। गंधर्व देव दिनके पूर्वमे, सभी देव दिनके मध्यमे, पिता पितामह दिनके अंतमे तथा राक्षस भूत पिशाच और ग्रह रातमे खाते हैं। इसलिए जिसने रात्रिभोजन नहीं छोड़ा बताओ उसने कौनसा आचरण नहीं किया (अर्थात् सभी कुछ किया)। वह सैकड़ो कृमि पतंगो और कीड़ों का भक्षण करता है और कुयोनियोमे वास करता है। (इसके विपरीत) जो रात्रिभोजनका त्याग करता है वह विमल शरीर और उत्तम गोत्रमे उत्पन्न होता है। जो भोजन करनेमे मौनका पालन करता है, सुनकर भी नही सुनता, देखकर भी नहीं देखता, किसीके बुलाने पर भी नहीं बोलता वह शाश्वत मोक्षको पाता है ॥१-९॥

[९] जब परमेश्वर कुलभूषणने इस प्रकार (धर्मका) सुंदर प्रतिपादन किया और जिसने जो व्रत मॉगा उसे वह व्रत मिल गया। किसीने सम्यक्त्व ग्रहण किया तो किसीने किसी और व्रत को। किसीने गुणसमूहसे भरे वचन रूपी रत्नोको ग्रहण किया। वंशस्थलके राजाने तपस्या अंगीकार कर ली। देवता लोग उनकी

गय वन्दणहत्ति करेवि सुर। जाणइएँ धरिज्जइ धम्म-धुर ॥४॥
राहवेँण वि वयइँ समिच्छियइँ। गुरु-दिण्णइँ सिरेँण पडिच्छियइँ ॥५॥
वउ णवर ण थक्कइ लक्खणहोँ। वालुअपह-णरय-णिरिक्खणहोँ ॥६॥
तहिँ तिण्णि वि कइ वि दिवस थियइँ। जिण-पुज्जउ जिण-ण्हवणइँ कियइँ ॥७॥
णिग्गन्थ-सयइँ भुन्जावियइँ। दीणहँ दाणइँ देवावियइँ ॥८॥

घत्ता

तिहुअण-जण-मण-णयणाणन्दहोँ वन्दणहत्ति करेवि जिणिन्दहोँ।
जाणइ-हरि-हलहरइँ पहिट्ठइँ तिण्णि वि दण्डारण्णु पइट्ठइँ ॥९॥

[१०]

दिट्ठ महाडइ णाइँ विलासिणि। गिरिवर-थणहर-सिहर-पगासिणि ॥१॥
पञ्चाणण-णह-णियर-वियारिय। दीहर-सर-लोयण-विप्फारिय ॥२॥
कन्दर-दरि-मुह-कुहर-विहूसिय। तरुवर-रोमावलि-उद्धूसिय ॥३॥
चन्दण-अगरु-गन्ध-ढिविडिक्किय। इन्दगोव-कुङ्कुम-चच्चिक्किय ॥४॥
अहवइ कि वहुणा वित्थारेँ। ण णच्चइ गय-पय-सचारेँ ॥५॥
उज्झर-मुरवप्फालिय-सद्देँ। वरहिण-थिर-सुपरिट्ठिय-छन्देँ ॥६॥
महुअरि-तिय-उवगीय-वमालेँ। अहिणव-पल्लव-कर-सञ्चालेँ ॥७॥
सीहोरालि-समुट्ठिय-कलयलु। णाइँ पढइ मुणि-सुव्वय-मङ्गलु ॥८॥

घत्ता

तहोँ अब्भन्तरेँ अमर-मणोहरु णयण-कडक्खिउ एक्कु लयाहरु।
तहिँ रइ करेँवि थियइँ सच्छन्दइँ जोगु लएविणु जेम मुणिन्दइँ ॥९॥

[११]

तेहिँ तेहएँ वणेँ रिउ-डमर-करु। परिभमइ समुद्दावत्त-धरु ॥१॥
आरण्ण-गइन्देँ समारुहइ। वण-गोवउ वण-महिसिउ दुहइ ॥२॥

वंदना-भक्ति करके चले गये। तब सीतादेवीने भी धर्मकी (धुरा) शीलव्रतको ग्रहण किया। रामने भी व्रत ग्रहण किया। परंतु बालुकप्रभ नरकमें जानेवाले लक्ष्मणने एक भी व्रत ग्रहण नहीं किया। कितने ही दिनो तक वे लोग वहीं रहे। वहाँ उन्होंने जिन-पूजा और जिनका अभिषेक किया। दीनोंको दान दिलवाया। सैकड़ों निर्ग्रंथ साधुओंको आहारदान दिया। उसके बाद, त्रिभुवनानंददायक जिनवरकी वंदना-भक्ति करके उनलोगोंने बड़े हर्षके साथ दंडक वनकी ओर प्रस्थान किया ॥१-६॥

[१०] दंडकवनकी वह अटवी उन्हें विलासिनी स्त्रीकी तरह दिखाई पड़ी। वह सिंहोके नखसमूहसे विदारित, चोटियोंके रूपमें अपने स्तन प्रकट कर रही थी। बड़े-बड़े सरोवर रूपी नेत्रोंसे विस्फारित, कंदरा और घाटियोंके मुखकुहरोंसे विभूषित, वृक्ष रूपी रोमराजिसे अलकृंत, चंदन और अगरु (इस नामके वृक्ष) से अनुलिप्त, तथा वीरवहूटी रूपी केशरसे अंचित थी। अथवा अधिक विस्तारसे क्या, मानो वह दंडक अटवी गजोंके पदसंचार के वहाने नृत्य कर रही थी। निर्झरोके स्वरोंमें मृदंगकी ध्वनि थी, मयूरोंके स्वर ही प्रतिष्ठित छंद थे। मधुकरियोंकी सुंदर कल-कल ध्वनि गीत थे। नव पल्लवोके से वह अपने हाथ मटका रही थी। सोहोरालीसे उठा हुआ कल-कल स्वर ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो वह अटवी मुनिसुव्रत (भगवान्) का मंगल पाठ गान कर रही हो। उसके भीतर उन्हें, अमरोकी भाँति सुन्दर एक लतागृह दिखाई दिया। स्वच्छंद क्रीड़ा करते हुए वे लोग उसमें उसीप्रकार रहने लगे जिस प्रकार मुनींद्र योग ग्रहण कर रहने लगते हैं ॥१-१०॥

[११] शत्रुभयङ्कर लक्ष्मण उस वनमें अपना समुद्रावर्त धनुष लेकर घूमने लगे। कभी वह वनगजपर जा चढ़ते और

त खीरु वि चिरिडिहिल्लु महिउ । जाणइहेँ समप्पइ घिय-सहिउ ॥३॥
स वि पक्कावइ घण-हण्डियहिँ । वण-धण्णन्दुलेँहिँ सुकण्डिएँहिँ ॥४॥
णाणाविह - फल-रस - तिम्मणेँहिँ । करवन्द-करीरेँहिँ सालणेँहिँ ॥५॥
इय विविह-भक्ख भुञ्जन्ताहुँ । वण-वासेँ तिहि मि अच्छन्ताहुँ ॥६॥
मुणि गुत्त-सुगुत्त ताव अइय । असुदाणिय दोङ्ग-महव्वइय ॥७॥
कालामुह-कावालिय भगव । मुणि सकर तवण तवसि गुरव ॥८॥

घत्ता

वन्दाइरिय भोय पव्वइया हवि जिह भूइ-पुञ्ज-पच्छविया ।
ते जर-जम्मण-मरण-वियारा वण-चरियएँ पइसन्ति भडारा ॥९॥

[१२]

ज पइसन्त पदीसिय मुणिवर । सावय जिह तिह पणविय तरुवर ॥१॥
अलि-मुहलिय खर-पवणायम्पिय । 'थाहु थाहु' ण एम पजम्पिय ॥२॥
के वि कुसुम-पब्भारु मुअन्ति । पाय-पुज्ज ण विहि मि करन्ति ॥३॥
तो वि ण थक्क महव्वय-धारा । रामासमेँ पइसन्ति भडारा ॥४॥
रिसि पेक्खेप्पिणु सीय विणिग्गय । ण पच्चक्ख महा-वणदेवय ॥५॥
'राहव पेक्खु पेक्खु अच्छरियउ । साहु-जुअलु चरियएँ णीसरियउ' ॥६॥
वलु वयणेण तेण गञ्जोल्लिउ । 'थाहु थाहु' सिरु णवेँ वि पवोल्लिउ ॥७॥
विणयङ्कुसेँण साहु-गय वालिय । किउ सम्मज्जणु पाय पखालिय ॥८॥

कभी वनकी गायो और भैसोंका दूध दुहने लगते। कभी दूध, दही और घी सहित मट्ठा (मही) लाकर जानकीको देते और सीता उनसे भोजन बनाती। इस प्रकार घन-हंडिय, वनधान्य, तन्दुल, सुकंड, तरह तरहके फलरस कढ़ी, करवंद, करीर, सालन आदिका विविध भोजन करते हुए वे तीनो अपना समय यापन करने लगे। एक दिन जीवदयाके दानी, गुप्त और सुगुप्त नामके महाव्रती दो महामुनि आये। वे काला मुख (एक सम्प्रदाय और त्रिकाल भोगी) कापालिक (सम्प्रदाय विशेष और कामकषायसे दूर) भगवा (भगवा वस्त्र धारी और पूज्य शंकर) शंकर (शिव और सुख देनेवाले) तपन शील (आदित्य और ऋद्धिसे युक्त) वनवासी (एक सम्प्रदाय और वनमें रहनेवाले) गरु महान्, वन्दनीय सेवनीय, संन्यासी और यज्ञकी तरह धूलिसे आच्छादित थे। जरा जन्म मरणका नाश करनेवाले वे दोनो (महामुनि) चर्याके लिए निकले ॥१-६॥

[१२] आते हुए उन यतियोको देखकर मानो वृक्ष श्रावकोंकी भाँति नत हो गये। भ्रमरोसे गुञ्जित और पवनसे कंपित वे मानो कह रहे थे, "ठहरिए ठहरिए"। कोई वृक्ष फूलोंकी वर्षा कर रहे थे मानो विधाता ही उनकी फूलोसे पादपूजा कर रहा था। तब भी महाव्रत धारी वे ठहरे नहीं। चलकर वे दोनो भट्टारक रामके आश्रमके निकट पहुँचे। मुनियोको देखते ही सीता देवी बाहर निकलीं मानो साक्षात् वनदेवी ही बाहर आई हो। वह बोली 'राम देखो देखो' अचरजकी बात है दो यति चर्याके लिए निकले हैं।' यह सुनकर राम एकदम पुलकित हो उठे। और माथा झुकाकर, आह्वान करते हुए उन्होने कहा—"ठहरिए ठहरिए"। तब विनयरूपी अङ्कुशसे वे दोनो साधुरूपी महागज रुक गये। रामने

दिण्ण ति-वार धार सलिलेण वि । कम चच्चिय गोसीर-रसेण वि ॥९॥
पुप्फक्खय - वलि - दीवङ्गारेँ हिँ । एम पयच्चेँ वि अट्ठ-पयारेँ हिँ ॥१०॥

घत्ता

वन्दिय गुरु गुरु भत्ति करेवि लग्ग परीसवि सीयाएवि ।
मुह-पिय अच्छ पच्छ मण-भाविणि भुत्त पेज्ज कामुएँ हिँ व कामिणि ॥११॥

[१२]

दिण्णु पाणु पुणु मुहहों पियारउ । चारण-भोग्गु जेम हलुवारउ ॥१॥
सिद्धउ सिद्धु जेम सिद्धीहउ । जिणवर-आउ जेम अइदीहउ ॥२॥
पुणु अग्गिमउ दिण्णु हियइच्छिउ । जिह सु-कलत्तु सु णेहु-स-इच्छउ ॥३॥
सुद्धइँ पुणु सालणइँ विचित्तइँ । तिक्खइँ णाइँ विलासिणि-चित्तइँ ॥४॥
दिण्णइँ पुणु तिम्मणइँ मणिट्ठइँ । अहिणव-कइ-वयणा इव मिट्ठइँ ॥५॥
पच्छइ सिसिरु स-मच्छरु सुद्धउ । दुट्ठ-कलत्त जेम अइ-थद्धउ ॥६॥
पुणु मय-सलिलु दिण्णु सीयालउ । ण जिण-वयणु पाव-पक्खालउ ॥७॥
लीलऍ जिमिय भडारा जावेँहिँ । पञ्चच्छरिउ पदरिसिउ तावेँहिँ ॥८॥

घत्ता

दुन्दुहि गन्धवाउ रयणावलि साहुक्कारु अण्णु कुसुमञ्जलि ।
पुण्ण-पवित्तइँ सासय-दूअइँ पञ्च वि अच्छरियइँ सइँ भूअइँ ॥९॥

●

उनके चरण साफकर, तीन बार जलकी धारा छोड़कर उनका प्रक्षालन किया। उसके अनन्तर, चंदन रसका लेपकर आठ प्रकारके द्रव्य (पुष्प, अक्षत, नैवेद्य, दीप धूपादि) से पूजा की। खूब वन्दना-भक्तिके अनन्तर सीता देवीने आहार देना शुरू किया। कामुकके लिए कामिनीकी तरह मनभाविनी सीता देवीने बादमें मुखमधुर भोजन और पेय दिया॥१-११॥

[१२] फिर उसने मुखको प्रिय लगनेवाला स्वादिष्ट, तपस्वीके योग्य हलका भोजन दिया। वह भोजन सिद्धिके लिए अभिलाषी सिद्धकी तरह सिद्ध था, जिनवरकी आयुकी तरह सुदीर्घ था। फिर सीताने उन्हें सुन्दर दाल वगैरह दी। वह दाल, सुकलत्रकी तरह सस्नेह (प्रेम और घी से युक्त) और वांछनीय थी। फिर उन्हें विलासिनियोंके चित्तकी भाँति शुद्ध विचित्र शालन परसा गया। उसके अनन्तर अभिनव कवि-वचनोंकी तरह मीठी मनप्रिय कढ़ी दी। दुष्ट कलत्रकी भाँति थद्ध (गाढ़ी और ढीठ) दही मलाई दी। उसके अनन्तर, पाप धोनेवाले जिन-वचनोंकी तरह, अत्यन्त शीतल और सुगन्धित जल दिया। इस प्रकार जब लीला-पूर्वक उन परम भट्टारकोंने भोजन समाप्त किया तो पाँच आश्चर्य प्रकट हुए। दुंदुभिका बज उठना, सुगन्धित पवनका बहना, रत्नोंकी वृष्टि, आकाशमें देवोंका जय-जय कार, और पुष्पोंकी वर्षा। पुण्यसे पवित्र शासन दूतोंकी तरह ये आश्चर्य प्रकट हुए॥१-६॥

●

[३५. पञ्चतीसमो संधि]

गुत्त-सुगुत्तहँ तणेँण पहावें रामु स-सीय परम-सब्भावें ।
देवें हिं दाण-रिद्धि खणें दरिसिय वल-मन्दिरें वसुहार पवरिसिय ॥

[१]

जाय महग्घ रयण सु-पगासइँ । लक्खहँ तिण्णि सयइँ पञ्चासइँ ॥१॥
वरिसेँ वि रयण-वरिसु सइँ हत्थें । रामु पससिउ सुरवर-सत्थें ॥२॥
'तिहुवणेँ णवर एक्कु वलु धण्णउ । दिव्वाहारु जेण वणें दिण्णउ' ॥३॥
मणें परितुट्ठइँ अमर-सयाइँ । 'अण्णें दाणें किज्जइ काइँ ॥४॥
अण्णें धरिउ भुवणु सयरायरु । अण्णें धम्मु कम्मु पुरिसायरु ॥५॥
अण्णें रिद्धि-विद्धि वसुब्भउ । अण्णें पेम्मु विलासु स-विब्भमु ॥६॥
अण्णें गेउ वेउ सिद्धक्खरु । अण्णें जाणु झाणु परमक्खरु ॥७॥
अण्णु मुएवि अण्णु किं दिज्जइ । जेण महन्तु भोगु पाविज्जइ ॥८॥

घत्ता

अण्ण-सुवण्ण-कण्ण-गोदाणहुँ मेइणि-मणि-सिद्धन्त-पुराणहुँ ।
सव्वहुँ अण्ण-दाणु उच्चासणु पर-सासणहुँ जेम जिण-सासणु' ॥९॥

[२]

दाण-रिद्धि पेक्खेवि खगेसरु । णवर जडाइ जाउ जाईसरु ॥१॥
गग्गर-वयणउ मुणि-अणुराए । पडउ णाइँ सिरें मोग्गर-घाए ॥२॥
जिह जिह सुमरइ णियय-भवन्तरु । तिह तिह मेल्लइ असु णिरन्तरु ॥३॥
'मइँ पावेण तिलोयाणन्दहुँ । पञ्च-सयइँ पीलियइँ मुणिन्दहुँ' ॥४॥

पैतीसवीं संधि

गुप्त सुगुप्त मुनिके प्रभाव तथा राम और सीताके सद्भावसे, देवोंने दानका प्रभाव दिखानेके लिए रामके आश्रममें (तत्काल) रत्नोंकी वृष्टि की।

[१] उन्होने साढ़े तीन लाख बहुमूल्य रत्नोंकी वृष्टि की। इस प्रकार अपने हाथों रत्नोंकी वर्षा करके देवोंने रामकी प्रशंसा की, "तीनों लोकोंमें एक राम ही धन्य है जिन्होने वनमे भी मुनियोके लिए आहार दान दिया। उन्होने आपसमे चर्चा की कि अन्नदान ही उत्तम है, दूसरे दानसे क्या ? अन्नसे चराचर विश्व पलता है। अन्नसे ही धर्म, अर्थ और काम पुरुपार्थ है। अन्नसे ही ऋद्धि वृद्धि और वंशकी समुत्पत्ति होती है। अन्नसे ही हाव-भाव सहित प्रेम और विलास उत्पन्न होते है। अन्नसे ही गेय वाद्य और सिद्धात्तर होते हैं। अन्नसे ही ज्ञान, ध्यान और परमाक्षरपद (सिद्धपद) प्राप्त होता है। अतः अन्नको छोड़कर और क्या दान किया जाय। अन्नदानसे बड़े भोग प्राप्त होते हैं। अन्नदान सुवर्ण, कन्या, गौ, धरती, मणि, शास्त्र और पुराणोंके दानसे महत्त्व-पूर्ण है। उनमे उसका स्थान वैसे ही ऊँचा है जैसे दूसरे शासनोंमे जिन शासनका स्थान ऊँचा है ॥१-६॥

[२] दानकी ऋद्धि देखकर पक्षिराज जटायुको अपना जाति-स्मरण हो आया। मुनिके प्रति भक्तिसे वह गद्गद हो उठा। उसे लगा जैसे उसके सिरपर वज्रका झटका लगा हो। ज्यो-ज्यो वह अपने जन्मान्तरोकी याद करता त्यों-त्यो उसे अश्रु वेगसे वहने लगते। वह वार-वार पश्चात्ताप करता कि "मुझ पापीने त्रिभुवना-नंददायक पॉच सौ मुनियोको पीड़ित किया था।" इस प्रकार

एम पहाउ करन्तु विहङ्गउ । गुरु-चलणेहिँ पडिउ मुच्छङ्गउ ॥५॥
पय-पक्खालण - जलेंणासासिउ । राहवचन्दें पुणु उवयासिउ ॥६॥
सीयएँ वुत्तु 'पुत्त मह एवहिँ । छुडु वड्डउ छुडु धरउ सुखेवेहिँ' ॥७॥
ताव रयण-उज्जोवें भिण्णा । जाय पक्ख चामीयर-वण्णा ॥८॥

घत्ता

विद्दुम-चञ्चु णील-णिह-कण्ठउ पय-वेरुलिय-वण्ण मणि-पट्टउ ।
तक्खणें पञ्च-वण्णु णिव्वडियउ वीयउ रयण-पुञ्जु णं पडियउ ॥९॥

[३]

भावें विहि मि पयाहिण देहन्तउ । णड्ड जिह हरिस-विसाएँहिँ जन्तउ ॥१॥
दिट्ठु पक्खि ज णयणाणन्दणु । भणइ णवेप्पिणु दसरह-णन्दणु ॥२॥
' हे मुणिवर गयणङ्गण-गामिय । चउगइ-दुक्ख- महाणइ - णामिय ॥३॥
कहि कज्जेण केण सच्छायउ । पक्खि सुवण्ण-वण्णु ज जायउ' ॥४॥
तं णिसुणेवि वुत्तु णीसङ्गें । 'सयलु वि उत्तिम-पुरिस-पसङ्गें ॥५॥
णरु हलुवो वि होइ गरुआरउ । रुक्खु वि सेल-सिहरें चड्ढारउ ॥६॥
मेरु-णियम्वें तिणु वि हेमुज्जलु । सिप्पिउडेसु जलु वि मुत्ताहलु ॥७॥
तिह विहङ्गु मणि-रयणुज्जोएं । जाउ सुवण्ण-वण्णु मुणि-तोएं ॥८॥

घत्ता

तं णिसुणेवि वयणु असगाहँ पुच्छिउ पुणु वि णाहु णरणाहें ।
'विहलङ्घलु घुम्मन्तु विहङ्गउ कवणें कारणेण मुच्छङ्गउ' ॥९॥

[४]

भणइ ति-णाण - पिण्ड - परमेसरु । 'एहु विहङ्गु आसि रज्जेसरु ॥१॥
पटणु दण्डाउरु भुञ्जन्तउ । दण्डउ णामु वउद्धहँ भत्तउ ॥२॥
एक्क-दिवसें वारद्धिएँ चलियउ । ताव तिकाल-जोगि मुणि मिलियउ ॥३॥

प्रलाप करता हुआ वह मुनिके निकट गया। उनके चरणोंपर गिरते ही वह मूर्छित हो गया। तब रामने चरणोंके प्रक्षालनका जल छिड़ककर उसकी मूर्छा दूर की। यह सब देखकर सीता देवीने कहा—"इस समयसे यह मेरा पुत्र है।" और उसे उठाकर सुखसे रख दिया। रत्नोंकी आभासे उस पक्षीके पंख सोनेके हो गये। चोंच मूँगेकी, कंठ नीलमका, पीठ मणिकी, चरण वैदूर्य मणिके। इस प्रकार तत्काल उसके पाँच रंग हो गये। वह ऐसा जान पड़ रहा था मानो दूसरी पंच रत्न-वृष्टि हुई हो ॥१-९॥

[३] हर्ष और विषादसे भरे हुए नटकी भाँति उस पक्षि-राजने दोनो मुनियोंकी भावसहित प्रदक्षिणा दी। उस आनंद-दायक पक्षीको देखकर, दशरथ-पुत्र रामने प्रणामपूर्वक मुनिसे पूछा, 'हे आकाशगामी और दुखरूपी महानदीके लिए नौका तुल्य, (कृपया) बताइए, यह सुन्दर कान्तिवाला पक्षी सोनेके रंगका कैसे हो गया?" यह सुनकर वह अनासंग मुनि बोले, "उत्तम नरकी संगतिसे सब कुछ संभव है। संगतिसे छोटा आदमी भी बड़ा आदमी बन जाता है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार पेड़ पर्वत की चोटीपर बड़ा हो जाता है और सुमेरु पर्वतपर तिनका भी सोनेके रंगका दिखाई देता है। सीपीमे पड़ा हुआ पानी मोती बन जाता है। इसी प्रकार यह पक्षी भी मणि-रत्नोंकी आभा और गंधोदकके (प्रभावसे) स्वर्णिम रंगका हो गया।" यह सुनकर रामने बिना किसी बाधाके पूछा—"विकलांग यह पक्षी, घूमता हुआ, किस कारणसे मूर्छित हो गया?" ॥१-९॥

[४] तब त्रिज्ञानपिंडके धारक परमेश्वर बोले, "पहले यह पक्षी दंडपुरमे दंडक नामका राजा था। वह बौद्ध धर्मका अनुयायी था। एक दिन वह आखेटके लिए वनमे गया। वहाँ

थिउ अत्तावणेँ लम्विय-वाहउ । अविचलु मेरु जेम दुग्गाहउ ॥४॥
त पेक्खेँवि आरुट्ठु महब्बलु । "अवसु अज्जु अवसवणु अमङ्गलु" ॥५॥
एम चवन्ते विसहरु घाएँवि । रोसेँ मुणिवर कण्ठेँ लाएँवि ॥६॥
गउ णिय-णयरु णराहिउ जावेँहिँ । थिउ णीसङ्कु णिरोहेँ तावेँहिँ ॥७॥
"एउ को वि फेडेसइ जइयहुँ । लम्विय हत्थुचायमि तइयहुँ" ॥८॥

घत्ता

जावण्णेक्क-दिवसेँ पहु आवइ तं जेँ भडारउ तहिँ जेँ विहावइ ।
गलएँ भुअङ्गम-मडउ णिवद्धउ कण्ठाहरणु णाइँ आइद्धउ ॥९॥

[५]

ज अविचलु वि दिट्ठु मुणि-केसरि । फेडेँवि विसहर-कण्ठा-मञ्जरि ॥१॥
वोल्लाविउ "वोल्लहि परमेसर । तव-चरणेण काइँ तवणेसर ॥२॥
खणिउ सरीरु जीउ खण-मेत्तउ । जो झायहि सो गयउ अतीतउ ॥३॥
तुहु मि खणिउ णऽज्ज वि सिद्धत्तणु । आयहोँ किं पमाणु किं लक्खणु" ॥४॥
सयलु णिरत्थु वुत्तु ज राए । मुणिवरु चवेँवि लग्गु णयवाए ॥५॥
"जइ पुणु सो जेँ पक्खु वोल्लेवउ । ता खण-सद्दु ण उच्चारेवउ ॥६॥
खणिउ खयारु णयारु वि होसइ । खण-सद्दहोँ उच्चारु ण दीसइ ॥७॥

घत्ता

अघडिउ अघडमाणु अघणन्तउ खणिए खणिउ खणन्तर-मेत्तउ ।
सुण्णेँ सुण्ण-वयणु सुण्णासणु सव्वु णिरत्थु वउद्धहुँ सासणु" ॥८॥

उसे त्रिकालज्ञ मुनि दिखे। वह आतापिनी शिलापर बैठे, हाथ ऊपर उठाये, ध्यानमें अवस्थित थे। सुमेरु पर्वतकी तरह अचल और दुर्ग्राह्य उन्हें देखते ही वह आगबबूला हो उठा। "आज अवश्य कोई न कोई अमंगल अपशकुन होगा"—यह सोचकर एक साँप मारा और उसे मुनिके गलेमें डाल दिया। राजा अपने नगर वापस आ गया। मुनि उस विरोधमें अनासंग रहे। उन्होंने अपने मनमें यह बात जान ली कि जब तक कोई (अपने आप) इस साँपको अलग नहीं करेगा, तबतक मैं अपने हाथ ऊपर ही उठाये रहूँगा। दूसरे दिन जब वह दंडक राजा फिर वहाँ गया तो उसने भट्टारकको वहीं देखा। उनके गलेमें पड़ा हुआ वह साँप कंठहारकी तरह शोभित था ॥१-६॥

[५] उन मुनिसिंहको (पहलेकी तरह) अविचल देखकर, उसने सर्पकी वह कंठ-मञ्जरी दूर कर दी। फिर उसने कहा—"बताइये परमेश्वर, इस तपके अनुष्ठानसे क्या होगा? यह शरीर क्षणिक है। जीव भी क्षण भर ठहरता है। जिसका ध्यान करते हो वह अतीत हो चुका है। तुम भी क्षणिक हो, और सिद्धत्व आज भी प्राप्त नहीं है, और फिर इस मोक्षका क्या प्रमाण है। उसका लक्षण क्या है?" परन्तु इस प्रकार राजाने जो कुछ कहा वह सब निरर्थक ही था क्योंकि मुनिने नयवादसे उसका उत्तर दे दिया। (उन्होंने कहा) "यदि क्षणिक पक्ष कहते हो, तो 'क्षण' शब्दका उच्चारण भी नहीं हो सकता। फिर तो 'क्ष' और 'ण' भी क्षणिक हो जायेंगे। तब क्षणिक शब्दका उच्चारण नहीं होगा। अघटित, अघटमान और अघटंत, क्षणिक, क्षणांतमात्र, शून्यसे शून्यासन कैसे सम्भव है। अतः बौद्धोंका सब शासन व्यर्थ है ॥१-८॥

[६]

खण-सद्देण णिरुत्तरु जायउ । पुणु वि पवोल्लिउ दण्डय-रायउ ॥१॥
"तो घइँ सव्वु अत्थि जं दीसइ । पुणु तवचरणु कासु किज्जेसइ" ॥२॥
त णिसुणेप्पिणु भणइ मुणीसरु । जो कइ-गवय वाइ वाईसरु ॥३॥
"अम्हइँ राय ण वोल्लहुँ एव । णेआइएँहिँ हसिज्जहुँ जेव ॥४॥
अत्थि णत्थि दोण्णि वि पडिवज्जहुँ । तुहुँ जिह णउ खणवाएँ भज्जहुँ" ॥५॥
त णिसुणेवि भणइ दणुदारउ । "जाणिउ परम-पक्खु तुम्हारउ ॥६॥
अत्थि ण अत्थि णिच्च-सदेहो । पुणु धवलउ पुणु सामल-देहो ॥७॥
पुणु वि मत्त-करि पुणु पञ्चाणणु । खत्तिउ वइसु सुद्दु पुणु वम्भणु" ॥८॥

घत्ता

भणिउ भडारउ "कि वित्थारें एक्कु चोरु चिरु धरिउ तलारें ।
गीवा-मुह-णासच्छि गविट्ठउ सासु लएन्तहुँ कहि मि ण दिट्ठउ ॥९॥

[७]

अहवइ एण काइँ सदेहें । अत्थि वि णत्थि वि णीसदेहें ॥१॥
जेत्थु अत्थि तहिँ अत्थि भणेवउ । जहिँ ण अत्थि तहिँ णत्थि भणेवउ" ॥२॥
सच्छन्देण णराहिउ भाविउ । लइउ धम्मु पुणु मुणि पाराविउ ॥३॥
साहुहुँ पञ्च सयइँ धरियाइं । णिसुणइँ तेसट्ठि वि चरियाइ ॥४॥
तो एत्थन्तरें जण-मण-भाविणि । कुइय खणद्धें दुण्णय-सामिणि ॥५॥
पुणु मयवद्धणु पुत्तु महन्तउ । "णरवइ जाउ जिणेसर-भत्तउ ॥६॥

घत्ता

तो वरि मन्तु कि पि मन्तिज्जइ जिणहरें सव्वु दव्वु पुञ्जिज्जइ ।
जेण गवेसण पहु कारावइ साहुहुँ पञ्च-सयइँ मारावइ" ॥७॥

[६] इस प्रकार क्षणिक शब्दसे निरुत्तर होकर राजा दंडकने फिर कहा, "जब सब अस्ति दिखाई देता है, तो फिर तप किसके लिए किया जाय।" यह सुनकर कवियो और वादियोके वाग्मी वह मुनि बोले, "जैसे नैयायिकोंकी हँसी उड़ाई जाती है वैसे हमसे नहीं कह सकते। हम अस्ति और नास्ति दोनो पक्षोंको मानते है। अतः तुम्हारे क्षणवादकी तरह हमारे (मतका) खण्डन नही हो सकता।" यह सुनकर दंडकराजने कहा, "तुम्हारा परम पक्ष मैंने जान लिया। अस्ति और नास्तिमे नित्य संदेह है। क्योंकि यह जीव कभी धवल होता है और कभी श्याम। फिर कभी मत्तगज तो कभी सिंह। फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र।" इसपर भट्टारकने उत्तर दिया, "एक चोरको चिरकालसे तलार (कोतवाल) ने पकड़ रखा है। गर्दन, मुख, नाक, ऑखसे रचित, श्वास लेता हुआ भी वह किसीको दिखाई नहीं देता। अधिक विस्तारसे क्या ॥१-६॥

[७] अथवा इस प्रकार सन्देह करना व्यर्थ है। अस्ति और नास्ति दोनो पक्ष सन्देहसे परे हैं। जहॉ अस्ति हो वहॉ अस्ति कहना चाहिए और जहॉ नास्ति हो वहॉ नास्ति कहना चाहिए। स्वच्छन्दतासे इस प्रकार विचार करनेपर राजा दण्डकने जैनधर्म अङ्गीकार कर लिया। उसने मुनिको घर आनेका आमंत्रण दिया। त्रेसठ प्रकारके चारित्रमे पारङ्गत, पॉच सौ साधुओंके साथ वह मुनि राजाके घर पहुँचे। यह देखकर जनमनको प्रिय लगनेवाली दुर्नयस्वामिनी उसकी पत्नी आधे ही पलमे आगबबूला हो उठी। वह अपने पुत्र मयवर्धनसे बोली, "राजेश्वर जिनका भक्त हो गया है। अच्छा हो कोई मन्त्र उपाय सोचा जाय। सब पूँजी इकट्ठी करके मन्दिरमे रख दो। राजा उसे खोजता हुआ वहॉ जायगा, और उन पॉच सौ मुनियोंको मरवा देगा ॥१-६॥

[८]

एक्क-दिवसेँ तं तेम कराविउ । जिणहरेँ सव्वु दव्वु पुञ्जाविउ ॥१॥
मयवद्धणेँण णिवहोँ वज्जरियउ । "तुम भण्डारु मुणिन्देँहिँ हरियउ" ॥२॥
तेँ आलावेँ दण्डयराएं । हसियउ पुणु पुणु सीह-णिणाएं ॥३॥
"पत्तिय सेल-सिहरेँ सयवत्तइँ । पत्तिय महियलेँ गह-णक्खत्तइँ ॥४॥
पत्तिय विवरिय चन्द-दिवायर । पत्तिय परिभमन्ति रयणायर ॥५॥
पत्तिय णहेँ हवन्ति कुलपव्वय । पत्तिय एक्कहिँ मिलिय दिसा-गय ॥६॥
पत्तिय णउ चउवीस वि जिणवर । पत्तिय णउ चक्कवइ ण कुलयर ॥७॥
पत्तिय णउ तेसट्ठि पुराणइँ । पञ्चेन्दियइँ ण पञ्च वि णाणइँ ॥८॥
सोलह सग्ग भग्गइँ उप्पत्तिय । मुणि चोरन्ति मन्ति मं पत्तिय" ॥९॥

घत्ता

जं णरवइ वोल्लिउ कइवारेँ मन्तिउ मन्तु पुणु वि परिवारेँ ।
"लहु रिसि-रूउ एक्कु दरिसावहुँ पुणु महएवि-पासु वइसारहुँ ॥१०॥

[९]

अवसेँ रोसेँ पुर-परमेसरु । मुणिवर घल्लेसइ रज्जेसरु" ॥१॥
एम भणेवि पुणु वि कोक्काविउ । तक्खणेँ मुणिवर-वेसु धराविउ ॥२॥
तेण समाणउ जण-मण-भाविणि । लग्ग वियारेँहिँ दुण्णय-सामिणि ॥३॥
तो एत्थन्तरेँ गञ्जोलिय-तणु । गउ णिय-णिवहोँ पासु मयवद्धणु ॥४॥
णरवइ पेक्खु पेक्खु मुणि-कम्मइँ । ढुक्कु पमाणहोँ वोल्लिउ जं मइँ ॥५॥
मूढा अवुह ण वुज्झहि अज्ज वि । हिउ भण्डारु जाव हिय भज्ज वि" ॥६॥

[८] एक दिन उसने वैसा ही करवा दिया। सारा खजाना जिन-मन्दिरमें रख दिया गया। मयवर्धनने राजासे कहा कि तुम्हारा भण्डार मुनियोंने चुरा लिया है। कुमारके इस प्रलापपर राजा सिंहनादमें अट्टहास करके बोला,"विश्वास करलो कि शैल शिखर-पर कमलपत्र हो सकते हैं, विश्वास कर लो कि ग्रह नक्षत्र धरतीपर आ सकते हैं। विश्वास कर लो कि सूर्य और चन्द्र पूर्वकी अपेक्षा पश्चिममे उग सकते हैं। विश्वास कर लो कि समुद्र घूम सकता है, विश्वास कर लो कि कुल पर्वत आकाशमें होते है, विश्वास कर लो कि चारो दिग्गज एक हो सकते हैं, विश्वास कर लो कि चौवीस तीर्थङ्कर नहीं हुए, विश्वास कर लो कि चक्रवर्ती और कुलधर नही हुए, विश्वास कर लो कि त्रेसठ पुराणपुरुप, पाँच इन्द्रियॉ, पॉच ज्ञान, सोलह स्वर्ग तथा जन्म और मरण नही होते, पर यह विश्वास कभी मत करो कि जैन मुनि चोरी करते हैं।" जव राजाने आदर पूर्वक ऐसा कहा तो फिर रानीने अपने परिवारके लोगोके साथ मन्त्रणा की। और यह निश्चय किया कि किसी एकको मुनिका रूप बनाकर रानीके निकट बैठा दिया जाय ॥१-१०॥

[६] तव अवश्य राजा क्रोधमे आकर इन मुनिवरोको मरवा देगा।" यह विचारकर तत्काल किसीको मुनिरूपमे वहॉ वैठा दिया तथा जनमनभाविनी रानी दुर्नयस्वामिनी उसके साथ विकार चेष्टाका प्रदर्शन करने लगी। तव इसी वीचमें पुलकित-शरीर पुत्र मयवर्द्धन दौड़ा-दौड़ा राजाके पास गया ओर वोला—"राजन्, देखो देखो, मुनियोका कर्म, जो कुछ मैंने निवेदन किया था उसका प्रमाण मिल गया। मूर्ख अज्ञानी तुम आज भी नहीं समझ सकते। भण्डारका तो उसने हरण किया ही था और आज स्त्रीका भी हरण कर लिया है। तुम जानवूझकर अपने मनमे मूर्ख वनते

घत्ता

जाणन्तो वि तो वि मणेँ मूढउ णरवइ कोव-गइन्दारूढउ ।
दिण्णाणत्ती णरवर-विन्दहुँ धरियइँ पञ्च वि सयइँ मुणिन्दहुँ ॥७॥

[१०]

पहु-आएसेँ धरिय भडारा । जे पञ्चेन्द्रिय - पसर-णिवारा ॥१॥
जे कलि-कलुस-कसाय-वियारा । जे संसार - घोर - उत्तारा ॥२॥
जे चारित्त-पुरहोँ पागारा । जे कमट्ठ - दुट्ठ - दणु - दारा ॥३॥
जे णीसङ्ग अणङ्ग-वियारा । जे भवियायण - अब्भुद्धारा ॥४॥
जे सिव-सासय-सुह - हक्कारा । जे गारव - पमाय - विणिवारा ॥५॥
जे दालिद्द-दुक्ख - खयकारा । सिद्धि - वरङ्गण - पाण - पियारा ॥६॥
जे वायरण-पुराणइँ जाणा । सिद्धन्तिय एक्केक्क-पहाणा ॥७॥
तेँ तेहा रिसि जन्तेँ छुहाविय । रसमसकसमसन्त पीलाविय ॥८॥

घत्ता

पञ्च वि सय पीलाविय जावँहिँ मुणिवर वेण्णि पराविय तावँहिँ ।
घोर-वीर-तवचरणु चरेप्पिणु आतावणेँ तव-तवणु तवेप्पिणु ॥९॥

[११]

केण वि ताम वुत्तु "म पइसहोँ । वेण्णि वि पाण लएप्पिणु णासहोँ ॥१॥
गुरु तुम्हारा आवइ पाविय । राएं जन्तेँ छुहेँवि पीलाविय" ॥२॥
त णिसुणेवि एक्कु मुणि कुद्धउ । णं खय कालेँ कियन्तु विरुद्धउ ॥३॥
घोरु रउद्दु झाणु आऊरिउ । वउ सम्मत्तु सयलु सचूरिउ ॥४॥
अप्पाणेणप्पाणु विहत्तिउ । तक्खणेँ छार-पुञ्जु परिअत्तिउ ॥५॥
जो कोवाणलु तेण विमुक्कउ । गउ णयरहोँ सवडम्मुहु ढुक्कउ ॥६॥

हो।" यह सुनते ही राजा दण्डक क्रोधरूपी महागज पर आसीन हो बैठा। उसने तुरन्त अपने आदमियोंको आदेश दिया कि इन पाँच सौ मुनियोंको पकड़ लो" ॥१-७॥

[१०] राजाके आदेशसे वे पाँचसौ मुनि बन्दी बना लिये गये। वे पञ्चेन्द्रियोंके प्रसारका निवारण करनेवाले, कलयुगके पाप और कषायोंको नष्ट करनेवाले, घोर संसारसे पार जानेवाले, चारित्ररूप नगरके प्राचीर, अष्ट दुष्ट कर्मोंको चूरनेवाले जितकाम, अनासङ्ग, भविकजनोंके उद्धारक, शाश्वत शिव सुखके उद्धारक, गर्हा और प्रमादके निवारक, दारिद्र्य और दुखके नाशक, सिद्धिरूपी नववधूके लिए प्राणप्रिय, व्याकरण और पुराणोंमे पारङ्गत, सिद्धान्त प्रवीण उनमे प्रत्येक अपनेमे प्रधान था। उस वैसे मुनि-समूहको, यन्त्रोंसे क्षुब्ध कर कसमसाता हुआ वह राजा पीड़ित करने लगा। जिस समय पाँच सौ ही साधु इस प्रकार पीड़ित हो रहे थे उसी समय आतापिनी शिलापर तप करके दो मुनिवर नगरकी ओर आ रहे थे ॥१-९॥

[११] उन्हें आते हुए देखकर किसीने कहा, "तुम दोनों नगरके भीतर प्रवेश मत करो, नहीं तो प्राणोंसहित समाप्त कर दिये जा सकते हो। तुम्हारा गुरु आपत्तिमे है। राजा उन्हें यन्त्रसे पीड़ा दे रहा है।" यह सुनते ही उनमेसे एक मुनि एकदम क्रुद्ध हो उठा। मानो क्षयकालमे यम ही विरुद्ध हो उठा हो। वह घोर रौद्रध्यानमे उतर आया। उसका समस्त व्रत और चारित्र नष्ट-भ्रष्ट हो गया। आत्मा आत्मासे विभक्त हो गई। उसी समय उसने अग्निपुंज छोड़ा। इस प्रकार उसने जो क्रोध-ज्वाला मुक्त की वह शीघ्र ही नगरके सम्मुख चली, चारों ओरसे वह नगर जलने लगा।

घत्ता

पट्टणु चाउद्दिसु संदीविउ स-घरु स-राउलु जालालीविउ ।
जं जं कुम्भ-सहसेँहिँ घिप्पइ विहि-परिणामेँ जलु वि पलिप्पइ ॥७॥

[१२]

पट्टणु दड्ढु असेसु वि जावेँहिँ । खल जम-जोह पराविय तावेँहिँ ॥१॥
ते तइलोक्कु वि जिणेँवि समत्था । असि-घण-सङ्कल-णियल- विहत्था ॥२॥
कक्कड-कविल-केस भीसावण । काल-कियन्त - लील-दरिसावण ॥३॥
कसण-सरीर वीर फुरियाधर । पिङ्गल-णयण फसर-मोग्गर-धर ॥४॥
जीह-ललन्त दन्त-उद्दन्तुर । उब्भड-वियड-दाढ भय-भासुर ॥५॥
जम-दूएहिँ तेहिँ कन्दन्तउ । णरवइ णिउ स-मन्ति स-कलत्तउ ॥६॥
गम्पिणु जमरायहोँ जाणाविउ । "एण मुणिन्द-णिवहु पीलाविउ" ॥७॥
त णिसुणेप्पिणु कुइउ पयावइ । "तीहि मि दरिसावहोँ गरुयावइ" ॥८॥

घत्ता

पहु-आएसेँ दुण्णय-सामिणि घत्तिय छट्ठहिँ पुढविहिँ पाविणि ।
जहिँ दुक्खइँ अइ-घोर-रउद्दइँ णवराउसु वावीस-समुद्दइँ ॥९॥

[१३]

अण्णोण्णेण जेत्थु हक्कारिउ । अण्णोण्णेण पहर-णिद्दारिउ ॥१॥
अण्णोण्णेण दलेँवि दलवट्टिउ । अण्णोण्णेण हणेँवि णिव्वट्टिउ ॥२॥
अण्णोण्णेण तिसूलेँ भिण्णउ । अण्णोण्णेण दिसा-वलि दिण्णउ ॥३॥
अण्णोण्णेण कढाहेँ पमेल्लिउ । अण्णोण्णेण हुआसणेँ पेल्लिउ ॥४॥
अण्णोण्णेण वइतरणिहेँ घत्तिउ । अण्णोण्णेण धरेँवि णिज्जन्तिउ ॥५॥
अण्णोण्णेण सिलहु अप्फालिउ । अण्णोण्णेण दुहाएँहिँ फालिउ ॥६॥
अण्णोण्णेण धरेँवि आवीलिउ । अण्णोण्णेण वत्थु जिह पीलिउ ॥७॥
अण्णोण्णेण घरट्टएँ दलियउ । अण्णोण्णेण पयरु जिह मिलियउ ॥८॥
अण्णोण्णेण वि कूवेँ पमुक्कउ । अण्णोण्णेण धरेप्पिणु रुक्कउ ॥९॥

सारी धरती और राजकुल आगकी लपटोंमें घिर गये। उसपर जो सहस्रों घड़े जल डाला जाता वह भी भाग्यके परिणामसे जल उठता था ॥१-७॥

[१२] इस प्रकार सम्पूर्ण नगरके जलकर राख हो जानेपर यमके योधा आ पहुँचे। तलवार, मजबूत सांकले और निगड उनके हाथमे थे। रूखे और कपिल रंगके बाणोंसे वे अत्यन्त भयानक थे। वे तरह-तरहकी लीलाएँ करने लगे। कंपित अधर पीतनेत्र और श्याम शरीर वे वीर झसर और मुद्गर लिये हुए थे। उनकी जीभ लपलपाती, दाँत लम्बे, और दाढ़ें निकली हुई थी। भयङ्कर वे यमदूत पत्नी सहित विलखते हुए राजाको वहाँसे ले गये। आकर उन्होंने यमराजसे कहा,"इन्होंने मुनिसमूहको पीड़ा दी है"। यह सुनकर प्रजापति यम एकदम क्रुद्ध होकर बोला, "इन घमण्डियोंको भी वही पीड़ा दो।" प्रभु यमके आदेशसे उन्होंने दुर्नय-स्वामिनी को छठे नरकमे डाल दिया। उसमे घोर दारुण दुःख थे और आयु बाईस सागर प्रमाण थी ॥१-६॥

[१३] वहाँ एक दूसरेको ललकारकर प्रहार करते, एक दूसरे पर आक्रमणकर चकनाचूर करते, मार-मारकर, एक दूसरेको भगा देते। एक दूसरेका त्रिशूलसे भेदन करते, एक दूसरेको दिशा बलि देते, एक दूसरेको कड़ाहीमे डाल देते, एक दूसरेको आगमें झोक देते, एक दूसरेको वैतरणीमे डाल देते, एक दूसरेको पकड़ कर पराजित कर देते, एक दूसरेको चट्टानपर पटकते, एक दूसरेको दुहागसे खंडित करते। एक दूसरेको पकड़कर पीड़ा देते। एक दूसरेको (जड़) वस्तुओंकी तरह चपेटते, एक दूसरेको चक्की में पीस देते। एक दूसरेको बाणोसे वेध देते, एक दूसरेको पकड़कर रोक लेते। एक दूसरेको कुँएमे फेंक देते, एक दूसरेको रोक लेते।

घत्ता

अण्णोण्णेण पलोइउ रागं अण्णोण्णेण वियारिउ खग्गें ।
अण्णोण्णेण गिलिज्जइ जेत्थु दुण्णय-सामिणि पत्तिय तेत्थु ॥१०॥

[१४]

अण्णु वि कियउ जेण मन्तित्तणु । घत्तिउ असिपत्तवणें अलक्खणु ॥१॥
जहिं त तिणु मि सिलीमुह-सरिसउ । अण्णु वि अग्गि-वण्णु णिप्फरिसउ ॥२॥
जहिं तेलोह-रुक्ख कण्टाला । असि-पत्तल असराल विसाला ॥३॥
दुग्गम दुण्णिरिक्ख दुल्ललिया । णाणाविह - पहरण - फल-भरिया ॥४॥
जहिं णिवडन्ति ताहँ फल-पत्तइँ । तहिं छिन्दन्ति णिरन्तर गत्तइँ ॥५॥
त तेहउ वणु मुएँ वि पणट्ठउ । पुणु वइतरणिहेँ गम्पि पइट्ठउ ॥६॥
जहिं त सलिलु वहइ दुग्गन्धउ । रस-वस-सोणिय-मस - समिद्धउ ॥७॥
उण्हउ खारु तोरु अइ विरसउ । मण्ड पियाविउ पूय-विमिस्सउ ॥८॥

घत्ता

इय सताव-दुक्ख-सतत्तउ खणेँ खणेँ उप्पज्जन्तु मरन्तउ ।
थिउ सत्तमएँ णरएँ मयवद्धणु मेइणि जाम मेरु गयणङ्गणु ॥९॥

[१५]

ताव विरुद्धएहिँ हक्कारिउ । णरवइ णारएहिँ पच्चारिउ ॥१॥
"मरु मरु सभरु दुच्चरियाइ । जाइँ आसि पइँ सचरियाइ ॥२॥
पञ्चसयइँ मुणिवरहुँ हयाइ । लइ अणुहुञ्जहि ताइँ दुहाइ" ॥३॥
एम भणेप्पिणु खग्गेँहिँ छिण्णउ । पुणु वाणेँहिँ भल्लेहिँ भिण्णउ ॥४॥
पुणु तिलु तिलु करवत्तेँहिँ कप्पिउ । पुणु गिद्धहुँ सिव-साणहुँ अप्पिउ ॥५॥
पुणु पेल्लाविउ मग्ग-गइन्देँहिँ । पुणु वेढाविउ पण्णय-विन्देँहिँ ॥६॥
पुणु खण्डिउ पुणु जन्तेँ छुहाविउ । अद्धु सहासु वार पीलाविउ ॥७॥
दुक्खु दुक्खु पुणु कह वि किलेसेँहिँ । परिभमन्तु भव-जोणि-सहासेँहिँ ॥८॥

एक दूसरेको रागसे देखकर, फिर कृपाणसे टुकड़े-टुकड़े कर देते। एक दूसरेको लील जाते। दुर्नयस्वामिनी इसी नरकमे पहुँची ॥१-१०॥

[१४] और भी जिसने मंत्रणा की थी, गुणहीन उसे असि-पत्रवन नरक मेडाल दिया गया। वहॉके तिनके तक वाणोके समान हैं। और पेड़ आगके रंगके है वहॉ तेलोहके कटीले झाड़ है। तलवारकी तरह उसके पत्ते है। वह बड़ा विकराल, दुर्गम और दुर्दर्शनीय है तथा दुर्ललित है। तरह-तरहके अस्त्रोके समान फलोसे लदा हुआ है। जहॉ भी उसके पत्ते गिरते है उनसे शरीर निरन्तर छिन्न-भिन्न होता रहता है। उनसे नष्ट होकर, फिर वह वैतरणी नदीमे जा गिरता है जो अत्यन्त दुर्गन्धित पानी, पीव तथा मांस और रक्तसे भरी हुई है। उसका जल उष्ण, खारा और अत्यन्त-विरस है। पीपमिश्रित जल जवर्दस्ती वहॉ पिलाया जाता है। इस तरह सन्ताप और दुखोको सहन करता हुआ जीव उसमे क्षण-क्षण जन्मता और मरता रहता है। मयवर्द्धन भी तब-तकके लिए सातवे नरकमे गया है कि जब-तक धरती, सुमेरु पर्वत और आकाश विद्यमान रहेंगे ॥॥१-६॥

[१५] इसके अनन्तर उन विरुद्ध नारकीयोने राजाको भी ललकारा, "तूने जो-जो खोटे आचरण किये हैं, उन्हें याद कर। तूने पॉचसौ मुनियोको मारा, अव इसका दुःख भोग।" यह कहकर उन्होने उसे तलवारसे काट-कूट दिया। फिर वाणो और भालोसे भेदा। उसके वाद करपत्रसे तिल-तिल काटकर उसे गीध, कुत्तो और शृगालोको दे दिया। हाथीके पॉवके नीचे दवोचकर सॉपोसे लपेट दिया। फिर खण्डितकर, पॉचसौ-पॉचसौ वार उसे यन्त्रसे पीड़ित किया। इस प्रकार कष्ट पूर्वक हजारो यातनाओको सहन करता हुआ वह नाना योनियोमे भटकता फिरा। वही अब इस वनमे

एत्थु विहङ्गु जाउ णिय काणणें । एवहिँ अच्छइ तुम्ह-घरङ्गणें ॥९॥

घत्ता

ताव पक्खि मणेँ पच्छुत्ताविउ 'किह मइँ सवण-सङ्घु संताविउ ।
एत्तिय-मत्तें अब्भुद्धरणउ महु मुयहोँ वि जिणवरु सरणउ' ॥१०॥

[१६]

जं आयण्णिउ पक्खि-भवन्तरु । जाणइ-कन्तें पभणिउ मुणिवरु ॥१॥
'तो वरि अम्हहुँ वयइँ चडावहु । पक्खिहेँ सुहय-पन्थु दरिसावहु' ॥२॥
त वलएवहोँ वयणु सुणेप्पिणु । पञ्चाणुव्वय उच्चारेप्पिणु ॥३॥
दिण्ण पडिच्छिय तिहि मि जणेहिँ । पुणु अहिणन्दिय एक्क-मणेहि ॥४॥
मुणिवर गय आयासहोँ जावेँ हिँ । लक्खणु भवणु पराइउ तावेँ हिँ ॥५॥
'राहव एउ काइँ अच्छरियउ । ज मन्दिरु णिय-रयणेँ हिँ भरियउ' ॥६॥
तेण वि कहिउ सव्वु ज वित्तउ । 'मइँ आहार-दाण-फलु पत्तउ' ॥७॥
तक्खणेँ पञ्चच्छरिउ पदरिसिउ । मेहेँ हिँ जिह अणवरउ पवरिसिउ ॥८॥

घत्ता

रामहोँ वयणु सुणेवि अणन्तें गेण्हवि मणि-रयणइँ वलवन्तें ।
वड-पारोह-कमेहिँ पचण्डेँहिँ रहवरु घडिउ स य भु व-दण्डेँहिँ ॥९॥

●

[३६. छत्तीसमो संधि]

रहु कोड्डावणउ मणि-रयण-सहासेँ हिँ घडियउ ।
गयणहोँ उच्छलेँवि ण दिणयर-सन्दणु पडियउ ॥

[१]

तहिँ तेहएँ सुन्दरेँ सुप्पवहेँ । आरण्ण - महागय - जुत्त - रहेँ ॥१॥
धुरेँ लक्खणु रहवरेँ दासरहि । सुर-लीलएँ पुणु विहरन्ति महि ॥२॥

(जटायु नामका) पक्षी हुआ है। और इस समय तुम्हारे आश्रमके आँगनमें उपस्थित है।" यह सुनकर वह पक्षी अपने मनमें बहुत पछताया। मैंने नाहक श्रमणसंघको यातना दी। इतने मात्रसे मेरा उद्धार हो गया। अब तो मैं बार-बार जिनकी शरणमें हूँ ॥१–१०॥

[१६] पक्षिराज जटायुके जन्मान्तर सुनकर राम और सीताने पूछा, "तो फिर अच्छा हो आप हमें भी कुछ व्रत दें और इस पक्षीको भी सुपथ दिखावे।" बलभद्र रामके वचन सुनकर मुनिवरने पाँच अणुव्रतोंका नाम लेकर उन्हें दीक्षा प्रदान की। उन तीनोंने मुनिका अभिनन्दन किया। मुनियोंके आकाश-मार्गसे प्रस्थान करनेपर जब लक्ष्मण घर लौटकर आया तो उसने कहा, "अचरज है यह सब क्या। घर रत्नोंसे भर गया है।" तब रामने कहा कि यह सब हमें अपने आहार-दानका फल प्राप्त हुआ है। तत्क्षण उन्होंने वे पाँच आश्चर्य रत्न दिखाये कि जिनकी निरन्तर वर्षा हुई थी। तब बलवान् लक्ष्मणने रामके वचन सुनकर उन (बहुमूल्य) मणियोंको इकट्ठा कर लिया। फिर वटप्ररोह की तरह प्रबल अपने भुजदण्डोंसे लक्ष्मणने रत्नविजडित उत्तम रथ बनाकर तैयार किया ॥१–६॥

•

छत्तीसवीं संधि

हजारों मणियों और रत्नोंसे रचित कुतूहल-जनक वह रथ ऐसा लगता था मानो सूर्यका ही रथ आकाशसे उछलकर धरती-पर आ गिरा हो ॥१–६॥

[१] सुन्दर और कान्तिपूर्ण, तथा वनगजोंसे जुते हुए उस रथकी धुरापर लक्ष्मण बैठे हुए थे, और भीतर राम और सीता। इस प्रकार वे धरती पर लीलापूर्वक विहार कर रहे

तं कण्हवण्ण-णइ मुएँवि गय । वणेँ कहि मि णिहालिय मत्त गय ॥३॥
कत्थ वि पञ्चाणण गिरि-गुहेँहिँ । मुत्तावलि विक्खिरन्ति णहेँहिँ ॥४॥
कत्थ वि उड्डाविय सउण-सय । ण अडविहेँ उड्डेँवि पाण गय ॥५॥
कत्थ वि कलाव णच्चन्ति वणेँ । णावइ णट्टावा जुवइ-जणेँ ॥६॥
कत्थ इ हरिणइँ भय-भीयाइँ । संसारहोँ जिह पव्वइयाइँ ॥७॥
कत्थ वि णाणाविह-रुक्ख-राइ । ण महि-कुलवहुअहेँ रोम-राइ ॥८॥

घत्ता

तहोँ दण्डयवणहोँ अग्गएँ दीसइ जलवाहिणि ।
णामें कोञ्चणइ थिर-गमण णाइँ वर-कामिणि ॥९॥

[२]

कोञ्चणइहेँ तीरेँण सठियइँ । लय-मण्डवेँ गम्पि परिट्ठियइँ ॥१॥
जुडु जेँ जुडु जेँ सरयहोँ आगमणेँ । सच्छाय महादुम जाय वणेँ ॥२॥
णव-णलिणिहेँ कमलइँ विहसियइँ । ण कामिणि-वयणइँ पहसियइँ ॥३॥
धवलेण णिरन्तर-णिग्गएँण । घण-कलसेँहिँ गयण-महग्गएँण ॥४॥
अहिसिञ्चेँवि तक्खणेँ वसुह-सिरि । ण थविय अवाहिणि कुम्भइरि ॥५॥
तहिँ तेहएँ सरएँ सुहावणएँ । परिभमइ जणद्दणु काणणएँ ॥६॥
कोवण्ड - सिलीमुह - गहिय-करु । गज्जन्त - मत्त - मायङ्ग - धरु ॥७॥
वणेँ ताम सुअन्धु वाउ अइउ । जो पारियाय-कुसुमब्भहिउ ॥८॥

घत्ता

कड्ढिउ भमरु जिह तेँ वाएँ सुट्ठु सुअन्धेँ ।
धाइउ महुमहणु जिह गउ गणियारिहेँ गन्धे ॥९॥

[३]

थोवन्तरेँ परिओसिय-मणेँण । वंसत्थलु लक्खिउ लक्खणेँण ॥१॥
ण सयण-विन्दु आवासियउ । ण मयउलु वाहेँ तासियउ ॥२॥

थे। कृष्णा नदी पार करने पर कहीं उन्हें मद झरते वनगज दिखाई पड़े और कहीं सिंह जो गिरि-गुहाओंमें अपने नखोंसे मोती बखेर रहे थे। कहीं पर सैकड़ों पक्षी इस भाँति उड़ रहे थे मानो अटवीके प्राण उड़कर जा रहे हों। कहींपर वनमोर इस प्रकार नृत्य कर रहे थे मानो युवतीजन ही नाच रहा हो। कहींपर भयभीत हरिन इस प्रकार खड़े थे मानो संसारसे भीत संन्यासी ही हों। कहींपर नाना प्रकारकी वृक्ष-मालाएँ थीं जो मानो धरारूपी वधूकी रोम-राजी ही हों। ऐसे उस दण्डक वनके आगे उन्हें क्रौंच नामकी नदी मिली वह सुन्दर कामिनीकी मन्थर-गतिसे बह रही थी ॥१-९॥

[२] क्रौंचके तटपर जाकर वे एक लतागृहमें बैठ गये। (इतनेमें) शरद्के आगमनसे वनवृक्षोंकी कान्ति और छाया (सहसा) सुन्दर हो उठी। नई नलिनियोंके कमल ऐसी हँसी बखेर रहे थे मानो कामिनीजनोंके मुख ही स्मयमान हों। (और वह दृश्य ऐसा लगता था) मानो अपने निरन्तर निकलनेवाले घनरूपी धवल कलशोंसे आकाशरूपी महागजने (शरद्कालीन) वसुधाकी सौन्दर्य लक्ष्मीका अभिषेककर उस अवोधिनीको कुंभकार पर्वतपर अधिष्ठित कर दिया हो। ऐसी उस सुहावनी शरद्ऋतुमें, मत्तगजोंको पकड़नेवाले लक्ष्मण, अपना धनुषबाण लिये हुए घूम रहे थे। (इतनेमें अचानक) पारिजात कुसुमोंके परागसे मिश्रित सुगन्धित पवनका झोंका आया। उस सुगन्धित पवनसे, भ्रमरकी तरह आकृष्ट होकर कुमार लक्ष्मण उसी तरह दौड़े जिस प्रकार हाथी हथिनीकी वांछासे (आकृष्ट होकर) दौड़ पड़ता है ॥१-९॥

[३] थोड़ी दूर चलनेपर सन्तुष्ट मन लक्ष्मणको एक वंश-स्थल नामक स्थान दीख पड़ा। वह ऐसा जान पड़ा मानो स्वजन-

अप्पोक्क-पासेँ कोड्डावणउ । जम-जीह जेम भीसावणउ ॥३॥
गयणङ्गणेँ खग्गु णिहाफियउ । णाणाविह - कुसुमोमालियउ ॥४॥
लक्खणहोँ णाइँ अब्भुद्धरणु । णं सम्बुकुमारहोँ जमकरणु ॥५॥
त सूरहासु णामेण असि । जसु तेएं णिय पह मुअइ ससि ॥६॥
जसु धारहोँ काल-दिट्ठि वसइ । जसु कालु कियन्तु वि जमु तसइ ॥७॥
ते हत्थु पसारेँ वि लइउ किह । पर-णर-णिप्पसरु कलत्तु जिह ॥८॥

घत्ता

पुणु कीलन्तएँण असिवत्तें हउ वसत्थलु ।
ताव समुच्छलेँवि सिरु पडिउ स-मउडु स-कुण्डलु ॥९॥

[४]

ज दिट्ठु विवाइउ सिर-कमलु । सिरिवच्छेँ विहुणिउ भुय-जुअलु ॥१॥
'धिम्मइँ णिक्कारणु वहिउ णरु । वत्तीस वि लक्खण-लक्ख-धरु' ॥२॥
पुणु जाम णिहालइ वस-वणु । णर-रुण्डु दिट्ठु फन्दन्त-तणु ॥३॥
तं पेक्खेँवि चिन्तइ खग्गधरु । 'थिउ माया-रूवें को वि णरु' ॥४॥
गउ एम भणेप्पिणु महुमहणु । णिविसेण परायउ णिय-भवणु ॥५॥
राहवेँण वुत्तु 'भो सुहड-ससि । कहिँ लद्धु खग्गु कहिँ गयउ असि ॥६॥
तेण वि त सयलु वि अक्खियउ । वसत्थलु जिह वणेँ लक्खियउ ॥७॥
जिह लद्धु खग्गु त अतुल-बलु । जिह खुडिउ कुमारहोँ सिर-कमलु ॥८॥

घत्ता

घुच्चई राहवेँणा 'म एत्तिय मुहिवएँ साडिय ।
असि सावण्णु णवि पइँ जमहोँ जीह उप्पाडिय' ॥९॥

[५]

जं एहिय भीमण वत्त सुय । वेवन्ति पजम्पिय जणय - सुय ॥१॥

समूह ही ठहरा हो, या व्याधसे पीड़ित मदगज ही हो। तब अत्यन्त निकट जाकर, उसने आकाशमें लटका हुआ एक खड्ग देखा। यमकी जीभकी तरह भयानक वह, पुष्पमालाओंसे लदा हुआ था। वह मानो, लक्ष्मणका उद्धारक और शम्बूक कुमारके लिए जमकरण था। यह वह सूर्यहास खड्ग था जिसके तेजसे चन्द्रमा भी अपनी आभा छोड़ देता है, जिसकी पैनी धारमे कालदृष्टि वसती है, यम कृतान्त भी जिससे सन्त्रस्त हो उठते हैं। लक्ष्मणने हाथ फैलाकर उस खड्गको उसी प्रकार झेल लिया जिस प्रकार कोई विट परपुरुषगामी स्त्रीको पकड़ ले। जब खेल-खेलमे कुमार लक्ष्मणने उस खड्गसे वंशस्थलपर चोट की तो उसमेंसे मुकुट और कुंडल सहित एक सिर उछल पड़ा ॥१–६॥

[४] उस मूक सिरकमलको देखकर, लक्ष्मण दोनो हाथसे अपना सिर धुनकर पछताने लगा, "मुझे धिक्कार है कि व्यर्थ ही मैंने बत्तीस लक्षणोंसे युक्त एक आदमीका वध कर दिया है।" जव उसने उस वंश-समूहको देखा, उसमे एक तड़फड़ाते मनुष्यका धड़ दिखाई दिया। उसे देखकर खड्गधर लक्ष्मणने सोचा शायद कोई मायाका रूप धारणकर इसमे बैठा था। यह विचारकर वह पलभरमे अपने डेरेमे पहुँच गया। तब रामने पूछा, "हे शुभ, यह खड्ग तुमने कहाँ पाया, तुम कहा गये थे।" तब लक्ष्मणने जिस तरह वंशस्थल देखा था और कुमारका सिर काटकर वह खड्ग प्राप्त किया था वह सब हाल कह सुनाया। इसपर राम बोले, "अरे तुमने इस तरह (उसे) काट डाला, निश्चय ही तुमने यमकी डाढ़ उखाड़ ली है। वह कोई मामूली व्यक्ति नही था" ॥१–६॥

[५] यह बात सुनते ही सीतादेवी कॉप-सी गईं। वह बोलीं, "चल, लतामंडपसे घुस चले। इस वनमे प्रवेश करना शुभ

'लय-मण्डवें णिविट्टाहुँ । सुहु णाहि वणेँ वि पइट्ठाहुँ ॥२॥
परिभमइ जणदणु जहिँ जेँ जहिँ । दिवेँदिवेँ कडमद्दणु तहिँ जेँ तहिँ ॥३॥
कर-चलण-देह-सिर - खण्डणहुँ । णिव्विण्ण माएँ हउँ भण्डणहुँ ॥४॥
हउँ ताएँ दिण्णी केहाहुँ । कलि - काल - कियन्तहुँ जेहाहुँ' ॥५॥
त वयणु सुणेप्पिणु भणइ हरि । 'जइ राजु ण पोरिसु होइ वरि ॥६॥
जिम दाणेँ जेँम सुकइत्तणेँण । जिम आउहेण जिम कित्तणेँण ॥७॥
परिभमइ कित्ति सव्वहोँ णरहोँ । धवलन्ति भुवणु जिह जिणवरहोँ ॥८॥

घत्ता

आयहुँ एत्तियहुँ जसु एक्कु वि चित्तेँ ण भावइ ।
सो जाउ ज्जि मुउ परिमिसु ज जमु णेवावइ' ॥९॥

[६]

एत्थन्तरेँ सुर - सतावणहोँ । लहु वहिणि सहोयर रावणहोँ ।
पायाललङ्क - लङ्केसरहोँ । धण पाण-पियारी तहोँ खरहोँ ॥२॥
चन्दणहि णाम रहसुच्छलिय । णिय - पुत्तहो पासु समुच्चलिय ॥३॥
'लइ वारह-वरिसइँ भरियाइँ । चउ-दिवसेँहिँ पुणु सोत्तरियाइँ ॥४॥
अण्णहिँ तहिँ दिवसहिँ करेँ चडइ । त खग्गु अज्जु णहेँ णिव्वडइ' ॥५॥
सो एव चवन्ती महुर - सर । वलि - दीवङ्गारय - गहिय - कर ॥६॥
सज्जण - मण - णयणाणन्दणहोँ । गय पासु पत्त णिय-णन्दणहोँ ॥७॥
ताणन्तरेँ असि - दलवट्टियउ । वसत्थलु दिट्ठु णिवट्टियउ ॥८॥

घत्ता

दिट्ठु कुमार-सिरु स-मउडु मणि-कुण्डल-मण्डिउ ।
जन्तेँहिँ किण्णरेँहिँ वर-कणय-कमलु णं छण्डिउ ॥९॥

[७]

सिर-कमलु णिएप्पिणु गीढ-भय । रोमन्ती महियलेँ मुच्छ - गय ॥१॥
कन्दन्ति रुवन्ति स - चेयणिय । णिज्जीव जाय णिच्चेयणिय ॥२॥
पुणु दुक्खु दुक्खु सवरिय-मण । मुह-कायर दर-मउलिय - णयण ॥३॥

नहीं है। कुमार लक्ष्मण तो दिनोंदिन वहीं घूमते रहते हैं जहाँ युद्ध और विनाश (की सम्भावना) रहती है। हाथ, पैर, सिर और शरीरका नाश करनेवाले इन युद्धोंसे मुझे बहुत विरक्ति हो उठी है। इससे मुझे उतना ही सन्ताप होता है जितना कलिकाल और कृतान्तसे।" यह सुनकर कुमार लक्ष्मणने कहा—"जिसमें पुरुषार्थ नही वह राजा कैसा ? मनुष्यकी कीर्ति दान, सुकवित्व, आयुध और कीर्तनसे ही फैलती है वैसे ही जैसे जिनवरसे यह यह संसार धवल बनता है। इनमेंसे जिसके मनको एक भी अच्छा नही लगता वह मर क्यो नहीं जाता, वह व्यर्थ ही यमका भोजन बनता है ॥१–६॥

[६] इसी बीच चन्द्रनखा हर्पसे उछलती हुई, वहाँ आई। वह रावणकी सगी छोटी बहन और पाताललंकाके राजा खरकी पत्नी थी। "चार दिन ऊपर बारह वर्प हो चुके हैं, दूसरे ही दिन खड्ग आकाशसे गिरकर मेरे पुत्रके हाथमे आ जायगा," मधुर स्वरमें यह गुनगुनाती हुई, नैवेद्य, दीप, धूप वगैरह पूजाका सामान हाथमे लिये जैसे ही वह सज्जनोंके मन और नेत्रोको आनन्ददायक अपने पुत्रके निकट पहुँची वैसे ही उसने खड्गसे छिन्न उस वंश-स्थलको गिरा हुआ देखा। कुमारका मुकुट-कुंडलसे सहित कटा हुआ सिर देखकर उसे ऐसा जान पड़ा, मानो किन्नरोने आते-जाते वन-कमलको तोड़कर फेक दिया हो ॥१–९॥

[७] (छिन्न) सिरकमलको देखकर वह भयभीत हो उठी। रोती हुई वह, मूर्छित होकर धरतीपर गिर पड़ी। क्रन्दन करती, रोती और वेदनासे भरी हुई वह एकदम निर्जीव और निश्चेतन हो उठी। फिर बड़े कष्टसे उसने अपना मन सम्हाला। उसका मुख कमल कातर हो रहा था, आखे भयसे मुकुलित थीं।

णं मुच्छए किउ सहियत्तणउ। ज रक्खिउ जीवु गवणमणउ ॥४॥
पुणु उट्ठें वि विहुणइ भुअजुअलु। पुणु सिरु पुणु पहणइ वच्छयलु ॥५॥
पुणु कोक्कइ पुणु धाहहिँ रडइ। पुणु दीसउ णिहालइ पुणु पडइ ॥६॥
पुणु उट्ठइ पुणु कन्दइ कणइ। पुणुरुत्तेंहिँ अप्पउ आहणइ ॥७॥
पुणु सिरु अप्फालइ धरणिवहें। रोवन्तिहें सुर रोवन्ति णहें ॥८॥

घत्ता

जे चउदिसेंहिँ थिय णिय डाल पसारें वि तरुवर।
'मा रुव चन्दणहि' णं साहारन्ति सहोयर ॥९॥

[८]

अप्पाणउ तो वि ण सथवइ। रोवन्ति पुणु वि पुणु उट्ठवइ ॥१॥
'हा पुत्त विउज्झहि लुहहि मुहु। हा विरुअएँ णिद्दएँ सुत्तु तुहुँ ॥२॥
हा किण्णालावहि पुत्त मइँ। हा कि दरिसाविय माय पइँ ॥३॥
हा उवसहारहि रूवु लहु। हा पुत्त देहि पिय-वयणु महु ॥४॥
हा पुत्त काइँ किउ रुहिर-वहु। हा पुत्त एहि उच्छङ्गें चडु ॥५॥
हा पुत्त लाइ मुहेँ मुह-कमलु। हा पुत्त एहि पिउ थण-जुअलु ॥६॥
हा पुत्त देहि आलिङ्गणउ। जे णच्चमि वणेँ वद्धावणउ ॥७॥
णव-मासु छुद्धु ज मइँ उअँर। त सहल मणोरह अज्जु जणेँ ॥८॥

घत्ता

हा हा दइ्व विहि कहिँ णियउ पुत्तु कहों सङ्कमि।
काइँ कियन्त किउ हा दइव कवण दिस लङ्घमि ॥९॥

[९]

हा अज्जु अमङ्गलु विहिँ पुरहँ। पायाललङ्क - लङ्काउरहँ ॥१॥
हा अज्जु दुक्खु वन्धव-जणहों। हा अज्जु पडिय भुअ रावणहों ॥२॥
हा अज्जु खरहों रोवावणउ। हा अज्जु रिउहुँ वद्धावणउ ॥३॥

मूर्च्छाने एक प्रकारसे उसकी बहुत बड़ी सहायता की जो उसके गमनशील प्राणोको बचा लिया। उठकर वह फिर दोनो हाथ पीटने लगी। कभी वह सिर पीटती और कभी छाती। कभी वह (अपने पुत्रको) पुकार उठती और कभी डाढ़ मारकर रोने लगती। देखती, गिरती पड़ती, उठती और फिर वह क्रन्दन करने लगती। इस तरह बार-बार, अपनेको प्रताड़ित करती, और कभी धरतीपर सिर पटक देती। उसके रोदनका स्वर आकाशमें गूँज रहा था। चारों ओर लगे हुए वृक्ष, मानो अपनी डालोंसे यह संकेत कर रहे थे कि "चन्द्रनखा रो मत" और भाईकी तरह उसे सहारा दे रहे थे ॥१-६॥

[८] तो भी वह, किसी भी प्रकार अपने आपको ढाढ़स नहीं दे पा रही थी। रोती हुई वह बार-बार कह उठती," हे पुत्र ! तुम विद्रूप महानिद्रामे क्यो निमग्न हो, हे पुत्र ! मुझसे क्यो नहीं बोलते, हे पुत्र ! तुमने माँको यह सब क्या दिखाया, अहा ! अपने रूपको तुम फिरसे खोल दो, हे पुत्र ! मुझसे मीठी बातें करो। हे पुत्र ! तुम्हारे वस्त्र रक्तरञ्जित क्यो हैं ? हे पुत्र आ, और मेरी गोदमे चढ़। हे पुत्र अपना मुखकमल मेरे मुँहसे लगा। हे पुत्र ! आ और मेरा दूध पी, हे पुत्र, मुझे आलिंगन दे, जिससे मै वनमें बधावा नाच सकूँ, मैने जिसके लिए, तुझे नौ माह पेटमे रखा, मेरे उस मनोरथको सफल कर। हा हा, हे रूठे हुए दैव, तूने मेरे पुत्रको कहाँ ले जाकर रख दिया। मै उसे कहाँ खोजूँ ? कृतान्तने यह सब क्या किया, हे दैव ! मैं किस दिशामें जाऊँ ? ॥१-६॥

[९] आज सचमुच विधाताने पाताललंका नगरका बहुत बड़ा अमंगल किया है। आज बाँधवजनोंको घोर दुख है, आज रावणकी मानो एक भुजा टूट गई है। आज खरको रोदन आ

हा अज्जु फुट्टु कि ण जमहों सिरु। हा पुत्त णिवारिउ मइ मि चिरु ॥४॥
तं खग्गु ण सावण्णहों णरहों। पर होइ अद्ध-चक्केसरहों ॥५॥
किं तेण जि पाडिउ सिर-कमलु। मणि-कुण्डल - मण्डिय-गण्डयलु' ॥६॥
पुणु पुणु दरिसावइ सुरयणहों। रवि-हुअवह - वरुण - पहञ्जणहों ॥७॥
,अहों देवहों वालु ण रक्खियउ। सव्वेंहिँ मिलेवि उपेक्खियउ ॥८॥

घत्ता

तुम्हइँ दोसु णवि महु दोसु जाहँ मणु ताविउ।
मन्लुडु अण्ण-भवें मइँ अण्णु को वि सताविउ' ॥६॥

[१०]

एत्थन्तरें सोएं परियरिय। णडि जिह तिह पुणु मच्छर-भरिय ॥१॥
णिड्डुरिय णयण विप्फुरिय-मुह। विकराल णाइँ खय-काल-छुह ॥२॥
परिवड्ढिय रवि-मण्डलें मिलिय। जम-जीह जेम णहेँ किलिगिलिय ॥३॥
'जें घाइउ पुत्तु महु-तणउ। खर-णन्दणु रावण-भायणउ ॥४॥
तहों जीविउ जइ ण अज्जु हरमि। तो हुयवह-पुञ्जें पईसरमि' ॥५॥
इय पइज करेप्पिणु चन्दणहि। किर वलेंवि पलोवइ जाम महि ॥६॥
लय-मण्डवेँ लक्खिय वे वि णर। ण धरणिहेँ उब्भिय उभय कर ॥७॥
तहिँ एक्कु दिट्ठु करवाल-भुउ। 'लइ एण जि हउ महु तणउ सुउ ॥८॥

घत्ता

एण जि असिवरेंण णियमत्थहों कुल-पायारहों।
सहुँ वंसत्थलेंण सिरु पाडिउ सम्बुकुमारहों ॥६॥

[११]

ज दिट्ठ वणन्तरें वे वि णर। गउ पुत्त-विओउ कोउ णवर ॥१॥
आयामिय विरह-महाभडेंण। णच्चाविय मयरद्धय-णडेंण ॥२॥

गया, आज सचमुच शत्रुओंकी बढ़ती होगी, हा आज उस यमका सिर क्यो न फूट गया जिसने मेरे पुत्रका हमेशाके लिए अपलाप कर दिया। वह खड्ग किसी मामूली आदमीके लिए नहीं था, किसी अर्ध चक्रवर्तीके लिए था, क्या उसीने मणिमय कुण्डलोंसे मण्डित गण्डस्थलवाला उसका सिरकमल काटकर गिरा दिया है। वह वार-बार रवि, अग्नि, वरुण और पवन आदि देवोंको उसे दिखाकर कह रही थी, "अरे तुम लोग मेरे लालको नहीं बचा सके। तुम सबने मिलकर इसकी उपेक्षा की। परन्तु इसमे तुम्हारा दोष नहीं। दोष है मेरा, शायद दूसरे जन्ममें मैंने किसी दूसरेको सताया होगा" ॥१-९॥

[१०] इस प्रकार शोकातुर वह, जिस किसी प्रकार ईर्ष्यासे भरी हुई नटीकी तरह जान पड़ती थी। उसकी ऑखे डरावनी, मुख खुला हुआ, और क्षुब्ध। वह क्षयकालकी भाँति विकराल थी। बढ़कर वह सूर्य-मंडलमे जा मिली और यमकी जिह्वाकी तरह किलकिलाती हुई वह बोली—"जिसने आज, खरके नन्दन, रावणके भानजे और मेरे पुत्रकी हत्या की है, उसके जीवनका यदि मै हरण नही करूँ तो आगकी लपटोमे प्रवेश कर लूँगी।" यह प्रतिज्ञा करके वह ज्यों-ही धरतीकी ओर मुड़ी त्यो-ही उसे लता-मंडपमें दो आदमी ऐसे दिखाई दिये मानो वे धरतीके ही उठे हुए दो हाथ हो ? उनमेसे एक, हाथमे तलवार लिये हुए दिखाई दिया। उसने सोचा, शायद इसीने मेरे पुत्रको मारा है। इस तलवारसे इसने मेरे कुलकी प्राचीरको तोड़ दिया है, वंशस्थलके साथ ही मेरे कुमारका सिर भी काटकर गिरा दिया है ॥१-९॥

[११] वनके बीचमें जैसे ही उसने उन दोनो नरोंको देखा वैसे ही उसका पुत्रवियोगका क्रोध चला गया। और अब वियोग

पुलइज्जइ पासेइज्जइ वि । परितप्पइ जर-खेइज्जइ वि ॥३॥
मुच्छिज्जइ उम्मुच्छिज्जइ वि । रुणुरुणइ वियारहिँ भज्जइ वि ॥४॥
'वरि एउ रूउ उवसघरमि । सुर-सुन्दरु कण्ण-वेसु करमि ॥५॥
पुणु जामि एत्थु उम्वर-भवणु । परिणेसइ अवसें एक्कु जणु' ॥६॥
हियइच्छिउ तक्खणेँ रूउ किउ । ण कामहोँ कोड्डु(?) जँ तिं विहिउ ॥७॥
गय तहिँ जहिँ तिण्णि वि जणइँ वणेँ । पुणु धाहहिँ रुअणहिँ लग्ग खणेँ ॥८॥

घत्ता

पभणइ जणय-सुय 'वल पेक्खु कण्ण किह रोवइ ।
ज कालन्तरिउ त दुक्खु णाइँ उक्कोवइ' ॥९॥

[१२]

रोवन्ती वइँ मलहरेँण । हक्कारेँवि पुच्छिय हलहरेँण ॥१॥
'कहि सुन्दरि रोवहि काइँ तुहुँ । किं पडिउ किं पि णिय-सयण-दुहु ॥२॥
किं केण वि कहिँ वि परिब्भविय' । त वयणु सुणेवि वाल चविय ॥३॥
हउँ पाविणि दीण दयावणिय । णिव्वन्धव रुवमि वराय णिय ॥४॥
वणेँ भुल्ली णउ जाणमि दिसउ । णउ जाणमि कवणु देसु विसउ ॥५॥
कहिँ गच्छमि चक्कवूहेँ पडिय । महु पुण्णेहिँ तुम्ह समावडिय ॥६॥
जइ अम्हहुँ उप्परि अत्थि मणु । तो परिणउ विण्ह वि एक्कु जणु ॥७॥
त वयणु सुणेवि हलाउहेँण । किय णक्खच्छोडी राहवेँण ॥८॥

महाभटने उसपर धावा बोल दिया। कामदेव उसे नचाने लगा। वह सहसा पुलकित हो उठी। वह पसीना-पसीना हो गई। वह सन्तप्त होने लगी, उसके ज्वरकी पीड़ा बढ़ गई। कभी वह मूर्छित होती तो कभी उच्छ्वास छोड़ती। कभी रुन-झुन कर उठती। इस प्रकार वह विकारसे भग्न हो उठी। उसने मनमें सोचा, "अच्छा मैं अब अपने इस रूपको छिपा लूँ और सुर-सुन्दरीका नया रूप ग्रहण कर लूँ तब इस, उत्तम लताभवनमें प्रवेश करूँ। इनमेंसे एक-न-एक अवश्य मुझसे विवाह करेगा।" यह विचारकर उसने तत्काल यथेच्छ सुन्दर रूप बना लिया। वह अब ऐसी लगने लगी मानो कामदेवने ही साक्षात् कोई कौतुक किया हो। कुछ दूरीपर जाकर वह ढाढ़ मारकर रोने लगी, उसके क्रन्दनको सुन-कर सीतादेवीने रामसे कहा,—" आर्य, देखो तो वह लड़की क्यों रो रही है, जान पड़ता है जो दुःख कालसे अन्तरित था, वही अब इसपर प्रकट हो रहा है" ॥१–९॥

[१२] तब बलभद्र रामने ऊँचे स्वरमें पुकारकर रोती हुई उस बालासे पूछा "सुन्दरी, बताओ तुम क्यों रो रही हो? क्या किसी स्वजनका दुख आ पड़ा है या कहीं किसीने तुम्हारा पराभव कर दिया है।" यह वचन सुनकर वह बाला बोली—"मैं पापिनी, दैवसे दयनीय, भाई-बन्धुओंसे हीन एक दम अनाथ हूँ। इसी लिए रो रही हूँ। इस वनमें भूल गई हूँ। दिशा मैं जानती नहीं, और न ही मैं यह जानती हूँ कि कौन मेरा देश या प्रान्त है। कहाँ जाऊँ समझमें नहीं आता। मैं जैसे चक्रव्यूहमें पड़ गई हूँ। अब मेरे पुण्यसे तुम अच्छे आ गये हो, यदि मेरे ऊपर आपका मन हो तो दोमेंसे कोई एक मेरा वरण कर ले।" यह वचन सुनते ही

घत्ता

करयलु दिण्णु मुहेँ किय वङ्क भउँह सिरु चालिउ ।
'सुन्दर ण होइ वहु' सोमित्तिहेँ वयणु णिहालिउ ॥९॥

[१३]

जो णरवइ अइ-सम्माण-करु । सो पत्तिय अत्थ-समत्थ-हरु ॥१॥
जो होइ उवायणेँ वच्छलउ । सो पत्तिय विसहरु केवलउ ॥२॥
जो मित्तु अकारणेँ एइ घरु । सो पत्तिय दुट्ठु कलत्त-हरु ॥३॥
जो पन्थिउ अलिय-सणेहियउ । सो पत्तिय चोरु अणेहियउ ॥४॥
जो णरु अत्थकएँ लल्लि-करु । सो सत्तु णिरुत्तउ जीव-हरु ॥५॥
जा कामिणि कवड-चाडु कुणइ । सा पत्तिय सिर-कमलु वि लुणइ ॥६॥
जा कुलवहु सवहेँहिं ववहरइ । सा पत्तिय विरुय-सयइँ करइ ॥७॥
जा कण्ण होवि पर-णरु वरइ । सा किं वड्डन्ती परिहरइ ॥८॥

घत्ता

आयहुँ अट्ठहु मि जो णरु मूढउ वीसम्भइ ।
लोहउ धम्मु जिह छुडु विप्पउ पएँ पएँ लब्भइ ॥९॥

[१४]

चिन्तेप्पिणु थेरासण-मुहेँण । सोमित्ति वुत्तु सीराउहेँण ॥१॥
'महु अत्थि भज्ज सुमणोहरिय । लइ लक्खण वहु लक्खण-भरिय' ॥२॥
ज एव समासएँ अक्खियउ । कण्हेण वि मणेँ उवलक्खियउ ॥३॥
हउँ लेमि कुमारि स-लक्खणिय । जा आगमेँ सामुद्दएँ भणिय ॥४॥
जङ्घोरु-अहङ्गय वट्ट-थण । दीहर-कर-णक्खङ्गुलि-णयण ॥५॥
रत्तहि गइन्द-णिरिक्खणिय । चामीयर-वरण सपुज्जणिय ॥६॥
जा उण्णय णासेँ णिलाडेँ तिय । सा होइ ति-पुत्तहुँ मायरिय ॥७॥

रामने फौरन खुट्टी कर ली। मुँहपर दोनो हाथ रखकर, भौहें टेढ़ीकर, उन्होने अपना मुख फेर लिया और कहा—"वधू, यह सुन्दर न होगा। तुम लक्ष्मणका मुख जोहो" ॥१-९॥

[१३] राम सोचने लगे—"जो राजा अत्यन्त सम्मान करने वाला होता है उसे अवश्य अर्थ और सामर्थ्यका हरण करनेवाला होना चाहिए। जो दान देनेमे अधिक ममत्व रखता है उसे अवश्य ही विषधर जानो। जो मित्र अकारण घर आता है उसे अवश्य स्त्री हरण करनेवाला दुष्ट समझो। जो पथिक मार्गमे झूठा स्नेह जताता है उसे अवश्य ही अहितकारी चोर समझो। जो नर जल्दी-जल्दी चापलूसी करता है उसे अवश्य जीवहरण करने-वाला समझो। जो स्त्री कपटसे भरी हुई चाटुता करती है वह निश्चय ही सिरकमल काटेगी। जो कुल-वधू बार-बार शपथ करती है वह अवश्य सैकड़ो बुराइयाँ करनेवाली है, जो कन्या होकर भी पर-पुरुषको वरण करती है क्या वह बड़ी होनेपर ऐसा करना छोड़ देगी। लौकिक धर्मकी भाँति, जो मूढ़ इन बातोमे विश्वास नही करता, वह अवश्य ही पग-पगमे अप्रिय पाता है ॥१-९॥

[१४] तब कमल-मुख रामने सोच-विचारकर लक्ष्मणसे कहा—"मेरे पास एक सुन्दर स्त्री है, तुम अनेक लक्षणोसे युक्त हो, चाहो तो इसे ले लो।" जब रामने अत्यन्त संक्षेपमे यह कहा तो लक्ष्मणने भी तुरन्त बात ताड़ ली। उन्होने कहा—"नहीं, मैं तो सुलक्षणा स्त्री लूँगा जिसका सामुद्रिक-शास्त्रोमे उल्लेख है। जिसकी जाँघे, उर, अभङ्ग हो। हाथ, नख, अंगुली, आँखें लम्बी हो। जिसके पद आरक्त हो और (गति) गजेन्द्रकी भाँति दर्शनीय हो जो सुनहले रङ्गकी सम्माननीय हो। जिसका भाल और नाक उन्नत

कायङ्कि स - गग्गर तावसिय । सम - चलणङ्गुलि अचिराउसिय ॥८॥
जा हंस - वंस - वरवीण - सर । महु - वण्ण महा - घण-छाय-धर ॥९॥
सुह-भमर-णाहि-सिर-भमर-थण(?)। सा बहु-सुय बहु-धण बहु-सयण ॥१०॥
जहेँ वामएँ करयलेँ होन्ति सय । मीणारविन्द - विस - दाम-धय ॥११॥
गोउरु घरु गिरिवरु अहव सिल । सु-पसत्थ स-लक्खण सा महिल ॥१२॥
चक्कङ्कुस - कुण्डल - उद्धरिह । रोमावलि वलिय भुयङ्ग जिह ॥१३॥
अद्धेन्दु - णिडालेँ सुन्दरेँण । मुत्ताहल - सम - दन्तन्तरेँण ॥१४॥

घत्ता

आएँहिँ लक्खणेँहिँ सामुद्दएँ वणि [य] सुणिज्जइ ।
चक्काहिवहोँ तिय चक्कवइ पुत्तु उप्पज्जइ ॥१५॥

[१५]

वहु राहव एह अलक्खणिय । हउँ भणमि ण लक्खणेण भणिय ॥१॥
जङ्घोरु - करेहिँ समसलिय । चल - लोयण गमणुत्तावलिय ॥२॥
कुम्मुण्णय - पय विसमङ्गुलिय । धुय कविल-केसि खरि पङ्गुलिय(?) ॥३॥
सव्वङ्ग - समुट्ठिय - रोम-रइ । तहेँ पुत्तु वि भत्तारु वि मरइ ॥४॥
कडि-लञ्छण भउँहावलि-मिलिय । सा देव णिरुत्तउ भेन्दुलिय ॥५॥
दालिद्दिणि तित्तिर - लोयणिय । पारेवयच्छि जण - भोजणिय ॥६॥
विरसउह - दिट्ठि विरसउह-सर । सा दुक्खहुँ भायण होइ पर ॥७॥
णासग्गेँ थोरेँ मन्थरेँण । सा लज्जिय किं वहु-वित्थरेण ॥८॥
कडि-चिहुर-णाहि(?)मुह-माखुरिय । सा रक्खसि वहु-भय-भासुरिय ॥९॥
कडु-अङ्गिय मत्त -गइन्द-छवि । हउँ एहिय परिणमि कण्ण णवि' ॥१०॥

हो, वह तीन-तीन पुत्रोंकी माता होती है। जिसके पैर और स्वर काककी तरह हों और पैरकी अंगुलियाँ बराबर हों, और शोभा क्षणिक हो वह तापसी होती है। जो हंस-वंश, और वीणाके उत्तम स्वरवाली हो। मेरे रङ्गकी भाँति अत्यन्त कांतिमती हो तथा जिसकी नाभि, सिर और स्तन सुन्दर तथा सुडौल हों वह बहुपुत्र-वती, धनवती और कुटुम्बवाली होती है। जिसकी बाईं हथेलीमें चक्र, अङ्कुश और कुण्डल उभरे हों, रोमराजि साँपकी तरह मुड़ी हुई हो, ललाट अर्धचन्द्रकी तरह सुन्दर हो, दाँत मोतीकी तरह चमकते हों, इन लक्षणोंसे युक्त वनिताके विषयमें यह कहा जाता है (सामुद्रिक-शास्त्रमें) कि वह चक्रवर्तीकी पत्नी होती है और उसका पुत्र भी चक्रवर्ती होता है ॥१-९॥

[१५] परन्तु राघव, यह वधू कुलक्षणी है। यह मैं नहीं, सामुद्रिक शास्त्र कह रहा है। जिसकी जंघा और पिंडरी स्थूल हों, आँखें चञ्चल, और जो चलनेमें उतावली करती हो, जिसके पैर कछुएके समान ऊँचे हों, अंगुलियाँ विषम और बाल कपिल वर्णके चंचल हों, सारे शरीरमें रोमराजी उठी हुई हो उसके पुत्र और पति दोनों मर जायेंगे। जिसकी कमर लांछित और भौंहें मिली हुई हों, हे देव! वह निश्चय ही पुंश्चली होती है, दरिद्र, तीतर या कबूतर-सी आँखवाली स्त्री निश्चय ही नरभक्षिणी होती है। काकके समान दृष्टि और स्वरवाली जो हो वह अवश्य ही दुखकी पात्र है। जिसकी नाक आगे कुछ चिपटी वा लंजिता होती है, बहुत विस्तारसे क्या, जिसके बाल कमर तक नहीं होते और जो मसाली होती वह बहुत भयावनी राक्षसिनी होती है। जिसकी कमर पतली और छवि मत्त गजराज की भांति हो, ऐसी कन्यासे मैं विवाह नहीं कर सकता।" यह सुनकर चन्द्रनखाने अपने

घत्ता

पभणइ चन्दणहि 'किं णियय-सहावें लज्जमि।
जइ हउँ णिसियरिय तो पइ मि अज्जु स इँ भु ञ्जमि' ॥११॥

•

[३७. सत्ततीसमो संधि]

चन्दणहि अलज्जिय एम पगज्जिय 'मरु मरु भूयहुँ देमि वलि'।
णिय-रूवें वड्डिय रण-रसें अड्डिय रावण-रामहुँ णाइँ कलि ॥

[१]

पुणु णु पुवि पवड्डिय किलिकिलन्ति। जालावलि-जाला-सय मुअन्ति ॥१॥
भय-भीसण कोवाणल-सणाह। ण धरएँ समुब्भिय पवर वाह ॥२॥
णह-सरि-रवि-कमलहोँ कारणत्थि। अहवइ ण अब्भुद्धारणत्थि ॥३॥
ण घुसलइ अब्भ-चिरिड्डिहिल्लु। तारा-बुब्बुव-सय-विड्डिरिल्लु ॥४॥
ससि-लोणिय-पिण्डउ लेवि धाइ। गह-डिम्भहोँ पीहउ देइ णाइँ ॥५॥
अहवइ किं वहुणा वित्थरेण। ण णहयल-सिल गेण्हइ सिरेण ॥६॥
णं हरि-वल-मोत्तिय-कारणेण। महि-गयण-सिप्पि फोडइ खणेण ॥७॥
वलएवें वुच्चइ 'वच्छ वच्छ। तुहुँ वहुयहँ चरियइँ पेच्छ पेच्छ ॥८॥

घत्ता

चन्दणहि पजम्पिय तिणु वि ण कम्पिय 'लइउ खग्गु हउ पुत्तु जिह।
तिण्णि वि खज्जन्तइँ मारिज्जन्तइँ रक्खेज्जहोँ अप्पाणु तिह ॥

मनमे सोचा तो क्या मैं अपने स्वभावपर लज्जित होऊँ ? कभी नहीं। यदि मैं सच्ची निशाचरी होऊँगी तो अवश्य तुम्हारा भोग करूँगी ॥१-६॥

सैतीसवीं सन्धि

तब चन्द्रनखा एक दम लज्जाहीन होकर गरजती हुई बोली, "मरो मरो, मैं तुम्हारी बलि भूतोको दूँगी। अपने रूपका विस्तार करती हुई, रण-रससे ओतप्रोत वह, राम और रावणकी साक्षात् कलहकी भाँति जान पड़ती थी।

[१] बार-बार बढ़ती हुई वह कभी खिलखिला पड़ती और कभी आगकी ज्वालामाला छोड़ने लगती। कोपानलसे जलती हुई और भयभीषण वह ऐसी लगती थी मानो वसुधाकी बाधा ही उत्पन्न हो गई हो। या रवि और कमलोंके लिए आकाश-गंगा ऊपर उठती चली आ रही हो। या बादलरूपी दहीको मथ रही हो, या ताराख्पी सैकड़ो बुदबुद बिखर गये हो, या शशिरूपी नवनीतका पिण्ड लेकर ग्रहरूपी बच्चेको पीठा लगानेके लिए दौड़ पड़ रही हो। अथवा बहुत विस्तारसे क्या मानो वह आकाशरूपी शिलाको उठा रही थी या राम और लक्ष्मण रूपी मोतियोंके लिए, धरती और आसमान रूपी सीपीको एक क्षणमे तोड़ना चाहती थी। (यह देखकर) रामने लक्ष्मणसे कहा—"वत्स वत्स, तुम इस वधूके चरित्रको देखो।" यह सुनकर तृण बराबर भी नहीं डरती हुई चन्द्रनखा बोली, "जिस तरह तुमने मेरे पुत्रको मारकर वह खड्ग लिया है उसी तरह तुम तीनो मारे और खाये जाओगे, अपनी रक्षा करो" ॥१-६॥

[२]

वयणेण तेण असुहावणेण । करवालु पदरिसिउ महुमहेण ॥१॥
दढ- कढिण- कढोरुप्पीलणेण । अङ्गुलि- अङ्गुट्ठावीलणेण ॥२॥
त मण्डलग्गु थरहरइ केम । भत्तार-भए सुकलत्तु जेम ॥३॥
अणवरय-मउज्झरें णर-णिसुम्भें । तहिँ दारिज्जन्तें गइन्द-कुम्भें ॥४॥
जो धारहिँ मोत्तिय-णियरु लग्गु । पासेव-फुलिङ्गु वहु व वलग्गु ॥५॥
त तेहउ खग्गु लएवि तेण । विज्जाहरि पभणिय लक्खणेण ॥६॥
'जे लइउ सीसु तुह णन्दणासु । करवालु एउ तं सूरहासु ॥७॥
जइ अत्थि को वि रण-भर-समत्थु । तहों सव्वहों उब्भिउ धम्म-हत्थु ॥८॥
खर-घरिणिएँ वुत्तु 'ण होइ कज्जु । को वारइ मारइ मइ मि अज्जु' ॥९॥

घत्ता

सा एव भणेप्पिणु गलगज्जेप्पिणु चलणेंहिँ अप्फालेवि महि ।
खर-दूसण-वीरहुँ अतुल-सरीरहुँ गय कूवारें चन्दणहि ॥१०॥

[३]

रोवन्ति पधाइय दीण-वयण । जलहर जिह तिह वरिसन्ति णयण ॥१
लम्वन्ति लम्व-कडियल-समग्ग । ण चन्दण-लयहें भुअङ्ग लग्ग ॥२॥
वीया- मयलञ्छण- सण्णिहेहिँ । अप्पाणु वियारिउ णिय-णहेहिँ ॥३॥
रुहिरोल्लिय थण-घिप्पन्त-रत्त । ण कणय-कलस कुङ्कम विलित्ति ॥४॥
ण दावइ लक्खण-राम-कित्ति । ण खर-दूसण-रावण-भवित्ति ॥५॥
ण णिसियर-लोयहों दुक्ख-खाणि । ण मन्दोयरिहें सुपुरिस-हाणि ॥६॥
ण लङ्कहें पइसारन्ति सङ्क । णिविसेण पत्त पायाललङ्क ॥७॥
णिय-मन्दिरें धाहावन्ति णारि । ण खरदूसणहों पइट्ट मारि ॥८॥

[२] तब उसके असुहावने वचन सुनकर दृढ़ कठोर कठिन और सन्तापकारी लक्ष्मणने अँगुली और अँगूठेसे दबाकर उसे तलवार दिखाई। उसका मण्डलाग्र थर-थर काँप रहा था, मानो पतिके भयसे सुकलत्र ही थर-थर काँप रही हो। अनवरत मदजल झरते नरनाशक गजोंके कुम्भस्थलोंको विदीर्ण करनेसे उस खण्डकी धारमें जो मोती समूह लग गया था मानो वही उसके प्रस्वेदकण रूपी चिनगारियाँ थीं। उस वैसे खड्गको लेकर लक्ष्मणने विद्याधरीसे कहा, "यह वही सूर्यहास खड्ग है जिसने तुम्हारे पुत्रके प्राण हरण किये, यदि कोई (तुम्हारा) मनुष्य रण-भार उठानेमें समर्थ हो तो उसके लिए यह धर्मका हाथ बढ़ा हुआ है।" यह सुन खर-पत्नी चन्द्रनखा बोली, "यह काम क्या नहीं हो सकता। देखूँ आज कौन मुझे मार या हटा सकता है" यह कहकर गरजती हुई और पैरोंसे धरतीको चपाती हुई, विलपती वह, अतुल देह खर और दूषणके निकट पहुँची ॥१-१०॥

[३] जब वह उनके पास पहुँची तो उसका मुख दीन था, वह रो रही थी और आँखोंसे मेघधाराकी तरह अश्रुधारा प्रवाहित थी। अपनी लम्बी केशराशि उसने कटिभाग तक ऐसी फैला रक्खी थी मानो सर्पसमूह चन्दनलतासे लिपट गये हों। दोजके चन्द्रकी तरह अपने नखोंसे उसने अपने आपको विदीर्ण कर लिया था। रक्त-रञ्जित उसके लाल स्तन ऐसे लगते थे मानो कुंकुममण्डित स्वर्णिम कलश हों। या मानो रामलक्ष्मणकी कीर्ति चमक उठी हो या मानो खर, दूषण और रावणकी भवितव्यता ही हो, मानो निशाचरके लिए दुखकी खान हो, मानो मन्दोदरीके पतिकी हानि हो, या मानो लङ्कामें प्रवेश करती हुई आशङ्का ही हो। वह पलभर में पाताललङ्का जा पहुँची और अपने भवनमें ढाढ़ मारकर ऐसे

घत्ता

कूवारु सुणेप्पिणु धण पेक्खेप्पिणु राए वलेँवि पलोइयउ ।
तिहुयणु सघारेँवि पलउ समारेँवि णाइँ कियन्तेँ जोइयउ ॥९

[४]

कूवारु सुणेँवि कुल-भूसणेण । चन्दणहि पपुच्छिय दूसणेण ॥१॥
कहेँ केणुप्पाडिउ जमहोँ णयणु । कहेँ केण पजोइउ काल-वयणु ॥२॥
कहि केण कियन्तहोँ कियउ मरणु । कहि केण कियउ विस-कन्द-चरणु ॥३॥
कहि केण वद्ध पवणेण पवणु । कहि केण दड्ढु जलणेण जलणु ॥४॥
कहि केण भिण्णु वज्जेण वज्जु । कहि केण धरिउ जलु जलेँण अज्जु ॥५॥
कहि केण भाणु उण्हेण तविउ । कहि केण समुद्दु तिसाएँ खविउ ॥६॥
कहि केण खुडिउ फणि मणि-णिहाउ । कहेँ केण सहिउ सुर-कुलिस-घाउ ॥७॥
कहि केण हुआसणेँ झम्प दिण्ण । कहेँ कण दसाणण-पाय छिण्ण ॥८॥

घत्ता

चन्दणहि पवोल्लिय असुजलोल्लिय 'जण-वल्लहु महु तणउ सुउ ।
ओलग्गइ पाणेँहिँ विणय-समाणेँहिँ णरवइ सम्वुकुमारु मुउ ॥९॥

[५]

आयण्णेँवि सम्वुकुमार - मरणु । सतावण - सोय-विओय - करणु ॥१॥
पविरल-मुह वाह-भरन्त-णयणु । दुक्खाउरु दर - ओहुल्ल-वयणु ॥२॥
खरु रुयइ स-दुक्खइ 'अतुल-पिण्डु । हा अज्जु पडिउ महु वाहु-दण्डु ॥३॥
हा अज्जु जाय मणेँ गरुअ सङ्क । हा अज्जु सुण्ण पायाललङ्क ॥४॥
हा णन्दण सुर - पञ्चाणणासु । कवणुत्तरु देमि दसाणणासु ॥५॥
एत्थन्तरेँ ताम तिमुण्ड-धारि । वहु -वुद्धि पजम्पिउ वम्भयारि ॥६॥

रोने लगी जैसे खर-दूपणके लिए मारी ही घुस पड़ी हो। विलाप सुनकर, अपनी धन्याको देखनेके लिए खर इस तरह मुड़ा जिस तरह संहार और प्रलय करनेके विचारसे कृतान्त मुड़कर देखता है ॥१-६॥

[४] उसका क्रन्दन सुनकर कुलभूषण दूषणने चन्द्रनखासे पूछा, "कहो किसने (आज) यमके नेत्र उखाड़े, कहो किसने कालका मुख देखा है ? कहो किसने कृतान्तका वध किया, कहो बैलके स्कन्धको किसने चपेटा ? कहो पवनसे पवनको किसने बाँधा, बताओ आगसे आगको कौन जला सका ? कहो वज्रसे वज्रका भेदन किसने किया ? जलसे जलको धारण, आजतक किसने किया। सूर्यकी उष्णताको आजतक कौन तपा सका ? कहो समुद्रकी प्यास किसने शान्त की ? साँपके फनसमूहको किसने तोड़ा ? इन्द्रके वज्रका आघात कौन सहन कर सका ? कहो वनकी आगको कौन बुझा सका है ? कहो रावणके प्राण कौन छीन सकता है ?" (यह सुनकर) आँखोंमे आँसू भरकर चन्द्रनखाने कहा ! "राजन् मेरा जनप्रिय सुन्दर पुत्र कुमार शम्बूक, विनयके समान अपने प्राणोंको लेकर मर गया" ॥१-६॥

[५] अपने पुत्रकी, सन्ताप, शोक और वियोग उत्पन्न करने-वाली मृत्युकी बात सुनकर, म्लानमुख गलिताश्रु दुःखातुर और भयकातर खर रो पड़ा। (वह विलाप करने लगा) हे अतुल शरीर, आज मेरा बाहुदण्ड ही टूट गया है, आज मेरे मनमें बड़ी भारी आशंका उत्पन्न हो गई है। आज पाताललंका सूनी-सूनी लग रही है। हे पुत्र, देवसिंह रावणके लिए मै अब क्या उत्तर दूँगा।" इसी बीचमें एक त्रिपुण्डधारी बहुबुद्धि ब्रह्मचारीने

'हे णरवइ मूढा रुअहि काइँ । संसारेँ भमन्तहुँ सुअ - सयाइँ ॥७॥
आयाइँ मुआइँ गयाइँ जाइँ । को सक्कइ राय गणेवि ताइँ ॥८॥

घत्ता

कहोँ घरु कहोँ परियणु कहोँ सम्पय-धणु माय वप्पु कहोँ पुत्तु तिय ।
के कज्जेँ रोवहि अप्पउ सोयहि भव - संसारहोँ एह किय' ॥९॥

[६]

जं दुक्खु दुक्खु संथविउ राउ । पडिवोल्लिउ णिय-घरिणिएँ सहाउ ॥१॥
'कहेँ केण वहिउ महु तणउ पुत्तु' । तं वयणु सुणेँवि धणिआएँ वुत्तु ॥२॥
'सुणु णरवइ दुग्गमेँ दुप्पवेसेँ । दुग्वोट्ट - थट्ट - घट्टण - पवेसेँ ॥३॥
पञ्चाणण - लक्खुक्खय - करालेँ । तहिँ तेहएँ दण्डय-वणेँ विसालेँ ॥४॥
वे मणुस दिट्ठ सोण्डीर वीर । मेहारविन्द - सण्णिह - सरीर ॥५॥
कोवण्ड-सिलीमुह - गहिय-हत्थ । पर - वल-वल-उत्थल्लण - समत्थ ॥६॥
तहिँ एक्कु दिट्ठु तियसहुँ असज्झु । तें लइउ खग्गु हउ पुत्तु मज्झु ॥७॥
अण्णु वि अवलोवहि देव देव । कक्खोरु वियारिउ पेक्खु केव ॥८॥

घत्ता

वणेँ धरेँ वि रुयन्ती धाह मुअन्ती कह वि ण भुत्त तेण णरेँण ।
णिय-पुण्णेँहिँ चुक्की णह-मुह-लुक्की णलिणि जेम सरेँ कुञ्जरेँण' ॥९॥

[७]

तं वयणु सुणेँवि वहु-जाणएहिँ । उवलक्खिय अण्णेँहिँ राणएहिँ ॥१॥
'मालूर - पवर - पीवर - थणाएँ । पर एयइँ कम्मइँ अडयणाएँ ॥२॥
मच्छुडु ण समिच्छिय सुपुरिसेण । अप्पउ विद्धंसेँवि आय तेण' ॥३॥
एत्थन्तरेँ णिवइ णिएइ जाव । णह - णियर-वियारिय दिट्ठ ताव ॥४॥

कहा, "हे मूर्ख राजन् ! तुम रोते क्यों हो, संसारमें तुम्हारे सैकड़ों पुत्र घूम रहे हैं इनमें जो मर गये है उनको कौन गिन सकता है। किसका घर, किसके परिजन, किसकी सम्पत्ति और धन, आखिर तुम रोते किस लिए हो, अपनेको शोकमें मत डालो, संसारका यही क्रम है ॥१-६॥

[६] बहुत कठिनाईसे सचेत होनेपर खर अपनी पत्नीसे कहा, "मेरे पुत्रको किसने मारा ?" यह सुनकर वह बोली, "दुर्गम और दुःप्रवेश्य गज-संघर्षसे आकुल प्रदेश, तथा लाखों सिंहोंसे विकराल उस वनमें मैंने दो प्रचण्ड वीर देखे हैं। उनमेंसे एकके शरीरका रंग मेघवर्ण है और दूसरेका कमलके रंगका। धनुषबाण हाथमें लिये हुए वे दोनों शत्रुसेनाको परास्त करनेमें समर्थ है। उनमेंसे एकके पास सुन्दर कृपाण थी; उसीने उस खड्गको लिया है और मेरे पुत्रका वध भी किया है और हे देव ! यह भी तो सुनिए। उसने किस तरह मेरा वक्षस्थल विदीर्ण कर दिया है। वनमें रोती और ढाढ मारती हुई भी मुझे पकड़कर किसी तरह वे मेरा भोग भर नहीं कर पाये। नखाग्रसे विदीर्ण होने पर भी मैं किसी प्रकार अपने पुण्योदयसे उसी प्रकार बच सकी जिस तरह सरोवरमें कमलिनी हाथीसे बच जाय ॥१-६॥

[७] चन्द्रनखाके वचन सुनकर, सयानी और जानकार दूसरी-दूसरी रानियोंको यह ताड़ते देर नहीं लगी, कि यह सब इसी (वेलके समान स्थूलस्तनी) कुलटाका कर्म है। शायद उस पुरुषने इसे नहीं चाहा होगा, इसी कारण अपनी ऐसी गत बनाकर, यह यहाँ आ गई। नखोंसे क्षत-विक्षत चन्द्रनखा खरको ऐसी लगी कि मानो लाल पलाशलता हो, या भ्रमरोंसे आच्छन्न

किसुय-लय व्व आरत्त-वण्ण । रत्तुप्पल-माल व भमर - छुण्ण ॥५॥
तहिँ अहरु दिट्ठु दसणग्ग-भिण्णु । ण वाल-तवणु फग्गुणेँ उइण्णु ॥६॥
त णयण-कडक्खवि खरु विरुद्धु । ण केसरि मयगल - गन्ध - लुद्धु ॥७॥
भउ भिउडि-भयङ्करु मुह-करालु । ण जगहोँ समुट्ठिउ पलय-कालु ॥८॥

घत्ता

अमर वि आकम्पिय एम पजम्पिय 'कहोँ उप्परि आरुट्ठु खरु' ।
रहु खञ्चिउ अरुणेँ सहुँ ससि-वरुणेँ 'मइँ वि गिलेसइ णवर णरु' ॥९॥

[८]

उट्ठन्तेँ उट्ठिउ भड - णिहाउ । अत्थाण-खोहु णिविसेण जाउ ॥१॥
चूरन्त परोप्परु सुहड ढुक्क । णं जलणिहि णिय-मज्जाय-चुक्क ॥२॥
सीसेण सीसु पट्टेण पट्टु । चलणेण चलणु करु कर-णिहट्टु ॥३॥
मउडेण मउडु तुट्टेवि लग्गु । मेहलु मेहल - णिवहेण भग्गु ॥४॥
उट्ठन्ति के वि तिण-समु गणन्ति । ओहावण - माणेँ ण वि णमन्ति ॥५॥
अह णमइ को वि किवणत्तणेण । पडिओ वि ण उट्ठइ भडु भरेण ॥६॥
दूसणेण णिवारिय वद्ध - कोह । विहडप्फड सण्णज्झन्ति जोह ॥७॥
'जइ पउ वि देहु आरूसमाण । तो होमइ रायहोँ तणिय आण ॥८॥

घत्ता

म कज्जु विणासहोँ ताम वईसहोँ जो असि-रयणु मण्ड हरइ ।
सिरु खुडइ कुमारहोँ विज्जा-पारहोँ सो कि तुम्महिँ ओसरइ ॥९॥

[९]

तो वरि किज्जउ महु तणिय वुद्धि । णरवइ असहायहोँ णत्थि सिद्धि ॥१॥
णाव वि ण वहइ विणु तारएण । जलणु वि ण जलइ विणु मारुएण ॥२॥
एक्कल्लउ गम्पिणु काइँ करहि । रयणायरेँ सन्तेँ तिसाएँ मरहि ॥३॥

रक्तकमलोंकी माला हो। दन्ताग्र भागसे कटे हुए उसके अधर ऐसे लगते थे मानो फागके महीनेमे सूर्योदय हुआ हो।" यह सब देख सुनकर खर उसी तरह भड़क उठा जिस तरह गजकी गन्ध पाकर सिंह भड़क उठता है। उस योधाकी भृकुटि भयंकर और आरक्त हो उठी। मानो जगमे प्रलय ही आना चाहता हो। देवता काँपकर आपसमें कहने लगे "अरे, खर आज किसपर कुपित हुआ है।" तदनन्तर शशि और वरुणके साथ रथमे चढ़कर खरने कहा कि मैं भी उस पामरको कवलित करूँगा ॥१-६॥

[८] इस प्रकार उसके उठते ही भट-समूह उठ खड़ा हुआ। पल-भरमे उसके दरबारमे खलबली मच गई। एक दूसरेको चपेटते और चूर-चूर करते हुए योधा वहाँ पहुँचने लगे मानो समुद्रने अपनी मर्यादा छोड़ दी हो। सिरसे सिर, पट्टसे पट्ट, पैरसे पैर और हाथसे हाथ टकराने लगे। मुकुटसे मुकुट और मेखलासे मेखला भग्न हो उठी। कितने ही योधा तृणके बराबर परवाह न करते हुए उठे। दीनता या मानके कारण वे नमस्कार तक नहीं कर रहे थे, यदि कृपणतावश कोई झुकता भी तो गिरकर सेनाके भारके कारण उठ ही नहीं पाता। इस प्रकार अहङ्कारसे भरे, क्रुद्ध तैयार होते हुए योधाओंको रोककर दूषण बोला, "यदि तुम क्रुद्ध होकर एक भी पैर रखोगे तो राजाकी अवज्ञा होगी, अपना विनाश मत करो। तुम लोग बैठ जाओ। जिसने बल पूर्वक तलवार (सूर्यहास) को हरण किया, और शम्बूक कुमारका सिरकमल तोड़ा है, विद्यामे पारङ्गत क्या तुम लोगोंसे हटेगा ॥१-६॥

[९] इसलिए अच्छा यह हो कि तुम लोग हमारी बुद्धिके अनुसार चलो, देखो बिना तारकके नाव बह जाती है। बिना पवनके आग तक नहीं जलती। इसलिए तुम अकेले गमन क्यो

सन्ते वि महग्गएँ विसहँ चडहि । जिणेँ अच्चिएँ वि संसारेँ पडहि ॥४॥
जसु सारहि फुडु भुवणेक्कवीरु । सुरवर-पहरण-चड्डिय सरीरु ॥५॥
जग-केसरि अरि-कुल-पलय-कालु । पर-वल-वगलामुहु भुअ-विसालु ॥६॥
दुद्दम- दाणव- दुग्गाह- गाहु । सुरकरि- कर- सम-थिर-थोर-वाहु ॥७॥
तेलोक्क- भुवग्गल- भड- तडक्क । दुद्दरिसण भीसण जम-फडक्क ॥८॥

घत्ता

तहोँ तिहुअण-मल्लहोँ सुर-मण-सल्लहोँ तियस-विन्द-सतावणहोँ ।
गउ सम्बु सुहग्गइ पइँ ओलग्गउ गप्पि कहिज्जइ रावणहोँ ॥९॥

[१०]

आयण्णेँवि त दूसणहोँ वयणु । खरु खरउ पवोल्लिउ गुञ्ज-णयणु ॥१॥
'धिद्धि लज्जिज्जइ सुपुरिसाहुँ । पर एयइँ कम्मइँ कुपुरिसाहुँ ॥२॥
साहीणु जीउ देहत्थु जाव । किह गम्मइ अण्णहोँ पासु ताव ॥३॥
जाएँ जीवेँ मरिएवउ जेँ । तो वरि पहरिउ वर-वइरि-पुञ्जेँ ॥४॥
जेँ लब्भइ साहुक्कारु लोएँ । अजरामरु को वि ण मच्च-लोएँ ॥५॥
जिम भिडिउ अज्जु अरि-वर-समुद्दें । जिम जणिय मणोरह सयण-विन्दें ॥६॥
जिम असि-सव्वल-कोन्तेहिँ भिण्णु । जिम जस-पडहउ तइलोक्के दिण्णु ॥७॥
जिम णहेँ तोसाविउ सुर-णिहाउ । जिम महु मि अज्जु खय-कालु आउ ॥८॥

घत्ता

जिम सत्तु-सिलायलेँ वहु-सोणिय-जलेँ भुउ परिहव-पङ्कु अप्पणउ ।
जिम स-धउ स-साहणु स-भडु स-पहरणु गउ णिय-पुत्तहोँ पाहुणउ ॥९॥

करते हो। (अरे) समुद्र पास होते हुए भी प्यासे क्यों मरते हो? महागजके होनेपर भी बैलपर क्यो बैठते हो? जिनेन्द्रकी पूजा करके भी संसारचक्रमें पड़ते हो? जिसका सारथि भुवनमें अद्वितीय वीर है, जिसका शरीर वज्रसे भी बढ़कर दृढ़ है जो विश्वसिंह अरिकुलके लिए प्रलयकाल है, शत्रु सेनाके लिए बड़वानल है, विशालबाहु दुर्दम-दानव ग्राहोको पकड़नेवाला ऐरावतकी सूँड़की तरह स्थूलवाहु त्रिलोककी भटशृङ्खलाको तोड़नेवाला दुर्दशनीय भीपण, और यमकी तरह चपेटनेवाला है ऐसे उस, देवोके लिए शल्य स्वरूप और सुरसंतापक रावणसे जाकर कहो कि शम्बूक कुमार मारा गया है। आप (उसके हत्यारेका) पीछा करे ॥१-९॥

[१०] खर कड़ककर बोला, "धिक्कार धिक्कार तुम्हें, तुम सुपुरुषोको लजा रहे हो, यह कापुरुषोका कर्म हो सकता है। साहसी पुरुपके जब तक देहमे प्राण रहते हैं तब तक क्या वह दूसरेके पास जाता है। जो उत्पन्न हुआ है उसे जब मरना ही है तो अच्छा यही है कि शत्रु-समूह पर प्रहार किया जाय। उससे लोकमे साधुकार (शाबाशी) तो मिलेगा, फिर इस मर्त्यलोकमे अजर-अमर कौन है? आज मै अरिसमुद्रसे अवश्य भिड़ूँगा जिससे स्वजनोका मनोरथ पूरा हो, असि, सव्वल और कोंतसे इस तरह भिड़ूँगा, इस तरह तीनों लोकोंमे यशका डङ्का बजाऊँगा, आकाश लोकमें सुरसमूहको इस तरह सन्तुष्ट करूँगा, भले ही इस तरह मेरा क्षयकाल आ जाय। आज मैं, बहु रक्तरञ्जित शत्रुरूपी शिलातलपर, अपने पराभवके पटको इस तरह धोऊँगा कि जिससे अपने पुत्रकी ही तरह उसे अतिथि (परलोक) का अतिथि बना सकूँ ॥१-९॥

[११]

त णिसुणेंवि णिय-कुल-भूसणेण । लहु लेहु विसज्जिउ दूसणेण ॥१॥
सण्णद्धु खरु वि वहु-समर-सूरु । अप्फालेंवि वलें सगाम-तूरु ॥२॥
विहडप्फड भड सण्णद्ध के वि । सम्माण - दाणु रिणु सभरेवि ॥३॥
केण वि करेण करवालु गहिउ । केण वि धणुहरु तोणीर-महिउ ॥४॥
केण वि मुसण्ढि मोग्गरु पचण्डु । केण वि हुलि केण वि चित्तदण्डु ॥५॥
णाणाविह - पहरण-गहिय-हत्थ । सण्णद्ध सुहड रण - भर-समत्थ ॥६॥
णीसरिउ सेण्णु परिहरेंवि सङ्क । ण वमेवि लग्ग पायाल - लङ्क ॥७॥
रह - तुरय -गइन्द-णरिन्द-विन्द । ण सु-कइ-मुहहों णिग्गन्ति सद्द ॥८॥

घत्ता

खर-दूसण-साहणु हरिस-पसाहणु अमरिस-कुद्धउ धाइयउ ।
गयणङ्गणें लीयउ णावइ वीयउ जोइस-चक्कु पराइयउ ॥९॥

[१२]

ज दिट्ठु णहङ्गणें दणु-णिहाउ । वलएवें वुत्त सुमित्ति - जाउ ॥१॥
'एउ दीसइ काइँ णहग्ग-मग्गें । किं किण्णर-णिवहु व चलिउ सग्गें ॥२॥
किं पवर पक्खि किं घण विसट्ट । किं वन्दण-हत्तिएँ सुर पयट्ट' ॥३॥
त वयणु सुणेप्पिणु भणइ विण्हु । 'वल दीसइ वइरिहिँ तणउ चिण्हु ॥४॥
खग्गेण विवाइउ सीसु जासु । कुढें लग्गउ मच्छुडु को वि तासु' ॥५॥
अवरोप्परु ए आलाव जाव । हक्कारिउ लक्खणु खरेँण ताव ॥६॥
'जिह सम्वुकुमारहों लइय पाण । तिह पाव पडिच्छहि एन्त वाण ॥७॥
जिह लइउ खग्गु पर-णारि भुत्त । तिह पहरु पहरु पुण्णालि-पुत्त' ॥८॥

[११] यह सुनकर निजकुलभूषण दूषणने शीघ्र रावणके पास लेख भेजा। उधर, अनेक युद्धोंमें वीर खरने भी तैयार होकर रण-भेरी बजवा दी। अभिमानी कितने ही योधा, अपने प्रभुके सम्मान दान और ऋणकी याद करके तैयारी करने लगे। किसीने अपने हाथमें तलवार ली। किसीने तूणीर सहित धनुष ले लिया। किसीने प्रचण्ड भुसुंडि और मुद्गर, किसीने हुलि, किसीने चित्रदंड, इस तरह नाना अस्त्रोंको हाथमें लेकर, युद्धभार उठानेमें समर्थ आशंका छोड़कर सेना निकल पड़ी। पातालळंकामें कल-कल शब्द होने लगा। रथ, घोड़े, गजेन्द्र, और नरेन्द्र ऐसे निकल पड़े मानो कविके मुखसे शब्द ही निकल पड़े हों। खर दूषणकी सेना हर्षसे सन्नद्ध होकर, अमर्ष और क्रोधसे भरकर, आकाशसे जा लगी। उस समय ऐसा लगता था मानो आकाशमें दूसरा ही ग्रहचक्र आ पहुँचा हो ॥१-६॥

[१२] आकाशमें निशाचरोंका समूह देखकर रामने लक्ष्मणसे कहा, "देखो यह क्या दीख रहा है, क्या कोई किन्नर-समूह स्वर्गको जा रहा है, या ये बड़े-बड़े पक्षी हैं, या विशेष महामेघ है, या कि यह देवसमूह है जो जिनकी वन्दना-भक्तिके लिए जा रहा है।" यह सुनकर लक्ष्मणने कहा, "यह तो शत्रुकी सेना दिखलाई पड़ रही है, पहचानिए। मैंने तलवारसे जिसका सिर काटा था शायद उसीका कोई आत्मीयजन क्रुद्ध गया है।" इस तरह उनकी आपसमें बातें हो ही रहीं थी कि खरने लक्ष्मणको ललकारा—"तुमने जैसे शम्बूक कुमारके प्राण लिये हैं। पाप, अब वैसे ही, आते हुए मेरे बाणोंकी प्रतीक्षा कर। तूने यह खड्ग क्या लिया दूसरेकी स्त्रीका ही भोग किया है। हे पुंश्चलीपुत्र! बचा-बचा

घत्ता

एक्केक्क-पहाणहुँ खरेँण समाणहुँ चउदह सहस समावडिय ।
गय जेम मइन्दहोँ रिउ गोविन्दहोँ हक्कारेप्पिणु अब्भिडिय ॥६॥

[१३]

एत्थन्तरेँ भड-कडमद्दणेण । जोक्कारिउ रामु जणद्दणेण ॥१॥
'तुहुँ सीय पयत्तें रक्खु देव । हउँ धरमि सेण्णु मिग-जूहु जेम ॥२॥
जव्वेल करेसमि सीह-णाउ । तव्वेल एज्ज धणुहर-सहाउ' ॥३॥
त वयणु सुणेँवि विहसिय-मुहेण । आसीस दिण्ण सीराउहेण ॥४॥
'जसवन्तु चिराउसु होहि वच्छ । करेँ लग्गउ जय-सिरि-वहुअ सच्छ' ॥५॥
त सेवि णिमित्तु जणद्दणेण । वइदेहि णमिय रिउ-मद्दणेण ॥६॥
त णिसुणेँवि सीयएँ वुत्तु एम । 'पञ्चिन्दिय भग्ग जिणेण जेम ॥७॥
वावीस परीसह चउ कसाय । जर-जम्म- मरण मण-काय-वाया ॥८॥

घत्ता

जिह भग्गु परम्मुहु रणेँ कुसुमाउहु लोहु मोहु मउ माणु खलु ।
तिह तुहुँ भञ्जेज्जहि समरेँ जिणेज्जहि सयलु वि वइरिहिँ तणउ वलु' ॥९

[१४]

आसीस-वयणु त लेवि तेण । अप्फालिउ धणुहरु महुमहेण ॥१॥
तेँ सद्दें वहिरिउ जगु असेसु । थरहरिय वसुन्धरि डरिउ सेसु ॥२॥
खरलक्खण वे वि भिडन्ति जाव । हक्कारिउ हरि तिसिरेण ताव ॥३॥
ते भिडिय परोप्पर हणु भणन्त । ण मत्त महागय गुलुगुलन्त ॥४॥
णं केसरि घोरोरालि देन्त । वाणेहिँ वाण छिन्दन्ति एन्त ॥५॥
मोग्गर-खुरुप्प-कण्णिय पडन्ति । जीवेहिँ जीव ण खयहोँ जन्ति ॥६॥
एत्थन्तेँरे अतुल परक्कमेण । अद्धेन्दु मुक्कु पुरिसोत्तमेण ॥७॥
तहोँ तिसिरउ खुक्कु ण कह वि भिण्णु । धणुहरु पाडिउ धय-दण्डु छिण्णु ॥८॥

अपनेको।" इस प्रकार खरके समान एक-से-एक प्रमुख योधाओंने लक्ष्मणको घेर लिया तब वह भी हुंकार भरकर युद्धमें जाकर भिड़ गया ॥१-६॥

[१३] उसी बीच शत्रुसेनाका संहार करते हुए लक्ष्मणने रामसे कहा, "देव! आप सीताकी रक्षा प्रयत्नपूर्वक कीजिये। मैं इस शत्रु-सैन्यको मृगझुंडकी तरह अभी पकड़ता हूँ। आप धनुष लेकर मेरी सहायताके लिए तब आये जब मैं सिंहनाद करूँ।" यह सुनकर रामने लक्ष्मणको आशीर्वाद दिया और यह कहा, "वत्स तुम चिरायु बनो, यशस्वी हो, जयश्री वधू तुम्हारे हाथ लगे।" यह बात सुनकर रिपुसंहारक लक्ष्मणने सीतादेवीको प्रणाम किया। तब सीता बोलीं "जिस प्रकार जिनने पाँचों इन्द्रियोंको भङ्ग किया, बाईस परीषह, चार कषाय—जरा, जन्म, मरण, मन, वचन, कायको वशमें किया, तथा रणमुखमें कामदेवको पराजित किया, लोभ, मोह, मद, मानको जीता उसी प्रकार तुम भी युद्धमें जीतो और समस्त शत्रुसेनाका नाश करो" ॥१-६॥

[१४] इस आशीर्वादको लेकर धनुर्धारी लक्ष्मणने अपना धनुष चढ़ाया। उसकी ध्वनिसे ही सारा जग बहरा हो गया। धरती काँप उठी और शेष नाग डर गये। खर और लक्ष्मण भिड़ने ही वाले थे कि वीर त्रिशिराने लक्ष्मणको ललकारा। मानो सिंह ही दहाड़ उठा हो, या मदगज ही चिग्घाड़ा हो। मुद्गर, खुरपा, कर्णिक इस तरह पड़ने लगे मानो जीवसे जीव ही नाशको प्राप्त हो रहा हो। इतनेमें पुरुषोत्तम अतुल पराक्रमी लक्ष्मणने अर्धचन्द्र छोड़ा, उससे त्रिशिराका शिर किसी प्रकार बच गया। वह भग्न नहीं हुआ। उसका धनुष और ध्वजदण्ड छिन्न-भिन्न होकर गिर पड़े।

अण्णुण्णु पुणुप्पुणु समरेँ वहुग्गुणु ज ज तिसिरउ लेवि धणु ।
त त उक्कण्ठइ खणु वि ण सठइ दइव-विहूणहोँ जेम धणु ॥९॥

[१५]

धणुहरु सरु सारहि छत्त-दण्डु । जं वाणहिँ किउ सय-खण्ड-खण्डु ॥१॥
त अमरिस-कुद्धें दुद्धरेण । संभरिय विज्ज विज्जाहरेण ॥२॥
अप्पाणु पदरिसिउ वद्धमाणु । तिहिँ वयणेंहिँ तिहिँ सीसेंहिँ समाणु ॥३॥
पहिलउ सिरु कक्कड-कविल-केसु । पिङ्गल-लोयणु किय-वाल-वेसु ॥४॥
वीयउ सिरु वयणु वि णव-जुवाणु । उब्भिण्ण-वियड-मासुरि - समाणु ॥५॥
तइयउ सिरु धवलउ धवल-वयणु । फुरिआहरु दर-णिड्डुरिय-णयणु ॥६॥
दुद्दरिसणु भीसणु वियड-दाढु । जिण-भत्तउ जिणवर-धम्म-गाढु ॥७॥
एत्थन्तरेँ पर-वल-मद्दणेण । वच्छत्थलेँ विद्धु जगद्दणेण ॥८॥

घत्ता

णाराएँहिँ भिन्देँ वि सीसइँ छिन्देँ वि रिउ महि-मण्डलेँ पाडियउ ।
सुरवरेँहिँ पचण्डेँहिँ स इँ भु व-दण्डेँहिँ कुसुम-वासु सिरेँ पाडियउ ॥९॥

●

[३८. अट्ठतीसमो संधि]

तिसिरउ लक्खणेण समरङ्गणेँ घाइउ जावँहिँ ।
तिहुअण-डमर-करु दहवयणु पराइउ तावँहिँ ॥

[१]

लेहु विसज्जिउ जो सुर-सीहहोँ । अग्गएँ पडिउ गम्पि दसगीवहोँ ॥१॥
पडिउ णाइँ वहु-दुक्खहँ भारु । णाइँ णिसायर-कुल-सघारु ॥२॥

बहुगुणी त्रिशिरा बार-बार युद्धमें दूसरा धनुष लेता पर वह भग्न होकर गिर पड़ता। वह वैसे ही क्षणभर भी नहीं ठहरता जैसे भाग्यसे आहत व्यक्तिका धन ॥१-६॥

[१५] धनुष बाण-सारथि छत्र दण्ड सभीको बाणोंसे जब लक्ष्मणने सौ-सौ टुकड़े कर दिये तब विद्याधर त्रिशिरा अमर्ष और क्रोधसे भर उठा। तब उसने अपनी विद्याका स्मरण किया। तत्काल वह तीन मुख और तीन सिरका हो गया। उसका आकार बढ़ गया। उनमें पहले सिरपर कठोर और कपिल केश थे। वह छोटा (बालरूप) था। आँखे पीली थीं। दूसरा मुख और सिर नवयुवकका था। उद्भिन्न और विकट भासुरिके सदृश। तीसरेके मुख और सिर, दोनों सफेद ही सफेद थे। अधर काँप रहे थे और आँखे अत्यन्त भयावनी थी। अति दुर्दर्शनीय भीषण विकराल डाढ़ थी। जिनधर्मकी तरह प्रगाढ़ और जिन भक्त। परन्तु परबलसंहारक लक्ष्मणने उसे वक्षस्थलमे वेध दिया। लक्ष्मणके बाणोंसे उसके तीनों सिर कट गये और शत्रु धरणी-मण्डलपर गिर पड़ा। यह देखकर सुरवरोंने अपने प्रचण्ड बाहुओंसे उसके ऊपर फूलोंकी वर्षा की ॥१-६॥

●

अड़तीसवीं संधि

जब तक लक्ष्मणने समराङ्गणमे त्रिशिराको मारा, तब तक त्रिभुवन भयंकर रावण भी वहाँ आ पहुँचा।

[२] सुरसिंह रावणके पास दूषणने जो लेखपत्र भेजा था, वह उसके सम्मुख ऐसे पड़ा था मानो रावणपर दुखका (भार) पहाड़ ही टूट पड़ा हो, मानो राक्षसकुलका संहार हो, या मानो

णाइँ भयङ्करु कलहहों मूलु । णाइँ दसाणण-मत्था-सूलु ॥३॥
लेंहे कहिउ सव्वु अहिणाणेंहिँ । 'सम्बुकुमारु उलग्गइ पाणेंहिँ ॥४॥
अण्णु वि खग्ग-रयणु उद्दालिउ । खर-घरिणिहेँ हियवउ विद्दारिउ ॥५॥
त णिसुणेवि वे वि जसभूसण । पर-वलेँ भिडिय गम्पि खर-दूसण ॥६॥
णारि-रयणु णिरुवमु सोहग्गउ । अच्छइ रावण तुज्झु जेँ जोग्गउ' ॥७॥
लेहु णिएँवि अत्थाणु विसज्जेँवि । पुप्फविमाणेँ चडिउ गलगज्जेँवि ॥८॥
करेँ करवालु करेप्पिणु धाइउ । णिविसेँ दण्डारण्णु पराइउ ॥९॥

घत्ता

ताव जणद्दणेँण खरदूसण-साहणु रुद्धउ ।
थिरु चउरङ्गु वलु णहेँ णिच्चलु ससएँ लुद्धउ ॥१०॥

[२]

तो एत्थन्तरेँ दीहर-णयणें । लक्खणु पोमाइउ दहवयणें ॥१॥
'वरि एक्कल्लओ वि पञ्चाणणु । णउ सारङ्ग-णिवहु वुण्णाणणु ॥२॥
वरि एक्कल्लओ वि मयलञ्छणु । ण य णक्खत्त-णिवहु णिल्लञ्छणु ॥३॥
वरि एक्कल्लओ वि रयणायरु । णउ जलवाहिणि-णियरु स-वित्थरु ॥४॥
वरि एक्कल्लओ वि वइसाणरु । णउ वण-णिवहु स-रुक्खु -गिरिवरु ॥५॥
चउदह सहस एक्कु जो रुम्भइ । सो समरङ्गणेँ मइ मि णिसुम्भइ ॥६॥
पेक्खु केम पहरन्तु पईसइ । धणुहरु सरु सधाणु ण दीसइ ॥७॥

घत्ता

णहि गय णहि तुरय णहि रहवर णहि धय-दण्डइँ ।
णवरि पडन्ताइँ दीसन्ति महियले रुण्डइँ' ॥८॥

[३]

हरि पहरन्तु पससिउ जावेँहिँ । जाणइ णयणकडक्खिय तावेँहिँ ॥१॥
सुकइ-कह व्व सु-सन्धि सु-सन्धिय । सु पय सु-वयण सु-सद्द सु-वद्धिय ॥२॥

कलहका भयङ्कर मूल हो या रावणके मस्तकका शूल हो। उस लेखने अपने अभिज्ञानसे ही बता दिया, कि शम्बुकुमारके प्राणोंका अन्त हो गया। खड्ग रत्न छीन लिया गया, और खरकी स्त्रीके अङ्ग विदीर्ण कर दिये गये। यह सुनकर यशोभूषण दोनो भाई खर और दूषण जाकर शत्रु-सेनासे भिड़ गये हैं। वहाँ एक सुभग और अनुपम नारी रत्न है, हे रावण, वह तुम्हारे योग्य है।" वह लेख पढ़कर रावणने दरबार विसर्जित कर दिया। वह गरजकर, अपने पुष्पक विमानपर चढ़ गया। हाथमे तलवार लेकर वह दौड़ पड़ा और पलभरमें दण्डक वनमे जा पहुँचा। इतनेमें वहाँ लक्ष्मणने खर-दूषणकी सेनाको अवरुद्ध कर लिया। संशयमे पड़ी हुई चतुरङ्ग सेना आकाशमे निश्चलरूपसे स्थित थी। वह सब देखकर, विशाल नेत्र रावणने लक्ष्मणकी प्रशंसा की—सिंह अकेला ही अच्छा, मुँह ऊपर उठाये हरिणोंका झुण्ड अच्छा नही; मृगलांछित चन्द्रमा अकेला अच्छा, पर लांछनरहित बहुत-सा तारा-समूह अच्छा नहीं; रत्नाकर अकेला ही अच्छा, विस्तृत नदियोंका समूह ठीक नहीं। आग अकेले अच्छी, पर वृक्ष पर्वत समन्वित वन-समूह अच्छा नही। जो अकेला ही चौदह हजार सेनाको नष्ट कर सकता है, वह मुझे भी नष्ट कर देगा। देखो प्रहार करता हुआ वह कैसे प्रवेश कर रहा है। उसके धनुष-वाणका संधान दिखाई ही नहीं देता। न अश्व, न गज, न रथवर और न ध्वज-दण्ड केवल धड़ ही धड़ धरती पर गिरते हुए दिखाई देते हैं ॥१–८॥

[२] प्रहार-शील कुमार लक्ष्मणकी जब वह इस प्रकार प्रशंसा कर ही रहा था कि इतनेमे ही उसने सीताको देखा। वह सुकविकी कथाकी तरह सुसंधि (परिच्छेद, अङ्गोके जोड़)

थिर-कलहस-गमण गइ-मन्थर । किस मज्झारेँ णियम्बे सु-वित्थर ॥३॥
रोमावलि मयरहरुत्तिण्णी । ण पिम्पिलि-रिञ्छोलि विलिण्णी ॥४॥
अहिणव - हुण्ड-पिण्ड - पीण-त्थण । ण मयगल उर-खम्भ-णिसुम्भण ॥५॥
रेहइ वयण-कमलु अकलङ्कउ । ण माणस-सरेँ वियसिउ पङ्कउ ॥६॥
सु-ललिय-लोयण ललिय-पसण्णहुँ । ण वरइत्त मिलिय वर कण्णहुँ ॥७॥
घोलइ पुट्ठिहिँ वेणि महाइणि । चन्दण-लयहिँ ललइ ण णाइणि ॥८॥

घत्ता

कि वहु-जम्पिएँण तिहिँ भुवणेँहिँ ज ज चङ्गउ ।
त त मेलवेँवि ण दइवेँ णिम्मिउ अङ्गउ ॥६॥

[४]

तो एत्थन्तरेँ णिय-कुल-दीवेँ । रामु पसंसिउ पुणु दहगीवेँ ॥१॥
'जीविउ एक्कु सहलु पर एयहोँ । जसु सुहवत्तणु गउ परिछेयहोँ ॥२॥
जेण समाणु एह धण जम्पइ । मुह-मुहेण तम्वोलु समप्पइ ॥३॥
हत्थेँ हत्थ धरेँवि आलावइ । चलण-जुअलु उच्छङ्गेँ चडावइ ॥४॥
जं आलिङ्गइ वलय-सणाहहिँ । मालइ - माला - कोमल-वाहहिँ ॥५॥
ज पेल्लावइ-थण-मायङ्गेँहिँ । मुहु परिचुम्वइ णाणा-भङ्गेँहिँ ॥६॥
ज अवलोयइ णिम्मल-तारेँहिँ । णयणहिँ विब्भम-भरिय-वियारेँहिँ ॥७॥
ज अणुहुअइ इच्छेँवि णिय-मणेँ । तासु मल्लु को सयलेँ वि तिहुअणेँ ॥८॥

सुसन्धिय (शब्द-खण्डके जोड़, अवयवोंके जोड़से सहित) सुपय (सुबन्त तिङत पद और चरण) सुवयण (वचन और मुख) सुसद्द (वर्ण और स्वर) और सुबद्ध थीं। कलहंसगामिनी, और मन्थरगतिसे चलनेवाली, उसका मध्यभाग कृश था, नितम्ब अति विस्तृत थे। कामदेवसे अवतीर्ण रोमराजि ऐसी ज्ञात होती थी मानो चीटियोंकी कतार ही उसमे संलग्न हो गई हो। अभिनव मुख-हीन पीन-स्तन ऐसे जान पड़ते थे मानो उररूपी स्तम्भको नष्ट करनेवाले मदमाते हाथी हो। सीताका अमल मुख-कमल ऐसा सोहता था मानो मानसरोवरमें कमल खिल गया हो। उसके सुन्दर नेत्र ऐसे लगते थे, मानो ललित प्रसन्न सुन्दर कन्याओंको वर ही मिल गये हों, उसकी पीठपर बड़ी-सी चोटी ऐसी लहरा रही थी कि मानो चन्दन लतासे नागिन ही लिपट गई हो। अधिक कहने से कोई लाभ नहीं, त्रिभुवनमे जो कुछ अच्छा था उसे लेकर ही विधाताने सीताके अङ्गोंको गढ़ा था ॥१-६॥

[४] फिर निजकुलदीपक रावणने रामकी प्रशंसा करते हुए कहा, "केवल एक इसी रामका जीवन सफल है, क्योंकि इसकी सज्जनता अपनी चरम सीमापर पहुँच चुकी है। इसके साथ यह धन्या संलाप करती है, बार-बार पान देती है, उसके पैरोंको अपनी गोदमें रखती है, हाथमें हाथ लेकर बात-चीत करती है। मालती-मालाकी तरह कोमल और चूड़ियों सहित अपने हाथोंसे आलिङ्गन करती है। नाना भंगिमावाले संघर्षशील स्तनरूपी मातंगोंसे मुँह चूमती है। विभ्रमभरित और विकारशील निर्मल तारावाले अपने नेत्रोंसे इन्हें देखती है। अपने मनसे कामना करके यह सीता जिस रामका भोग करती है, भला समस्त त्रिभुवनमे उसका प्रतिमल्ल कौन हो सकता है। यह मनुष्य धन्य

घत्ता

धण्णउ एहु णरु जसु एह णारि हियइच्छिय ।
जाव ण लइय मइँ कउ अङ्गहोँ ताव सुहच्छिय' ॥९॥

[५]

सीय णिएवि जाउ उम्माहउ । दहमुहु वम्मह-सर-पहराहउ ॥१॥
पहिलएँ वयणु वियारेहिँ भज्जइ । पेम्म-परव्वसु कहोँ वि ण लज्जइ ॥२॥
वीयएँ मुह-पासेउ वलग्गइ । सरहसु गाढालिङ्गणु मग्गइ ॥३॥
तइयएँ अङ्ग विरहाणलु तप्पइ । काम-गहिल्लउ पुणु पुणु जम्पइ ॥४॥
चउथएँ णीससन्तु णउ थक्कइ । सिरु सचालइ भउँहउ वङ्कइ ॥५॥
पञ्चमें पञ्चम-झुणि आलावइ । विहसेँ वि दन्त-पन्ति दरिसावइ ॥६॥
छट्ठएँ अङ्गु वलइ करु मोडइ । पुणु दाढीयउ लएप्पिणु तोडइ ॥७॥
वट्टइ तल्लवेल्ल सत्तमयहोँ । मुच्छउ एन्ति जन्ति अट्ठमयहोँ ॥८॥
णवमउ वट्टइ मरणहोँ ढुक्कउ । दसमएँ पाणहिँ कह व ण मुक्कउ ॥९॥

घत्ता

दहमुहु 'दहमुहेँ हिँ जाणइ किर मण्डएँ भुञ्जमि' ।
अप्पउ सथवइ 'ण ण सुर-लोयहोँ लज्जमि' ॥१०॥

[६]

तो एत्थन्तरेँ सुर-सतासेँ । चिन्तिउ एक्कु उवाउ दसासेँ ॥१॥
अवलोयणिय विज्ज मणेँ झाइय । 'दे आएसु' भणन्ति पराइय ॥२॥
'किं घोट्टेण महोवहि घोट्टमि । कि पायालु णहङ्गणेँ लोट्टमि ॥३॥
किं सहुँ सुरेँहिँ सुरेन्दु परज्जमि । किं मयरद्धय-पुरि-राउ भञ्जमि ॥४॥
कि जम-महिस-सिङ्गु मुसुमूरमि । किसेसहोँ फणिमणि सचूरमि ॥५॥
किं तक्खयहोँ दाढ उप्पाडमि । काल-कियन्त-वयणु कि फाडमि ॥६॥
कि रवि-रह-तुरङ्ग उद्दालमि । किं गिरि मेरु करग्गेँ टालमि ॥७॥

है जिसकी ऐसी हृदय-वांछिता पत्नी है। जब तक मैं इसे ग्रहण नहीं करता तब तक मेरे अङ्गोंको सुखका आसन कहाँ ॥ १-९ ॥

[५] सीताको देखते ही रावणको उन्माद होने लगा। वह कामके वाणोंसे आहत हो उठा। कामकी प्रथमावस्थामें उसका मुख विकारोंसे क्षीण हो गया। प्रेमके वशीभूत होकर वह तनिक भी नहीं लजा रहा था, दूसरी दशामें उसका मुख पसीना-पसीना हो उठा, और हर्षपूर्वक वह आलिङ्गन माँगने लगा, तीसरीमें वियोग की आगसे वह जल उठा और कामग्रस्त होकर बार-बार वह बकने लगा। चौथी दशामें उसके अनवरत निश्वास चलने लगे। कभी वह सिर हिलाता और कभी भौंहें टेढ़ी करता। पाँचवी अवस्थामें वह पञ्चम स्वरमे बोलने लगा और हँसकर अपने दाँत दिखाने लगा। छठीमें अङ्ग और हाथ मोड़ता और दाढ़ी पकड़कर नोचने लगता। आठवींमें उसे मूर्छा आने लगी, नौवींमें मृत्यु आसन्न प्रतीत होने लगी। दशवीं अवस्थामे किसी प्रकार केवल उसके प्राण ही नहीं निकल रहे थे। तब रावणने अपने आपको यह कह-कर सान्त्वना दी कि "बलपूर्वक सीताका अपहरणकर मैं दशों मुखोंसे उसका उपभोग करूँगा। अन्यथा सुरलोकको लज्जित करूँगा" ॥ १-१० ॥

[६] सुरपीड़क रावणको इसी समय एक उपाय सूझा। और उसने अवलोकिनी विद्याका चिन्तन किया। तुरन्त ही वह 'आदेश दो' कहती हुई आई और बोली, "क्या पानकर समुद्रको सोख दूँ, या देवोंसे सहित इन्द्रको पराजित करूँ या जाकर काम-देवको ध्वस्त कर दूँ, या यममहिषके सींग उखाड़कर फेंक दूँ, या शेषनागके फण-मणियोंको चूर-चूर कर दूँ, या तक्षककी दाढ़ उखाड़ दूँ या कृतान्तका मुख फाड़ डालूँ। या सूर्यके रथके अश्व

कि तइलोक्क-चक्कु संघारमि । कि अत्थक्कएँ पलउ समारमि' ॥८॥

घत्ता

वुत्तु दसाणणेंण 'एक्केण वि ण वि महु कज्जु ।
त सङ्केउ कहेँ जें हरमि एह तिय अज्जु ॥९॥

[७]

दहवयणहोँ वयणेण सु-पुज्जएँ । पभणिउ पुणु अवलोयणि विज्जए ॥१॥
'जाव समुद्दावत्तु करेक्कहोँ । वज्जावत्तु चाउ अण्णेक्कहोँ ॥२॥
जावग्गेउ वाणु करेँ एक्कहोँ । वायवु वारुणत्थु अण्णेक्कहोँ ॥३॥
जाम सीरु गम्भीरु करेक्कहोँ । करयलेँ चक्काउहु अण्णेक्कहोँ ॥४॥
ताव णारि को हरइ दिसेवहुँ । मण्डएँ वासुएव-बलएवहुँ ॥५॥
इय पच्छण्ण वसन्ति वणन्तरेँ । तेसट्ठी-पुरिसहुँ अब्भन्तरेँ ॥६॥
जिण चउवीस अद्ध गोवद्धण । णव केसव राम णव रावण ॥७॥

घत्ता

ओए भवट्ठम इय वासुएव बलएव ।
जाव णव हिय रणेँ तिय ताम लइज्जइ केव ॥८॥

[८]

अहवइ एण काइँ सुणेँ रावण । एह णारि तिहुअण-संतावण ॥१॥
लइ लइ जइ अजरामरु वट्टहि । लइ लइ जइ उप्पहेँण पयट्टहि ॥२॥
लइ लइ जइ वड्डत्तणु खण्डहि । लइ लइ जइ जिण-सासणु छण्डहि ॥३॥
लइ लइ जइ सुरवरहुँ ण लज्जहि । लइ लइ जइ णरयहोँ गमु सज्जहि ॥४॥
लइ लइ जइ परलोउ ण जाणहि । लइ लइ जइ णिय-आउ णमाणहि ॥५॥
लइ लइ जइ णिय-रज्जु ण इच्छहि । लइ लइ जइ जम-सासणु पेच्छहि ॥६॥

छीन लूँ, या मन्दराचलको अपनी अंगुलीसे टाल दूँ। क्या त्रिलोकचक्रका संहार कर दूँ, या फौरन प्रलय मचा दूँ।" (यह सुनकर) रावणने कहा—"यह सब करनेसे मेरा एक भी काम नही सधेगा। कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे मै उस स्त्रीको प्राप्त कर सकूँ" ॥ १-६ ॥

[७] रावणके वचन सुनकर समादरणीय अवलोकिनी विद्याने कहा, "जब तक एकके हाथमे समुद्रावर्त और दूसरेके हाथमे वज्रावर्त धनुष है। जब तक एकके हाथमे आग्नेय बाण है और दूसरेके हाथमें वायव्य और वारुण आयुध है। जब तक एक हाथमे गम्भीर हल और दूसरे हाथमे चक्रायुध है, तबतक पथिक राम और लक्ष्मणसे सीता देवीको कौन छीन सकता है। ये लोग त्रेसठ महापुरुषोंमे से एक हैं और प्रच्छन्न रूपसे वनवास कर रहे हैं। वे त्रेसठ महापुरुष हैं—बारह चक्रवर्ती, नौ नारायण, नौ बलभद्र, नौ प्रतिनारायण और चौबीस तीर्थंकर। उनमे भी ये वासुदेव और बलभद्र बहुत ही बलिष्ठ हैं। जब तक तुम्हारे मनमे युद्धकी इच्छा नहीं तब तक तुम इस स्त्रीको कैसे पा सकते हो ?" ॥ १-८ ॥

[८] अथवा इससे क्या यह नारी, हे रावण ! त्रिभुवनको सतानेवाली है। यदि तुम अपनेको अजर-अमर समझते हो तो इस नारीको ग्रहण कर सकते हो। यदि तुम उन्मार्ग पर चलना चाहते थो, यदि तुम अपना बड़प्पन धूलमे मिलाना चाहते हो तो इसे ले लो। यदि जिन-शासन छोड़ना चाहते हो तो इसे ले लो, यदि तुम सुरश्रेष्ठोंसे नहीं लजाते तो इसे ले लो। यदि तुम नरक जानेका साज सजाना चाहते हो तो इसे ले लो। यदि तुम परलोकको नहीं जानते तो इसे ले लो। यदि अपने राज्यकी तुम्हें इच्छा नही है तो इसे ले लो। यदि तुम यमशासनकी इच्छा करते हो तो इसे

लइ लइ जइ णिव्विण्णउ पाणहुँ । लइ लइ जइ उरु उड्डहि वाणहुँ' ॥७॥
त णिसुणेवि वयणु असुहावणु । अइ-मयणाउरु पभणइ रावणु ॥८॥

घत्ता

'माणवि एह तिय ज जिज्जइ एकु मुहुत्तउ ।
सिव-सासय-सुहहों तहों पासिउ एउ वहुत्तउ' ॥९॥

[९]

विसयासत्त-चित्तु परियाणेंवि । विज्जऍ वुत्तु णिरुत्तउ जाणेंवि ॥१॥
'णिसुणि दसाणण पिसुणमि भेउ । वेण्ह वि अत्थि एक्कु सङ्केउ ॥२॥
एहु जो दीसइ सुहडु रणङ्गणें । वावरन्तु खर-दूसण-साहणें ॥३॥
एयहों सीहणाउ आयण्णेंवि । इट्ठ-कलत्तु व तिण-समु मण्णेंवि ॥४॥
धावइ सीहु जेम ओरालेंवि । वज्जावत्तु चाउ अप्फालेवि ॥५॥
तुहुँ पुणु पच्छऍ धण उद्दालहि । पुप्फ-विमाणें छुहेंवि सचालहि' ॥६॥
त णिसुणेप्पिणु पभणिउ राउ । 'तो घइँ पइँ जँ करेवउ णाउ' ॥७॥
पहु-आएसें विज्ज पधाइय । णिविसें त सगामु पराइय ॥८॥

घत्ता

लक्खणु गहिय-सरु ज णिसुणिउ णाउ भयङ्करु ।
धाइउ दासरहि णहेँ स-धणु णाइँ णव-जलहरु ॥९॥

[१०]

भीसणु सीह-णाउ णिसुणेप्पिणु । धणुहरु करेँ सज्जीउ करेप्पिणु ॥१॥
तोणा-जुवलु लएवि पधाइउ । 'मञ्छुडु लक्खणु रणें विणिवाइउ' ॥२॥
कुढें लग्गन्तें रामें सुणिमित्तइँ । सउणु ण देन्ति होन्ति दु-णिमित्तइँ ॥३॥
फुरइ स-वाहउ वामउ लोयणु । पवहइ दाहिण-पवणु अलक्खणु ॥४॥

ले लो। यदि तुम्हें अपने प्राणोंसे विरक्ति हो गई है तो इसे ले लो। यदि अपने वक्षको बाणोंसे भिदवाना चाहते हो इसे ले लो, इन असुहावने वचनोंको सुनकर अत्यन्त कामातुर रावणने कहा, "यही तो एक मनुष्यनी है जो एक मुहूर्तके लिए मुझे जिला सकती है। शाश्वत शिवस्वरूपकी मुझे अपेक्षा नहीं, मुझे यही बहुत है" ॥१–६॥

[६] तब उसे अत्यन्त विषयासक्त समझकर और उसके निश्चयको जानकर, विद्या बोली, "सुन दशमुख! मै एक रहस्य प्रकट करती हूँ। उन दोनो (राम और लक्ष्मण) के बीचमे एक संकेत है। यह जो सुभट (लक्ष्मण) रणांगणमे दीख पड़ता है और जो खर-दूषणकी सेनासे लड़ सकता है, इसके (लक्ष्मण) सिंहनादको सुनकर दूसरा (राम) अपनी प्रिय स्त्रीको तृणवत् छोड़कर, वज्रावर्त धनुष चढ़ाकर सिंहकी भॉति गरजता हुआ दौड़ पड़ेगा। उसके पीछे (अनुपस्थिति मे) तुम सीताको उठाकर पुष्पक विमानमें लेकर भाग जाना।" यह सुनकर रावणने कहा कि यदि ऐसा है तो सिहनाद करो। प्रभुके आदेशसे विद्या दौड़ी और पलभरमे संग्रामभूमिमे पहुँच गई। इतनेमें लक्ष्मणका भयङ्कर और गम्भीर स्वर सिंहनाद सुनकर नये जलधरकी तरह राम धनुप लेकर दौड़े ॥१–६॥

[१०] सिंहनाद सुनते ही हाथमें धनुष, और दोनो तरकस लेकर राम दौड़े यह सोचकर कि कही युद्धमें लक्ष्मण आहत होकर तो नहीं गिर पड़ा। रामके पीछा करने पर, उन्हें सुनिमित्त (शकुन) दिखाई नहीं दिये। अपशकुन ही हो रहे थे। उनका बॉया हाथ और नेत्र फड़कने लगा। नाकके दाएँ रंध्रसे हवा निकल रही थी। कौआ विद्रूप बोल रहा था। 'सयार' रो रहा

वायसु विरसु रसइ सिव कन्दइ । अग्गएँ कुहिणि भुअङ्गमु छिन्दइ ॥५॥
जम्बू पहु-गुरन्त उद्धाइय । णाइँ णिवारा सयण पराइय ॥६॥
दाहिणेण पिङ्गलय समुट्ठिय । णहेँ णव गह विवरीय परिट्ठिय ॥७॥
तो वि वीरु अवगण्णेँवि धाइउ । तक्खणेँ त सङ्गामु पराइउ ॥८॥

घत्ता

दिट्ठइँ राहवेँण लक्खण-सर-हसेँहिँ खुडियइँ ।
गयण-महासरहोँ सिर-कमलइँ महियलेँ पडियइँ ॥९॥

[११]

दिट्ठु रणङ्गणु राहवचन्दे । रमिउ वसन्तु णाइँ गोविन्दें ॥१॥
कुण्डल-कडय-मउड-फल-दरिसिय । दणु-दवणा-मञ्जरिय पदरिसिय ॥२॥
गिद्धावलि - किय - चक्कन्दोलउ । णरवर-सिरइँ लएप्पिणु केलउ ॥३॥
रणेँ खेल्लन्ति परोप्परु चच्चरि । पुणु पियन्ति सोणिय-कायम्वरि ॥४॥
तेहउ समर-वसन्तु रमन्तउ । लक्खणु पोमाइउ पहरन्तउ ॥५॥
'साहु वच्छ पर तुज्झु जि छज्जइ । अण्णहोँ कासु एउ पडिवज्जइ ॥६॥
पइँ इक्खाउ-वसु उज्जालिउ । जस-पडहउ तिहुअणेँ अप्फालिउ' ॥७॥
त णिसुणेप्पिणु भणइ महाइउ । 'विरुअउ कियउ देव ज आइउ ॥८॥

घत्ता

मेल्लेवि जणय-सुय कि राहव थाणहोँ चलियउ ।
अक्खइ मज्झु मणु हिय जाणइ केण वि छलियउ' ॥९॥

[१२]

पुणरवि वुच्चइ मरगय-वण्णे । 'हउँ ण करेमि णाउ किउ अण्णे' ॥१॥
त णिसुणेवि णियत्तइ जावेँहिँ । सीया-हरणु पदुक्किउ तावेँहिँ ॥२॥

था, आगे साँप रास्ता काटकर आ रहा था ? जम्बूक लड़खड़ाकर ऐसा उठा मानो स्वनिवारित मन ही लौटकर आया हो। दाहिने ओर खुसुर खुसुर शब्द होने लगा। आकाशमे ग्रहोंकी उल्टी स्थिति दीख पड़ने लगी। तो भी वीर राम, इन सबकी उपेक्षा करके दौड़े गये और पल भरमे युद्धभूमिमे जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होने देखा कि लक्ष्मणके बाणरूपी हंसोंसे उच्छिन्न आकाश रूपी महासरोवरके सिररूपी कमल धरातलपर पड़े हैं ॥१–६॥

[११] राघवने युद्ध-स्थलमे लक्ष्मणको इस प्रकार देखा कि मानो वह वसन्त क्रीड़ा कर रहा हो। उसके कुण्डल, कटक और मुकुट फलके रूपमे देख पड़ रहे थे, दानवरूपी दवण मञ्जरी थी। गृद्धावलि ही मानो चक्रांदोलन था। तथा नरसिरोंके कन्दुक लेकर वे लोग परस्पर रणमे चर्चरी खेल खेल रहे थे। बादमे रक्तकी मदिराका पान कर रहे थे। इस प्रकार युद्धरूपी वसन्तमे क्रीड़ा करते हुए आक्रमणशील लक्ष्मणकी रामने प्रशंसा की, "साधु वीर साधु, यह तुम्हें ही शोभा देता है, दूसरे किसके लिए यह उपयुक्त हो सकता है। तुमने सचमुच इक्ष्वाकुकुलको उज्ज्वल किया। तुमने सचमुच तीनों लोकोंमे अपने यशका डंका पीटा है।" तब यह सुनकर आदरणीय लक्ष्मणने कहा, "देव बहुत बुरा हुआ यह। आप सीताको छोड़कर उस स्थानसे क्यों हटे। मेरा मन कह रहा है कि किसीने छल करके सीताका अपहरण कर लिया है ॥१–६॥

[१२] मरकत मणिके रंगकी तरह श्याम लक्ष्मणने फिर कहा, "मैंने (सिंह) नाद नहीं किया, किसी और ने किया होगा"। यह सुनते ही राम जब तक लौटकर (डेरेपर) आये, तब तक दशानन सीताका हरण कर चुका था। (उनकी अनु-

आउ दसाणणु पुप्फ-विमाणें । णाइँ पुरन्दरु सिविया-जाणें ॥३॥
पासु पढुक्किउ राहव-घरिणिहेँ । मत्त-गइन्दु जेम पर-करिणिहेँ ॥४॥
उभय-करेँहिँ सचालिय-थाणहोँ । णाइँ सरीर-हाणि अप्पाणहोँ ॥५॥
णाइँ कुलहोँ भविति हक्कारिय । लङ्कहेँ सङ्क णाइँ पइसारिय ॥६॥
णिसियर-लोयहोँ ण वज्जासणि । णाइँ भयङ्कर-राम-सरासणि ॥७॥
ण जस-हाणि खाणि वहु-दुक्खहुँ । ण परलोय-कुहिणि किय मुक्खहुँ ॥८॥

घत्ता

तक्खणेँ रावणेँण ढोइउ विमाणु आयासहोँ ।
कालेँ कुद्धएँण हिउ जीविउ ण वण-वासहोँ ॥९॥

[१२]

चलिउ विमाणु जं जेँ गयणङ्गणेँ । सीयएँ कलुणु पकन्दिउ तक्खणेँ ॥१॥
त कूवारु सुणेवि महाइउ । धुणेँवि सरीरु जडाइ पधाइउ ॥२॥
पहउ दसाणणु चञ्चू-घाएँहिँ । पक्खुक्खेवेँहिँ णहर-णिहाएँहिँ ॥३॥
एक्क-वार ओससइ ण जावेँहिँ । सयसय-वार भडप्पइ तावेँहिँ ॥४॥
जाउ विसण्ठुलु वइरि-वियारणु । चन्दहासु मणेँ सुमरइ पहरणु ॥५॥
सीय वि धरइ णियङ्गु वि रक्खइ । लज्जइ चउदिसु णयणकडक्खइ ॥६॥
दुक्खु दुक्खु तेँ धीरेँवि अप्पउ । कर-णिट्ठुर-दढ-कढिण - तलप्पउ ॥७॥
पहउ विहङ्गु पडिउ समरङ्गणेँ । देवेँहिँ कलयलु कियउ णहङ्गणेँ ॥८॥

घत्ता

पडिउ जडाइ रणेँ खर-पहर-विहुर-कन्दन्तउ ।
जाणइ-हरि-वलहुँ तिण्हि मि चित्तइँ पाडन्तउ ॥९॥

परिस्थितिमें) पुष्पक विमानमें बैठाकर रावण वैसे ही आया जैसे इन्द्र अपनी शिविकामें बैठकर आता है। मन्दोन्मत्त हाथी जिस तरह दूसरेकी हथिनीके पास पहुँचता है, उसी तरह रावण रामकी पत्नीके निकट पहुँच गया। अपने दोनों हाथोंसे उसने सीता देवीको उठा क्या लिया हो, मानो अपने ही शरीरकी हानि की हो, या अपने ही कुलके लिए सर्वनाशका आह्वान किया हो, या लंकाके लिए आशंका उत्पन्न कर दी हो। वह सीता देवी मानो निशाचर-लोकके लिए वज्र थी या रामका भयङ्कर धनुष थी, क्या यशकी हानि, और बहुदुःखोंकी खान थी। या मानो मूर्खोंके लिए परलोकके लिए पगडंडी थी। शीघ्र ही रावण अपना विमान आकाशमें ऐसे चढ़ा ले गया मानो क्रुद्ध कालने एक वनवासीका जीवन हरण कर लिया हो ॥ १-६ ॥

[१३] आकाश-प्रांगणमें जैसे ही विमान पहुँचा सीता देवीने अपना क्रंदन करना प्रारम्भ कर दिया। उस विलापको सुनते ही आदरणीय जटायु दौड़ा आया। और उस पक्षीराजने चोंचकी मार, पंखोंके उत्क्षेप और नखोंके आघातसे रावणको आहत कर दिया। वह उसे एक बार पूरा हटा नहीं पाता कि वह पक्षी सौ सौ बार झपट पड़ता। शत्रुसंहारक रावण (प्रहारों से) एकदम खिन्न हो उठा। उसने अपने चन्द्रहास खड्गका चिंतन किया। कभी वह सीताको पकड़ता, कभी वह अपनी रक्षा करता, कभी लज्जित होकर चारों ओर देखता, फिर किसी तरह बड़े कष्टसे अपनेको धीरज बँधाता, अन्तमें अपने कठोर निष्ठुर आघातसे समरांगणमें जटायुको आहत कर दिया। देवताओंने आकाशमें कलकल शब्द किया। जानकी, राम और लक्ष्मणको स्मरण करता हुआ वह धरती पर गिर पड़ा॥ १-९ ॥

[१४]

पडिउ जडाइ जं जँ फन्दन्तउ । सीयएँ किउ अक्कन्दु महन्तउ ॥१॥
'अहों अहों देवहों रणेँ दुवियड्ढहों । णिय परिहास ण पालिय सण्ढहों ॥२॥
वरि सुहडत्तणु चञ्चू-जीवहों । जो अब्भिट्टु समरेँ दसगीवहों ॥३॥
णउ तुम्हेँ हिँ रक्खिउ वड्डुत्तणु । सूरहों तणउ दिट्ठु सूरत्तणु ॥४॥
सच्चउ चन्दु वि चन्द-गहिल्लउ । वम्भु वि सोत्तिउ हरु दुम्महिलउ ॥५॥
वाउ वि चवलत्तणेँण दमिज्जइ । धम्मु वि रण्ड-सएहिँ लइज्जइ ॥६॥
वरुणु वि होइ सहावेँ सीयलु । तासु कहि मि कि सक्कइ पर-वलु ॥७॥
इन्दु वि इन्दवहेण रमिज्जइ । को सुरवर-सण्ढेँ हिँ रक्खिज्जइ ॥८॥

घत्ता

जाउ किं जम्पिएँण जगेँ अण्णु ण अब्भुद्धरणउ ।
राहउ इह-भवहों पर-लोयहों जिणवरु सरणउ' ॥९॥

[१५]

पुणु वि पलाउ करन्ति ण थक्कइ । 'कुढेँ लग्गउ लग्गउ जो सक्कइ ॥१॥
हउँ पावेण एण अवगण्णेँ वि । णिय तिहुअणु अ-मणूसउ मण्णेँ वि' ॥२॥
पुणु वि कलुणु कन्दन्ति पयट्टइ । 'एँहु अवसरु सप्पुरिसहों वट्टइ ॥३॥
अह मइँ कवणु णेइ कन्दन्ती । लक्खण-राम वे वि जइ हुन्ती ॥४॥
हा हा दसरह माम गुणोवहि । हा हा जणय जणय अवलोयहि ॥५॥
हा अपराइएँ हा हा केक्कइ । हा सुप्पहेँ सुमित्तेँ सुन्दर-मइ ॥६॥
हा सत्तुहण भरह भरहेसर । हा भामण्डल भाइ सहोयर ॥७॥
हा हा पुणु वि राम हा लक्खण । को सुमरमि कहों कहमि अ-लक्खण ॥८॥

घत्ता

को सथवइ मइँ को सुहि कहों दुक्खु महन्तउ ।
जहिँ जहिँ जामि हउँ त त जि पएसु पलित्तउ' ॥९॥

[१४] तड़फड़ाकर जटायुके गिर पड़नेपर सीता और भी उच्चस्वरसे विलाप करने लगी, "अरे अरे रणमें दुर्विदग्ध देवो ! तुम अपनी प्रतिज्ञाका भी पालन नहीं कर सके। तुमसे तो चंचु-जीवी जटायु पक्षीका ही सुभटपन अच्छा है। (कमसे कम) वह युद्धमें रावणसे लड़ा तो। तुम अपना बड़प्पन नहीं रख सके। सूर्यका सूर्यपन भी मैंने देख लिया, चन्द्रमा वास्तवमें राहुग्रस्त हैं। ब्रह्मा तो ब्राह्मण ही ठहरे, विष्णु दो पत्नीवाले हैं। वासुदेव भी अपनी चपलतासे दम्भी हो रहे है, धर्मदेव भी सैकड़ों राड़ोंसे लज्जित हो रहे है। वरुण तो स्वभावसे ही शीतल है। शत्रु-सेनाको उनसे क्या शङ्का हो सकती है। इन्द्र भी अपने इन्द्रपनको याद कर रहे है। भला देव-समूहने (आजतक) किसकी रक्षा की है। और फिर क्या दुनियामें चिल्लानेसे किसीका उद्धार हुआ है। अब तो इस जन्ममें राम, और दूसरे जन्ममें जिनवरकी ही शरण मुझे प्राप्त हो ॥१–९॥

[१५] सीतादेवी बार-बार विलाप करती हुई नहीं अघा पा रही थीं, जो सम्भव था उससे उन्होंने दशाननका सामना किया। बार-बार वह (सीता देवी) यही सोच रही थीं कि तीनो लोकोंमे मुझे अनाथ समझ, इस प्रकार अपमानित करके ले जा रहा है। सत्पुरुषका यही तो अवसर है। यदि राम और लक्ष्मण यहाँ होते तो इस तरह विलपती हुई मुझे कौन ले जा सकता था। हा दशरथ, हे गुणसमुद्र मामा, हा पिता जनक, हे अपराजिता, हे कैकयी, हे सुप्रभा, हे सुन्दरमति सुमित्रा, हा शत्रुघ्न, हे भरतेश्वर भरत ! हा सहोदर भामडल। हा राम, लक्ष्मण ! अभागिनी मै (आज) किससे कहूँ। किसको याद करूँ। मुझे कौन सहारा देगा। अपना इतना भारी दुख किससे निवेदित करूँ। मैं जिस प्रदेशमें जाती हूँ वही आगसे प्रदीप्त हो उठता है ॥१–९॥

[१६]

तहिँ अवसरेँ वट्टन्तेँ सु-विउलएँ । दाहिण-लवण-समुद्दहोँ कूलएँ ॥१॥
अत्थि पचण्डु एक्कु विज्जाहरु । वर-करवाल-हत्थु रणेँ दुद्धरु ॥२॥
भामण्डलहोँ चलिउ ओलग्गएँ । सुअ कन्दन्ति सीय तामग्गएँ ॥३॥
वलिउ विमाणु तेण पडिवक्खहोँ । 'ण तिय का वि भणइ मइँ रक्खहोँ ॥४॥
लक्खण-राम वे वि हक्कारइ । भामण्डलहोँ णामु उच्चारइ ॥५॥
मल्लुहु एह सीय एँहु रावणु । अण्णु ण पर-कलत्त-संतावणु ॥६॥
अच्छउ णिवहोँ पासु जाएवउ । एण समाणु अज्जु जुज्झेवउ' ॥७॥
एम भणेवि तेण हक्कारिउ । 'कहिँ तिय लेवि जाहि' पच्चारिउ ॥८॥

घत्ता

'विहि मि भिडन्ताहुँ जिह हणइ एक्कु जिह हम्मइ ।
गेण्हेँ वि जणय-सुय वलु वलु कहिँ रावण गम्मइ' ॥९॥

[१७]

वलिउ दसाणणु तिहुअण-कण्टउ । सीहहोँ सीहु जेम अब्भिट्टउ ॥१॥
जेम गइन्दु गइन्दहोँ धाइउ । मेहहोँ मेहु जेम उद्धाइउ ॥२॥
भिडिय महावल विज्जा-पाणेँ हिँ । वे वि परिट्ठिय सिविया-जाणेँ हि ॥३॥
वे वि पसाहिय णाणाहरणेँ हिँ । वेण्णि वि वावरन्ति णिय-करणेँ हिँ ॥४॥
वेण्णि वि घाय देन्ति अवरोप्परु । मणेँ विरुद्धु भामण्डल-किङ्करु ॥५॥
वर-करवालु करेप्पिणु करयलेँ । पहउ दसाणणु वियड-उरत्थलेँ ॥६॥
पडिउ घुलेप्पिणु जण्हुव-जोत्तेँहिँ । रुहिरु पदरिसिउ दसहि मि सोत्तेँ हिँ ॥७॥
पुणु विज्जाहरेण पच्चारिउ । 'सुरवर-समर-सएँहिँ अ-णिवारिउ ॥८॥
तुहुँ सो रावणु तिहुवण-कण्टउ । एक्कें घाएं णवर पलोट्टिउ' ॥९॥

[१६] उस अवसरपर दक्षिण समुद्रके विशाल तटपर अत्यन्त प्रचण्ड एक विद्याधर रहता था। हाथमें खड्ग लिये, युद्धमें दुर्धर, वह भामण्डलका अनुचर था जो उसकी सेवामे कहीं जा रहा था। उसने सीतादेवीके विलापको सुन लिया। उसे लगा कि कोई स्त्री पुकार रही है कि मेरी रक्षा करो, वह राम और रावणका नाम बार-बार ले रही है। फिर वह भामण्डलका भी नाम लेती है। कहीं यह सीता और रावण न हो। क्योंकि दशाननको छोड़कर और कौन परस्त्रीका हरण कर सकता है। "चाहे मै राजा भामण्डलके पास न जा सकूँ पर मुझे इस दुष्टसे अवश्य जूझना चाहिए।" यह निश्चयकर वह रावणको ललकारकर व्यङ्गमें कहा, "अरे अरे, स्त्रीको उड़ाकर कहाँ जा रहा है। आओ हम दोनों लड़ ले। जिससे एक मरे और या दूसरा। रावण ! मुड़ो, मुड़ो सीताको लेकर कहाँ जा रहे हो" ॥ १–६ ॥

[१७] तब त्रिभुवनकण्टक दशानन उस विद्याधरसे उसी प्रकार भिड़ गया जिस प्रकार सिह सिंहसे, गजेन्द्र गजेन्द्रसे और मेघ मेघसे टकरा पड़ते है। दोनोके हाथमे विद्याएँ थीं। दोनो ही शिविकामे बैठे थे। दोनो ही विविध आभूषणोसे भूषित थे। दोनों ही अपने हाथोसे प्रहार कर रहे थे। दोनों एक दूसरेपर आघात करना चाह रहे थे। अपने मनमे क्रुद्ध होकर भामण्डलके अनुचर उस विद्याधरने अपनी उत्तम कृपाण हाथमे लेकर रावणकी छाती पर आघात किया। आहत होकर वह घुटनोंके बल गिर पड़ा ? दशों धाराओमे उसका रक्त प्रवाहित हो उठा। तब वह विद्याधर व्यङ्गके स्वरमे बोला—"देवताओके शत-शत युद्धोमे दुर्निवार और त्रिभुवनकण्टक रावण तुम्हीं हो, जो आज केवल एक ही आघात मे लोट-पोट हो गये।" इतनेमे सचेतन होकर और युद्धमत्सरसे

घत्ता

चेयणु लहेँवि रणेँ भड्डु उट्ठिउ कुरुद्धु स-मच्छरु ।
तहोँ विज्जाहरहोँ थिउ रासिहिँ णाइँ सणिच्छरु ।।१०।।

[१८]

उट्ठिउ वीसपाणि असि लेन्तउ । णाइँ स-विज्जु मेहु गज्जन्तउ ।।१।।
विज्जा-छेउ करेँवि विज्जाहरेँ । घत्तिउ जम्बूदीवब्भण्तरेँ ।।२।।
पुणु दससिरु सचल्लु स-सोयउ । णहयलेँ णाइँ दिवायरु वीयउ ।।३।।
मज्झेँ समुद्दहोँ जयसिरि-माणणु । पुणु वोल्लेवएँ लग्गु दसाणणु ।।४।।
'काइँ गहिल्लिएँ मइँ ण समिच्छहि । कि महएवि-पट्टु ण समिच्छहि ।।५।।
किं णिक्कण्टउ रज्जु ण भुञ्जहि । कि ण वि सुरय-सोक्खु अणुहुञ्जहि ।।६।।
कि महु केण वि भग्गु मडप्फरु । कि दूहउ किं कहि मि असुन्दरु' ।।७।।
एम भणेंवि आलिङ्गइ जावेँहिँ । जणय-सुयएँ णिब्भच्छिउ तावेँहिँ ।।८।।

घत्ता

'दिवसेँहिँ थोवएँहिँ तुहुँ रावण समरेँ जिणेवउ ।
अम्हहुँ वारियएँ राम-सरेँहिँ आलिङ्गेवउ' ।।९।।

[१९]

णिट्ठुर-वयणेँहिँ दोच्छिउ जावेँहिँ । दहमुहु हुअउ विलक्खउ तावेँहिँ ।।१।।
'जइ मारमि तो एह ण पेच्छमि । वोल्लउ सव्वु हसेप्पिणु अच्छमि ।।२।।
अवसेँ क दिवसु इ इच्छेसइ । सरहसु कण्ठ-ग्गहणु करेसइ ।।३।।
'अण्णु वि मइँ णियम-वउ पालेव्वउ । मण्डएँ पर-कलत्तु ण लएव्वउ' ।।४।।
एम भणेवि चलिउ सुर-डामरु । लङ्क पराइउ लद्ध-महावरु ।।५।।

भरकर दशानन उठा। वह विद्याधरके सम्मुख इस प्रकार स्थित हो गया मानो राशियोंके समक्ष शनि-देवता ही आ बैठे हों ॥१-६॥

[१८] रावण खड्ग लेकर ऐसे उठा, मानो बिजली और महामेघ ही गरजा हो। तब उसने विद्याधरकी विद्याको छेदकर उसे जम्बूद्वीपके भीतर कहीं फेंक दिया। (बादमें) रावण सीताको लेकर चल दिया। (वह आकाशमें ऐसा चमक रहा था) मानो दूसरा ही सूर्य हो। फिर समुद्रके बीचमें, जयश्रीका अभिमानी रावण बार-बार सीता देवीसे कहने लगा—"हठीली, तुम मुझे क्यों नही चाहतीं। क्या तुम्हें महादेवी पदकी चाह नही है, क्या तुम निष्कण्टक राज्यका भोग करना नहीं चाहती। क्या सुरति-सुखका आनन्द लेना नहीं है। क्या किसीने मेरा मान भङ्ग किया है। क्या मैं दुर्भग हूँ या असुन्दर", ऐसा कहकर ज्यों ही उसने सीता देवीका आलिंगन करना चाहा त्योंहीं उसने उसकी भर्त्सना की और कहा—"रावण, थोड़े ही दिनमें तुम जीत लिये जाओगे और हमारी परिपाटीके अनुसार रामके बाणोंसे आलिंगन करोगे" ॥१-६॥

[१६] इन कठोर वचनोंसे लांछित रावण मनमें बहुत ही दुखी हुआ। उसने मन ही मन विचार किया कि यदि मैं मारता हूँ तो इसे फिर देख नहीं सकता, इसलिए सब बातोंको हँसकर टालते रहना ही अच्छा है। अवश्य ही कोई न कोई ऐसा दिन होगा कि जब मुझे चाहने लगेगी और हर्षोत्फुल्ल होकर मेरे (कण्ठ का) आलिङ्गन करेगी। और भी फिर मुझे अपने इस व्रतका पालन करना है कि मैं परस्त्रीको बल-पूर्वक ग्रहण नही करूँगा। इस असमंजसमें पड़ा हुआ देव-भयङ्कर बड़े-बड़े वरोंको प्राप्त

सीयएँ वुत्तु 'ण पइसमि पट्टणेँ । अच्छमि एत्थु विउलेँ णन्दणवणेँ ॥६॥
जाव ण सुणमि वत्त भत्तारहोँ । ताव णिवित्ति मज्झु आहारहोँ' ॥७॥
त णिसुणेँ वि उववणेँ पइसारिय । सीसव-रुक्ख-मूलेँ वइसारिय ॥८॥

घत्ता

मेल्लेँ वि सीय वणेँ गउ रावणु घरहोँ तुरन्तउ ।
धवलेँहिँ मङ्गलेँहिँ थिउ रज्जु स इ भु अन्तउ ॥९॥

•

[३९. एगुणचालीसमो संधि]

कुढेँ लग्गोप्पिणु लक्खणहोँ वलु जाम पडीवउ आवइ ।
तं जि लयाहरु तं जि तरु पर सीय ण अप्पउ दावइ ॥

[१]

णीसीयउ वणु अवयज्जियउ । ण सररुहु लच्छि-विसज्जियउ ॥१॥
णं मेह-विन्दु णिव्विज्जुलउ । ण मुणिवर-वयणु अ-वच्छलउ ॥२॥
ण भोयणु लवण-जुत्ति-रहिउ । अरहन्त-विम्बु णं अ-चसहिउ ॥३॥
ण दत्ति-विवज्जिउ किविण-धणु । तिह सीय-विहूणउ दिट्ठु वणु ॥४॥
पुणु जोअइ गुहिलेँहिँ पइसरेँ वि । थिय जाणइ जाणइ ओसरेँ वि ॥५॥
पुणु जोवइ गिरि-विवरन्तरेँहिँ । थिय जाणइ लिहक्केँवि कन्दरेँहिँ ॥६॥
ताणन्तरेँ दिट्ठु जडाइ वणेँ । ससूडिय-गत्तउ पडिउ रणेँ ॥७॥

करनेवाला रावण चला और लङ्कामें पहुँच गया। तब सीता देवीने कहा—"मैं नगरमें प्रवेश नहीं करूँगी, मैं इसी विशाल नन्दन वनमे रहूँगी और जबतक मै अपने पतिका समाचार नहीं सुन लेती तबतक मैं आहारका त्याग करती हूँ।" तब रावण सीता देवीको नन्दन वनमे ले गया और वहाँ शिशपा वृक्षके नीचे उन्हें छोड़ दिया। इस प्रकार सीता देवीको नन्दनवनमें छोड़कर वह तुरन्त अपने घर चला गया। धवल और मङ्गल गीतोंके साथ वह अपने राज्यका भोग करने लगा ॥१-६॥

•

उनतालीसवीं संधि

इधर राम लक्ष्मणकी बात मानकर जैसे ही लौटकर आये तो उन्होंने देखा कि (आश्रम) मे लतागृह वही है, वृक्ष भी वही है, पर सीता देवी कहीं भी दृष्टि-गोचर नहीं हो रही हैं।

[१] सीता देवीसे विहीन वह वन रामको ऐसे लगा मानो शोभासे हीन कमल हो, या विद्युत्से रहित मेघ-समूह हो या वात्सल्यसे शून्य मुनि-वचन हो, नमकसे रहित भोजन हो, या मानो देवगृहोचित आसनसे विहीन जिन-प्रतिबिम्ब हो या कि दानसे रहित कृपण हो। सीता देवीसे रहित वन रामको ऐसा ही दीख पड़ा। यह सोचकर कि जानकी शायद कहींपर जान-बूझकर छिपकर बैठी हैं उस लतागुल्मोंमे खोजने लगे। फिर उन्होंने उन्हें पर्वतोंकी कन्दराओंमे ढूँढ़ा, हो सकता हो वह वहीं जा छिपी हों। इतनेमें रामको जटायु पक्षी दीख पड़ा। क्षत-विक्षत होकर (वह)

घत्ता

पहर-विहुर-घुम्मन्त-तणु ज दिट्ठु पक्खि णिद्दलियउ ।
तावेँहिँ वुज्झिउ राहवेँण हिय जाणइ केण वि छलियउ ॥८॥

[२]

पुणु दिण्ण तेण सुह वसु-हारा । उच्चारेँवि पञ्च णमोक्कारा ॥१॥
जे सारभूय जिण-सासणहोँ । जे मरण-सहाय भव्व-जणहोँ ॥२॥
लद्धेहिँ जेहिँ दिढ होइ मइ । लद्धेहिँ जेहिँ परलोय-गइ ॥३॥
लद्धेहिँ जेहिँ सभवइ सुहु । लद्धेहिँ जेहिँ णिज्जरइ दुहु ॥४॥
ते दिण्ण विहङ्गहोँ राहवेँण । किय-णिसियर-णियर - पराहवेँण ॥५॥
'जाएज्जहि परम-सुहावहेँण । अणरण्णाणन्तवीर - पहेँण' ॥६॥
त वयणु सुणेँवि सव्वायरेँण । लहु पाण विसज्जिय णहयरेँण ॥७॥
ज मुउ जडाइ हिय जणय-सुअ । धाहाविउ उब्भा करेँवि भुअ ॥८॥

घत्ता

'कहिँ हउँ कहिँ हरि कहिँ घरिणि कहिँ घरु कहिँ परियणु छिण्णउ ।
भूय-वलि व्व कुडुम्वु जगेँ हय-दइवेँ कह विक्खिण्णउ' ॥९॥

[३]

वलु एम भणेवि पमुच्छियउ । पुणु चारण-रिसिहिँ णियच्छियउ ॥१॥
चारण वि होन्ति अट्ठविह-गुण । जे णाण-पिण्ड सीलाहरण ॥२॥
फल फुल्ल-पत्त-णह - गिरि-गमण । जल - तन्तुअ - जङ्घा - सचरण ॥३॥
तहिँ वीर सुधीर विसुद्ध-मण । णह-चारण आइय वेण्णि जण ॥४॥
तेँ अवही-णाणे जोइयउ । रामहोँ कलत्तु विच्छोइयउ ॥५॥
आऊरेँवि गल-गम्भीर-झुणि । पुणु लग्गु चवेवएँ जेट्ठ-मुणि ॥६॥
'भो चरम-देह सासय-गमण । केँ कज्जेँ रोवहि मूढ-मण ॥७॥

युद्ध-भूमिमें पड़ा हुआ था। प्रहारोंसे अत्यन्त विधुर कम्पित-शरीर और अधकुचले हुए उस जटायुको देखकर रामने पूछा—"कौन सीताको छल करके हर ले गया।" ॥१-८॥

[२] फिर रामने णमोकार मन्त्रका उच्चारण करके उसे आठ मूलगुण दिये। ये मूलगुण जिन-शासनके सार-भूत हैं, और मृत्युके समय भव्य-जनोंके लिए अत्यन्त सहायक होते हैं। इनको ग्रहण करनेसे बुद्धि दृढ़ होती है। परलोककी गति सुधरती है। जिनको ग्रहण करनेसे सुख सम्भव होता है। जिनको ग्रहण करनेसे दुखका क्षय होता है। निशाचर-समूहके संहारक रामने ऐसे मूल-गुणोंका उपदेश करते हुए कहा—"तुम अनरण्य और अनन्तवीरके शुभ-मार्गसे जाओगे।" यह सुनते ही महनीय जटायुने अपने प्राणोंका विसर्जन कर दिया। उसकी मृत्यु और सीता देवीके अपहरणको देखकर राम अपने दोनों हाथ ऊपर उठाकर डाढ़ मारकर विलाप करने लगे—"कहां मै? कहां लक्ष्मण और कहां कुटुम्बि-जन। कठोर भाग्य देवताने भूत-बलि की तरह मेरे कुटुम्बको कहींका कहीं बखेर दिया है।" ॥१-९॥

[३] यह कहकर राम मूर्छित हो गये। तब दो चारण ऋद्धिधारी मुनियोंने रामको देखा। चारण होकर भी वे दोनों आठ गुणोंसे सम्पन्न ज्ञान शरीर शीलसे अलंकृत फल, फूल, पत्र, नभ और पर्वतपर गमन करनेवाले? जल-जन्तु (मृणाल) की तरह जङ्घाओंसे चलनेवाले? वीर, सुधीर और विशुद्ध आकाश-गामी वे दोनो वहाँ आये (जहाँ राम थे)। अवधिज्ञानका प्रयोग करके उन्होंने जान लिया कि रामको पत्नी-वियोग हुआ है। तदनन्तर करुणासे भरकर ज्येष्ठ-मुनि, अपनी गम्भीर ध्वनिमें बोले—"अरे मोक्षगामी और चरमशरीर राम! तुम मूढ़ बनकर

तिय दुक्खहुँ खाणि विओय-णिहि । तहें कारणेँ रोवहि काइँ विहि ॥८॥

घत्ता

किं पइँ ण सुइय एह कह छज्जीव-णिकाय-दयावरु ।
जिह गुणवइ-अणुअत्तणेँण जिणयासु जाउ वणेँ वाणरु' ॥९॥

[४]

ज णिसुणिउ को वि चवन्तु णहेँ । मुच्छा-विहलङ्घलु धरणि-वहेँ ॥१॥
'हा सीय' भणन्तु समुट्ठियउ । चउ-दिसउ णियन्तु परिट्ठियउ ॥२॥
ण करि करिणिहेँ विच्छोइयउ । पुणु गयण-मग्गु अवलोइयउ ॥३॥
तहिँ ताव णिहालिय विण्णि रिसि । सगहिय जेहिँ परलोय-किसि ॥४॥
ते गुरु गुरु-भत्ति करेवि थुय । 'हो धम्म-विद्धि सिरि-णमिय-भुय ॥५॥
गिरि-मेरु-समाणउ जेत्थु दुहु । तहेँ कारणेँ रोवहि काइँ तुहुँ ॥६॥
खल तियमइ जेण ण परिहरिय । तहोँ णरय-महाणइ दुत्तरिय ॥७॥
रोवन्ति एम पर कप्पुरिस । तिण-समु गणन्ति जे सप्पुरिस ॥८॥

घत्ता

तियमइ वाहिहेँ अणुहरइ खणेँ खणेँ दुक्खन्ति ण थक्कइ ।
हम्मइ जिण-वयणोसहेँण जेँ जम्म-सए वि ण ढुक्कइ ॥९॥

[५]

त वयणु सुणेप्पिणु भणइ वलु । मेल्लन्तु णिरन्तरु असु-जलु ॥१॥
'लब्भन्ति गाम-वरपट्टणइँ । सीयल-विउलइँ णन्दण वणइँ ॥२॥
लब्भन्ति तुरङ्गम मत्त गय । रह कणय-दण्ड - धुव्वन्त-धय ॥३॥
लब्भन्ति भिच्चवर आण-कर । लब्भइ अणुहुञ्जेँवि स-धर धर ॥४॥
लब्भइ घरु परियणु वन्धु-जणु । लब्भइ सिय सम्पय दव्वु धणु ॥५॥

रोते क्यों हो ? स्त्रियाँ दुखकी खान और वियोगकी निधि होती है। तो उसके लिए तुम क्यों रोते हो ? क्या तुमने यह कहानी नहीं सुनी कि छह कायके जीवोंपर दया करनेवाले गुणव्रत और अणुव्रतके धारण करनेवाले जिनदासको किस प्रकार वनमे वानर बनना पड़ा ॥१-६॥

[४] तब धरतीपर मूर्छासे विह्वल रामने सुना कि कोई मुझसे आकाशमे बाते कर रहा है तो वह 'हा सीता' कहकर उठे वह चारो ओर देखने लगे। मानो हथिनीके वियोगमें हाथी चारो ओर देख रहा हो। फिर उन्होंने आकाशकी ओर देखा। आकाश में उन्हें दो मुनि दीख पड़े। वे दोनो मुनि अपने परलोककी खेती संगृहीत कर चुके थे। और गुरुभक्तिमें स्तुत्य थे। उन्होंने रामसे कहा—"अरे धर्मबुद्धि और श्रीसम्पन्न बाहु राम ! तुम उस बातके लिए क्यों रोते हो जिसमे सुमेरु-पर्वत बराबर दुख है। जिसने दुष्ट स्त्रीको नहीं छोड़ा उसके लिए नरकरूपी नदीका संतरण बहुत कठिन है। कायर-पुरुष ही इस प्रकार रुदन करते है। सत्पुरुष तो स्त्रीको तृणवत् समझते है। स्त्री वह व्याधि है जो क्षण-क्षण दुःख देती हुई भी नहीं अघाती। परन्तु जो जिनके उपदेशसे उत्साहित होकर उसे छोड़ देते हैं उन्हें सैकड़ो जन्ममे भी दुख नहीं होता ॥१-६॥

[५] यह वचन सुनकर, अविरल अश्रुधारा बहाते हुए रामने कहा "गाँव और पत्तन मिल सकते है, शीतल बड़े-बड़े उद्यान मिल सकते है, उत्तम अश्व और गज प्राप्त हो सकते है, स्वर्ण-दंडपर फहराती हुई पताका मिल सकती है, आज्ञाकारी अनुचर मिल सकते हैं, और भोगके लिए पर्वतसहित वसुंधरा प्राप्त हो सकती है। परिजन पुरजन मिल सकते हैं। शोभा, सम्पत्ति और द्रव्य

लब्भइ तम्वोलु विलेवणउ । लब्भइ हियइच्छिउ भोयणउ ॥६॥
लब्भइ भिङ्गारोलम्वियउ । पाणिउ कप्पूर-करम्वियउ ॥७॥
हियइच्छिउ मणहरु पियवयणु । पर एहु ण लब्भइ तिय-रयणु ॥८॥

घत्ता

त जोव्वणु त मुह-कमलु त सुरउ सवट्टण-हत्थउ ।
जेण ण माणिउ एत्थु जगेँ तहोँ जीविउ सव्वु णिरत्थउ' ॥९॥

[६]

परमेसरु पभणइ वलेँवि मुहु । 'तिय-रयणु पससहि काइँ तुहुँ ॥१॥
पेक्खन्तहुँ पर वण्णुज्जलउ । अब्भन्तरेँ रुहिर-चिलिव्विलउ ॥२॥
दुग्गन्ध-देहु घिणि-विट्टलउ । पर चम्मेँ हड्डहुँ पोट्टलउ ॥३॥
मायामेँ जन्तेँ परिभमइ । भिण्णउ णव-णाडिहिँ परिसवइ ॥४॥
कम्मट्ठ - गण्ठि - सय - सिक्किरिउ । रस-वस - सोणिय-कद्दम-भरिउ ॥५॥
वहु-मस-रासि किमि-कीड-हरु । खट्टहेँ वइरिउ भूमीहेँ भरु ॥६॥
आहारहोँ पिसिवउ सोवियउ । णिसि मडउ दिवसेँ संजोवियउ ॥७॥
णीसासूसासु करन्ताहुँ । गउ जम्मु जियन्त-मरन्ताहुँ ॥८॥

घत्ता

मरण-कालेँ किमि-कप्परिउ जं पेक्खेँवि मुहु वङ्किज्जइ ।
घिणिहिणन्तु मक्खिय-सएँहिँ त तेहउ केम रमिज्जइ ॥९॥

[७]

त चलण-जुअलु गइ-मन्थरउ । सउणहिँ खज्जन्तु भयङ्करउ ॥१॥
त सुरय-णियम्वु सुहावणउ । किमि-विलविलन्तु चिलिसावणउ ॥२॥
त णाहि-पएसु किसोयरउ । खज्जन्त-माणु थिउ भासुरउ ॥३॥
त जोव्वणु अवरुण्डण-मणउ । सुजन्तु णवर भीसावणउ ॥४॥
त सुन्दरु वयणु जियन्ताहुँ । किमि-कप्पिउ णवर मरन्ताहुँ ॥५॥

भी मिल सकते है, पान और विलेपन तथा अनुकूल उत्तम भोजन मिल सकता है। शृंगार (भ्रमर) चुम्बित और कर्पूर-सुधासित जल मिल सकता है, परंतु हृदयसे वांछित सुन्दरमुखी यह स्त्री-रत्न नहीं मिल सकता। वह यौवन, वह मुख कमल, वह सुरति, सुडौल हाथ, (इन सबको) जिसने इस जगमे बहुत नहीं माना उसका समस्त जीवन व्यर्थ है" ॥१-६॥

[६] थोड़ा मुख बिचकाकर तब फिर परमेश्वर बोले—"तुम स्त्रीकी प्रशंसा क्यों करते हो, तुम उसका केवल उज्ज्वल रंग देखते हो। पर भीतर तो वह रक्तसे लिप्त है। शरीरसे दुर्गन्धित, घृणाकी गठरी और चामवेष्टित हड्डियोंकी पोटली है। मायाके यन्त्रसे वह घूमती है। नौ नाड़ियोंसे उद्‌भिन्न होकर चल रही है। आठ कर्मोंकी गॉठोसे संघटित रस, मज्जा और रक्तपंकसे भरी उसे केवल प्रचुर मांसका ढेर समझिए, कृमि और कीड़ोका घर है। तथा खाटकी शत्रु और धरतीको भार है। आहारके लिए पीसना और रातमें मृतककी भॉति सो जाना, दिनमे जीवित रहना। इस प्रकार श्वास लेते छोड़ते तथा जीते मरते हुए स्त्रीका जन्म व्यतीत हो जाता है। मरणकालमे कीड़े उसे ऐसा काट खाते है, कि उसे देखकर लोग मुख टेढ़ा कर लेते हैं। सैकड़ो मक्खियोंसे घिनौने उस वैसे स्त्री-शरीरसे किस प्रकार रमण किया जाता है" ॥१-६॥

[७] उसके मंथर गतिवाले चरण-युगलको पक्षी बुरी तरह खा जाते है, वह सुहावना सुरति-नितम्ब कीड़ोसे बिलबिलाता हुआ घिनौना हो उठता है। वह चमकीला क्षीण मध्यभाग केवल खा लिया जाता है। आलिंगनकी इच्छा रखनेवाला यह यौवन भयंकर रूपसे क्षीण हो उठता है। जीवित अवस्थाके उस सुन्दर

त अहर-बिम्बु वण्णुज्जलउ । लुञ्चन्तु सिवहिँ घिणि-विट्टलउ ॥६॥
त णयण-जुअलु विब्भम-भरिउ । विच्छायउ काएँहिँ कप्परिउ ॥७॥
सो चिहुर-भारु कोड्डावणउ । उड्डन्तु णवर भीसावणउ ॥८॥

घत्ता

त माणुसु त मुह-कमलु ते थण त गाढालिङ्गणु ।
णवर घरेप्पिणु णासउड्डु वोल्लेवउ "धिधि चिलिसावणु" ॥९॥

[८]

तहिँ तेहएँ रस-वस-पूय-भरेँ । णव मास वसेवउ देह-धरेँ ॥१॥
णव-णाहि-कमलु उत्थल्लु जहिँ । पहिलउ जेँ पिण्ड-संवन्धु तहिँ ॥२॥
दस-दिवसु परिट्ठिउ रुहिर-जलेँ । कणु जेम पइण्णउ धरणियलेँ ॥३॥
विहिँ दसरत्तेहिँ समुट्ठियउ । ण जलेँ डिण्डीरु परिट्ठियउ ॥४॥
तिहिँ दसरत्तेहिँ वुव्वउ घडिउ । ण सिसिर-विन्दु कुङ्कुमेँ पडिउ ॥५॥
दसरत्तेँ चउत्थएँ वित्थरिउ । णावइ पवलङ्कुरु णीसरिउ ॥६॥
पञ्चमेँ दसरत्तेँ जाव वलिउ । ण सूरण-कन्दु चउप्फलिउ ॥७॥
दस-दसरत्तेहिँ कर-चरण-सिरु । वीसहिँ णिप्पण्णु सरीरु थिरु ॥८॥
णवमासिउ देहहोँ णीसरिउ । वड्ढन्तु पढीवउ वीसरिउ ॥९॥

घत्ता

जेण दुवारेँ आइयउ जो तं परिहरेँवि ण सक्कइ ।
पन्तिहिँ जुत्तु वइल्लु जिह भव-संसारेँ भमन्तु ण थक्कइ ॥१०॥

[९]

एँउ जाणेँवि धीरहि अप्पणउ । करेँ कङ्कणु जोवहि दप्पणउ ॥१॥
चउगइ-ससारेँ भमन्तएँण । आवन्तेँ जन्त-मरन्तएँण ॥२॥

मुखड़ेको, मरते समय कृमि खा जाते हैं। उजले रंगवाले, घृणित और उच्छिष्ट अधरबिम्ब सियार लुंजित कर देते है। विभ्रमसे भरे, कान्तिहीन दोनो नेत्रोको कौए खण्डित कर देते है। कुतूहलजनक वह केशकलाप भी भयंकररूपसे बिखर जाता है। वह मनुष्य, वह मुख कमल, वे स्तन, वह प्रगाढ़ आलिंगन—ये जब नष्ट होने लगते है तो लोग यही बोल उठते हैं, "छिः छिः कितने घिनौने है ये" ॥१–६॥

[८] उस वैसे रस, मज्जा और मांससे भरे देहरूपी घरमे यह जीव ९ माह रहता है। वहीं पहले नया नाभिकमल (नरा) उत्पन्न होता है। पहला पिंड सम्बन्ध तभी होता है। फिर दस दिन वह रुधिर-रूपी जलमे रहता है, ठीक वैसे ही जैसे बीज धरतीमे पड़ा रहता है। फिर बीस दिनमे वह और उठता है, मानो जलमे फेन उठा हो, तीस दिनमे वह बुद्बुद् (बुब्बुक्) बनता है मानो परागमें हिमकण पड़ा हो। चालीस दिनमे वह फैल जाता है मानो नया प्रबल अंकुर फैल गया हो। पचास दिनमे वह और पुष्ट होता है मानो चारो ओरसे विकसित सूरन कन्द हो। फिर सौ दिनमे हाथ, सिर, पैर बन जाते है और बीस दिनमें शरीर स्थिर हो जाता है। इस प्रकार ९ माहमे जीव शरीर (माँके उदर) से निकलता है। और बढ़ता हुआ, यह सब भूल जाता है। (आश्चर्य है) कि जीव जिस द्वारसे आता है वह उसीको नहीं छोड़ सकता। जुँएमे जुते हुए तेलीके बैलकी तरह भव-संसारमे भटकता हुआ कभी नही थकता ॥१–१०॥

[९] यह समझकर अपने मनमें धीरज रखना चाहिए। जरा हाथका कड़ा और दर्पण तो देखो। चार गतियोंसे संकुल इस संसारमे आते-जाते और मरते हुए जीवने जगमें किसे नहीं रुलाया,

जगेँ जीवेँ को ण रुआवियउ । को गरुअ धाह ण मुआवियउ ॥३॥
को कहि मि णाहिँ सताविय उ । को कहि मि ण आवइ पावियउ ॥४॥
को कहिँ ण दड्ढु को कहिँ ण मुउ । को कहिँ ण भमिउ को कहिँ ण गउ ॥५॥
कहिँ ण वि भोयणु कहिँ ण वि सुरउ । जगेँ जीवहोँ किं पि ण वाहिरउ ॥६॥
तइलोक्कु वि असिउ असन्तएँण । महि सयल दड्ढ डज्झन्तएँण ॥७॥

घत्ता

सायरु पीउ पियन्तएँण असुएँहिँ रुअन्तें भरियउ ।
हड्ड-कलेवर-सचएँण गिरि मेरु सो वि अन्तरियउ ॥८॥

[१०]

अहवइ कि वहु-चविएण राम । भवे भमिउ भयङ्करेँ तुहु मि ताम ॥१॥
णडु जिह तिह वहु-रूवन्तरेँहिँ । जर- जम्मण- मरण- परम्परेँहिँ ॥२॥
सा सीय वि जोणि-सएहिँ आय । तुहुँ कहि मि वप्पु सा कहि मि माय ॥३॥
तुहुँ कहि मि भाउ सा कहि मि वहिणि। तहुँ कहि मि दइउ सा कहि मि घरिणि।४
तुहुँ कहि मि णरएँ सा कहि मि सग्गेँ । तुहुँ कहि मि महिहिँ सा गयण-मग्गेँ ॥५।
तुहुँ कहि मि णारि सा कहि मि जोहु । किं सविणा-रिद्धिहेँ करहि मोहु ॥५॥
उम्मेट्ठु विओअ-गइन्दएसु । जगडन्तु भमइ जगु णिरवसेसु ॥७॥
जइ ण धरिउ जिण-वयणङ्कुसेण । तो खज्जइ माणुसु माणुसेण ॥८॥

घत्ता

एम भणेप्पिणु वे वि मुणि गय कहि मि णहङ्गण-पन्थेँ ।
रामु परिट्ठिउ किंविणु जिह धणु एक्कु लएवि स-हत्थेँ ॥९॥

[११]

विरहाणल- जाल- पलित्त- तणु । चिन्तेवएँ लग्गु विसण्ण-मणु ॥१॥
सच्चउ ससारेँ ण अत्थि सुहु । सच्चउ गिरि-मेरु-समाणु दुहु ॥२॥

डाढ़ मारकर कौन नहीं रोया, कहो कौन नहीं सताया गया, किसे कहाँ आपत्ति नहीं भोगनी पड़ी। कौन जला नहीं और कौन मरा नहीं। कौन भटका नहीं, कौन गया नहीं, कहाँ किसे भोजन नहीं मिला और किसे कहाँ सुरति नही मिली। संसारमे जीवके लिए वाह्य कुछ भी नहीं है। खाते हुए उसने तीनो लोक खा डाले और जल-जल कर सारी धरती फूँक डाली। पी-पीकर समस्त सागर पी डाला, और रो-रोकर उसे भर भी दिया। हड्डियो और शरीरोके सञ्चयसे उसने सुमेरुपर्वतको भी ढक दिया ॥१-८॥

[१०] अथवा हे राम ! वहुत कहने से क्या, तुम भी भव-सागरमे अवतक भटकते रहे हो। नटकी तरह मानो रूप ग्रहणकर जन्म, जरा और मरणकी परम्परामे भटकते रहे हो। वह सीता भी सैकड़ों योनियोमे जन्म पा चुकी है। कभी तुम वाप वने और वह माँ वनी। कभी तुम भाई वने और वह वहन वनी। कभी तुम पति वने तो वह पत्नी वनी। कभी तुम नरकमे थे वह स्वर्गमे थी। कभी तुम धरतीपर थे तो वह आकाशमार्गमे। कभी तुम स्त्री थे तो वह पुरुष थी। अरे स्वप्नमे प्राप्त इस वैभवमे मुग्ध क्यो होते हो ? महाव्रतसे रहित यह वियोगरूपी उन्मत्त महा-गज सारे संसारमे उत्पात मचा रहा है। यदि जिन-वचन रूपी अङ्कुशसे इसे वशमे न किया जाय तो वह सारे विश्वको खा जाय।" यह कहकर वे दोनो आकाश-मार्गसे कहीं चले गये। केवल राम ही कृपणकी भाँति एक, धन ही (धन्या और रुपया-पैसा) अपने हाथमे लेकर वैठे रह गये ॥१-९॥

[११] रामका शरीर वियोग-ज्वालामे जल रहा था। खिन्न-मन होकर वह सोचने लगे, "सचमुच संसारमे सुख नहीं है, सचमुच संसारमें दुःख सुमेरु पर्वतके वरावर है। सचमुचमे जन्म,

सच्चउ जर-जम्मण-मरण-भउ । सच्चउ जीविउ जल-विन्दु-सउ ॥३॥
कहिँ घरु कहिँ परियणु वन्धु-जणु । कहिँ माय-वप्पु कहिँ सुहि-सयणु ॥४॥
कहो पुत्तु मित्तु कहिँ किर घरिणि । कहिँ भाय सहोयर कहिँ वहिणि ॥५॥
फलु जाव ताव वन्धव सयण । आवासिय पायवेँ जिह सउण' ॥६॥
वलु एम भणेप्पिणु णीसरिउ । रोवन्तु पडीवउ वीसरिउ ॥७॥

घत्ता

णिद्धणु लक्खण-वज्जियउ अण्णु वि वहु-वसणेँहिँ भुत्तउ ।
राहउ भमइ भुअङ्गु जिह वणेँ 'हा हा सीय' भणन्तउ ॥८॥

[१२]

हिण्डन्ते भग्ग - मडप्फरेँण । वण-देवय पुच्छिय हलहरेँण ॥१॥
'खणेँ खणेँ वेयारहि काइँ महँ । कहेँ कहि मि दिट्ठ जइ कन्त पइँ' ॥२॥
वलु एम भणेप्पिणु सचलिउ । तावग्गएँ वण-गइन्दु मिलिउ ॥३॥
'हे कुञ्जर कामिणि-गइ-गमण । कहेँ कहि मि दिट्ठ जइ मिगणयण' ॥४॥
णिय - पडिरवेण वेयारियउ । जाणइ सीयएँ हक्कारियउ ॥५॥
कत्थइ दिट्ठइँ इन्दीवरइँ । जाणइ धण-णयणइँ दीहरइँ ॥६॥
कत्थइ असोय-तरु हल्लियउ । जाणइ धण - वाहा-डोल्लियउ ॥७॥
वणु सयलु गवेसेँवि सयल महि । पल्लट्टु पडीवउ दासरहि ॥८॥

घत्ता

त जि पराइउ णिय-भवणु जहिँ अच्छिउ आसि लयत्थले ।
चाव-सिलिम्मुह-मुक्क-करु वलु पडिउ स इ भु व-मण्डलेँ ॥९॥

●

जरा और मरणका भय है। और जीवन जल-बुदबुदकी तरह क्षणभंगुर है। किसका घर? किसके परिजन और बन्धुजन; किसके माता-पिता और किसके सुधीस्वजन। किसके पुत्र, किसके मित्र, किसकी स्त्री, किसका भाई, किसकी बहन, जब तक कर्म-फल है तभी तक बन्धु और स्वजन वैसे ही हैं जैसे पक्षी पेड़पर आकर बसेरा कर लेते है। यह विचारकर राम उठे किन्तु रोते हुए वह अपनी सुध-बुध फिर भूल गये। राम, विटकी तरह कामातुर होकर 'हा सीता' कहते हुए घूमने लगे। वह निधन (धन्या और धनसे रहित) लक्खणवर्जित (लक्ष्मण और गुणोंसे शून्य) और बहुव्यसनो (दुःख और बुरी आदत) से युक्त थे ॥१-६॥

[१२] तब भग्नप्राय और स्वाभिमानी रामने वनदेवीसे पूछा—"मुझे क्षण-क्षणमे क्यों दुखी कर रही हो। बताओ यदि तुमने मेरी कान्ता देखी हो।" यह कहकर वह आगे बढ़े ही थे कि उन्हें एक मत्त गज मिला। उन्होंने कहा "अरे मेरी कामिनीकी तरह सुन्दर गतिवाले गज, क्या तुमने मेरी मृगनयनीको देखा है?" अपनी ही प्रतिध्वनिसे प्रताड़ित होकर वह यही समझते थे कि मानो सीता देवीने ही उन्हें पुकारा है। कहीं वह नील कमलोंको अपनी पत्नीके विशाल नयन समझ बैठते, कहीं हिलते हुए अशोक वृक्षको वे यह समझ लेते कि सीतादेवीकी बॉह हिल डुल रही है। इस प्रकार समस्त धरती और वनकी खोज करके राम वापस आ गये, और वह अपने सुन्दर लतागृहमे पहुँचे। अपना धनुष बाण (उतारकर) एक ओर रखकर वह धरती पर गिर पड़े ॥१-६॥

[४०. चालीसमो संधि]

दसरह-तव-कारणु सव्वुद्धारणु वज्जयण्ण - सम्मय-भरिउ ।
जिणवर-गुण-कित्तणु सीय-सइत्तणु त णिसुणहु राहव-चरिउ ॥

[१]

ध्रुवकं

त सन्त गयागस धीस सताव-पाव-सतास (?) ।
चारु-रुचा - रएण वदे देव ससार-घोर-सोस ॥१॥

असाहण । कसाय-सोय-साहण ॥२॥
अवाहण । पमाय-माय-वाहण ॥३॥
अवन्दण । तिलोय-लोय-वन्दण ॥४॥
अपुज्जण । सुरिन्दराय-पुज्जण ॥५॥
असासण । तिलोय-छेय-सासण ॥६॥
अवारण । अपेय-भेय - वारण ॥७॥
अणिन्दिय । जय-प्पहु अणिन्दिय॥८॥
महन्तय । पचण्ड-वम्महन्तय ॥९॥
रवण्णय । घणालि-वार-वण्णय ॥१०॥

घत्ता

मुणि सुव्वय-सामिउ सुह-गइ-गामिउ त पणवेप्पिणु दिढ-मणेंण ।
पुणु कहमि महव्वलु खर-दूसण-वलु जिह आयामिउ लक्खणेंण ॥११॥

[२]

दुवई

हिय एत्तहेँ वि सीय एत्तहेँ वि विओउ महन्तु राहवे ।
हरि एत्तहेँ वि भिडिउ एत्तहेँ वि विराहिउ मिलिउ आहवे। ।१॥

ताव तेत्थु भीसावणे वणे । एक्कमेक्क-हक्कारणे रणे ॥२॥
कुरुड-दिट्ठि-वयणुब्भडे भडे । विरइए महा-वित्थडे थडे ॥३॥
वावरन्त - भय-भासुरे सुरे । जज्जरङ्ग - पहराउरे उरे ॥४॥
असि-सव्वाहु-पडियप्फरे फरे । जम्पमाण-कडुअक्खरे खरे ॥५॥

चालीसवीं सन्धि

(फिर कवि निवेदन करता है कि) अब उस राघवचरितको सुनिये जो दशरथके तपका कारण, सबका उद्धारक, वज्रवर्णके सम्यक्त्वसे परिपूर्ण, जिन-वरके कीर्तनसे शोभित और सीताके सतीत्वसे भरपूर है।

[१] मैं कवि (स्वयम्भू) शान्त और अठारह प्रकारके दोपोंसे रहित बुद्धिके अधीश्वर मुनिसुव्रत जिनको प्रणाम करता हूँ। वेद, कपाय और पापोंके नाशकर्ता, सुन्दर कान्तिसे परिपूर्ण सवारी आदिसे रहित, माया और प्रमादके वंचक, दुष्टोंसे अपूज्य और सुरेन्द्रोंसे पूज्य है। वह उपाध्यायसे रहित होकर भी त्रिलोकके विदग्धोंके शिक्षक हैं। वह वारण रहित होकर भी मद्य मधु आदिके निपेधकर्ता हैं। निन्द्रा रहित और जितेन्द्रिय, महान् प्रचण्ड कामके संहारक और सुन्दर निधियोंके अधिपति हैं। मै ऐसे उन शुभगतिगामी मुनिसुव्रत स्वामीको प्रणाम करता हूँ। अब मै दृढ़सकल्प होकर इस बातको बता रहा हूँ कि लक्ष्मणने किस प्रकार खरदूपणको मारा और उसकी सेना परास्त की ॥१-११॥

[२] यहीं (इस प्रसंगमे) सीतादेवीका हरण हुआ, यहीं रामको वियोग दुख सहन करना पड़ा, यहीं जटायुका घोर युद्ध हुआ, यहीं विराधित्त विद्याधरसे भेट हुई। इस समय उस भीपण वनमे भयंकर युद्ध हो रहा था। सुभट एक दूसरेको ललकार रहे थे। वे अत्यन्त क्रूर और विकट दृष्टिसे उद्भट थे। बहुत वड़े-वड़े दल वने हुए थे, आक्रमणशील, भयसे भयंकर रौद्र जर्जर अंग, और घावोंसे भरे हुए थे। तलवार सहित हाथ इधर-उधर कटकर

दलिय-कुम्भ-वियलङ्गए गए । सिरु धुणाविए आहए हए ॥६॥
रुहिर-विन्दु-चञ्चिक्किए किए । सायरे व्व सुर-मन्थिए थिए ॥७॥
छत्त-दण्ड - सय-खण्ड - खण्डिए । हड्ड - रुण्ड - विच्छड्ड-मण्डिए ॥८॥
तहिँ महाहवे घोर-दारुणे । दिट्ठु वीरु पहरन्तु साहणे ॥९॥

घत्ता

तिलु तिलु कप्परियइँ उरेँ जज्जरियइँ रत्तच्छइँ फुरियाणणइँ ।
दिट्ठइँ गम्भीरइँ सुहड-सरीरइँ सर-सलिलयहँ सवाहणइँ ॥१०॥

[२]

दुवई

को वि सुभडु स- तुरङ्गमु को वि सजाणु सलिलओ ।
को वि पडन्तु दिट्ठु आयासहोँ लक्खण सर-विरल्लिओ ॥१॥
भडो को वि दिट्ठो परिच्छिन्न-गत्तो । स-दन्ती स-मन्ती स-चिन्धो स-छत्तो॥२॥
भडो को वि वावल्ल-भल्लेहिँ भिण्णो । भडो को वि कप्पद्दुमो जेम छिण्णो ॥३॥
भडो को वि तिक्खग्ग-णाराय-विद्धो। महा-सत्थवन्तो व्व सत्थेहिँ विद्धो ॥४॥
भडो को वि कुद्धाणणो विप्फुरन्तो । मरन्तो वि हक्कार-डक्कार देन्तो ॥५॥
भडो को वि भिण्णो स-देहो समत्थो । पमुच्छाविओ को वि कोवण्ड-हत्थो ॥६॥
मुओ को वि कोवुब्भडो जीवमाणो । चलच्चामर-च्छोह - विज्जिज्जमाणो ॥७॥
वसा-कद्दमे मद्दवे को वि खुत्तो । खलन्तो वलन्तो णियन्तेहिँ गुत्तो ॥८॥
भडो को वि भिण्णो खुरुप्पेहिँ एन्तो । णियन्तो कुसिद्धो व्व सिद्धिं ण पत्तो ॥९॥

पड़े थे। वे तीव्र और कठोर शब्द बोल रहे थे, हाथियोंके शरीर विकलांग थे। उनके कुम्भस्थल टूट फूट चुके थे। सिर फूटनेसे अश्व भी आहत हो उठे थे। रक्तरंजित वह युद्ध, समुद्रमें हुए देव मन्थनकी तरह जान पड़ता था। छत्रों और ध्वज-दण्डोंके सौ-सौ टुकड़े हो चुके थे। हड्डियों और धड़ोंसे मण्डित उस भयंकर युद्धमें लक्ष्मण सेनापर प्रहार करता हुआ दिखाई दे रहा था। योधाओंके शरीर सवारियों और वाणकी अनीकोंसे सहित थे। उनकी वोटी-वोटी कट चुकी थी। वक्षस्थल जर्जर थे। रक्तरंजित ध्वजाएँ कांप रही थीं ॥१–१०॥

[२] स्वयं कुमार लक्ष्मणके तीरोंसे आहत होकर, कोई योधा अश्व सहित और कोई यान सहित खण्डित हो गया था। कोई आकाशसे गिरता हुआ दिखाई दे रहा था। कोई योधा गजयंत्र (अंकुश) और चिह्नके साथ छिन्न शरीर दीख पड़ा। कोई योधा वावल्ल और भालोंसे विधकर पड़ा हुआ था। कोई कल्पद्रुमकी तरह छिन्न-भिन्न हो गया था। कोई योधा तीखे तीरोंसे विद्ध हो उठा। वड़े-वड़े अस्त्रोंसे सम्पन्न होने पर भी कोई योधा वन्दी वना लिया गया। क्रुद्ध होकर कोई सुभट कॉपता और मरता हुआ भी गरज रहा था। कोई समर्थ योधा सशरीर ही छिन्न-भिन्न हो गया। कोई योधा हाथमें धनुष-तीर लिये हुए ही मूर्छित होकर गिर पड़ा। क्रोधसे उद्भट कोई योधा, चञ्चल चमरोंकी शोभासे ऐसा चमक रहा था कि मृत भी जीवित लग रहा था। कोई योधा मांस-मज्जाकी वनी कीचड़में धॅस गया। कोई गिरता पड़ता, अपनी ही ऑतोंमें छिप सा गया। आता हुआ कोई भट खुरपोंसे छिन्न-भिन्न हो गया। कुसिद्धकी तरह नियंत्रित होने पर भी, वह सिद्धि प्राप्त नहीं कर पा रहा था। लक्ष्मणके तीरोंसे आहत,

घत्ता

लक्खण-सर-भरियउ अद्धुव्वरियउ खर-दूसण-वलु दिट्ठु किह ।
साहारु ण वन्धइ गमणु ण सन्धइ णवलउ कामिणि-पेम्मु जिह ॥१०॥

[४]

दुवई

परधण-परकलत्त-परिसेसहुँ परवल-सण्णिवायहुं ।
एक्कें लक्खणेण विणिवाइय सत्त सहास रायहु ॥१॥

जीवन्तएँ अद्धएँ वइरि-सेण्णें । अद्धएँ दलवट्टिएँ महि-णिसण्णें ॥२॥
तहिँ अवसरेँ पवर-जसाहिएण । जोक्कारिउ विण्हु विराहिएण ॥३॥
'पाइक्कहोँ वट्टइ एहु कालु । हउँ भिच्चु देव तुहुँ सामिसालु ॥४॥
कहिओ सि आसि जो चारणेहिँ । सो लक्खिओ सि सइँ लोयणेहिँ ॥५॥
त सहल मणोरह अज्जु जाय । ज दिट्ठ तुहारा वे वि पाय ॥६॥
णिय-जणणिहेँ हउँ गब्भत्थु जइउ । विणिवाइउ पिउ महु तणउ तइउ ॥७॥
सहुँ ताए महु पाइक्क-पवरु । उद्दालिउ तमलङ्कार-णयरु ॥८॥
तें समर - महब्भय - भीसणेहिँ । सहुँ पुव्व-वइरु खर-दूसणेहिँ' ॥९॥

घत्ता

जय-लच्छि-पसाहिउ भणइ विराहिउ 'पहु पसाउ महु पेसणहोँ ।
तुहुँ खरु आयामहि रणउहेँ णामहि हउँ अब्भिट्टमि दूसणहोँ' ॥१०॥

[५]

दुवई

त णिसुणेवि वयणु विज्जाहरु सम्भासिउ कुमारेँण ।
'वइसरु ताव जाव रिउ पाडमि एक्कें सर पहारेँण ॥१॥

एउ सेण्णु खर-दूसण-केरउ । वाणेहिँ करमि अज्जु विवरेरउ ॥२॥
स-धउ स-वाहणु स-पहु स-हत्थें । लायमि सम्बु-कुमारहोँ पन्थें ॥३॥
तुज्झु वि जम्म-भूमि दरिसावमि । तमलङ्कार-णयरु भुञ्जावमि' ॥४॥

खर-दूषणकी अधउबरी सेना कामिनीके नवल प्रेमकी तरह जान पड़ती थी। क्योंकि न तो वह (नवल प्रेम और सेना) जा ही पाता था और न ढाढस ही बाँध पाता था ॥१-१०॥

[४] इस प्रकार दूसरेके धन और स्त्रीका अपहरण करनेवाले, शत्रु सेनाओंमें तोड़-फोड़ करनेवाले सात हजार योधा राजाओंको अकेले लक्ष्मणने ही मारकर गिरा दिया। इस प्रकार आधी सेनाके धराशायी हो जानेपर जब आधी सेना ही शेष बची तो परम यशस्वी विराधितने कुमार लक्ष्मणका अभिनंदन करते हुए कहा—"हे देव, आज अवश्य ही आप मेरी रक्षा करें, आप मेरे स्वामी हैं और मैं आपका अनुचर। चारण मुनियोंने जो कुछ भविष्यवाणी की थी उसे मैं आज अपनी आँखोंसे सच होता हुआ देख रहा हूँ। आज मैंने आपके चरणयुगलके दर्शन कर लिये। जब मैं अपनी माताके गर्भमें था तभी इसने (खर-दूषणने) मेरे पिताका वध कर दिया था। और साथ ही उत्तम प्रजासे सहित मेरा तमलंकार नगर भी छीन लिया। इस प्रकार इस महासमरमें खर-दूषणसे बहुत पुरानी शत्रुता है।" विजय-लक्ष्मीके इच्छुक विराधितने और भी कहा, "मुझ सेवकपर प्रसाद करें। आप युद्ध मुखमें जाकर खरसे लड़कर उसे नत करें और तबतक मैं दूषणसे निपटता हूँ" ॥१-२०॥

[५] विद्याधर विराधितके वचन सुनकर कुमार लक्ष्मणने उसे अभयदान दिया। उसने कहा—"जबतक मैं एक ही तीरसे शत्रुको मार गिराता हूँ तबतक तुम यहीं बैठो। खरदूषणकी सेना को मैं आज ही अपने तीरोंसे तितर-बितर करता हूँ। और पताका, वाहन, राजा, गजोंके साथ सभीको शम्बूक कुमारके पथपर प्रेषित किये देता हूँ। तुम्हें मैं अपनी जन्मभूमिके दर्शन करा दूँगा। मैं

हरि-वयणेँहिँ हरिसिउ विज्जाहरु । चलणेँहिँ पडिउ सीसेँ लाएँवि करु ॥५॥
ताव खरेण समरेँ णिव्वूढें । पुच्छिउ मन्ति विमाणारूढें ॥६॥
'दीसइ कवणु एहु वीसत्थउ । णरु पणमन्तु कियञ्जलि-हत्थउ ॥७॥
वाहुवलेण वलेण विवलियउ । ण खय-कालु कियन्तहोँ मिलियउ' ॥८॥
पभणइ मन्ति विमाणेँ पइट्ठउ । 'किं पइँ वइरि कयावि ण दिट्ठउ ॥९॥

घत्ता

णामेण विराहिउ पवर-जसाहिउ वियड-वच्छु थिर-थोर-भुउ ।
अणुराहा-णन्दणु स-वलु स-सन्दणु एँहु सो चन्दोअरहोँ सुउ' ॥१०॥

[६]

दुवई

मन्ति-णिवाण विहि मि अवरोप्परु ए आलाव जावँहिँ ।
विण्हु-विराहिएहिँ आयामिउ पर-वलु सयलु तावँहिँ ॥१॥
तो खरोऽरिमद्दणेण । कोक्किओ जणद्दणेण ॥२॥
एत्तहे स-सन्दणेण । सोऽणुराह - णन्दणेण ॥३॥
आहवे समत्थएण । चाव - वाण-हत्थएण ॥४॥
गुञ्ज-वण्ण - लोयणेण । भीसणावलोयणेण ॥५॥
कुम्भि-कुम्भ-दारणेण । पुव्व-वइर - कारणेण ॥६॥
दूसणो जसाहिवेण । कोक्किओ विराहिएण ॥७॥
एहु वे(?)हओ हयस्स । चोइओ गओ गयस्स ॥८॥
वाहिओ रहो रहस्स । धाइओ णरो णरस्स ॥९॥

घत्ता

स-गुड-स-सण्णाहइँ कवय-सणाहइँ सप्पहरणइँ स-वाहणइँ ।
णिय-वइरु सरेप्पिणु हक्कारेप्पिणु भिडियइँ वेण्णि मि साहणइँ ॥१०॥

[७]

दुवई

सेण्णहोँ भिडिउ सेण्णु दूसणहोँ विराहिउ खरहोँ लक्खणो ।
हय पडु पडह तूर किउ कलयलु गल-गम्भीर-भीसणो ॥१॥

भी तमलंकारनगरका उपभोग करूँगा।" इस प्रकार लक्ष्मणके आश्वासन देनेपर विद्याधर विराधित प्रसन्न हो उठा। वह सिर झुकाकर चरणोंमें नत हो गया। इसी बीच, युद्धसे निपटनेपर खरने अपने मंत्रीसे पूछा कि "यह कौन है कि इस प्रकार एक दम निराकुल होकर और हाथसे अंजलि लेकर (लक्ष्मणको) प्रणाम कर रहा है। वह बाहुबलि (विराधित) लक्ष्मणसे उसी प्रकार जा मिला है जिस प्रकार क्षयकाल जाकर कृतान्तसे मिल जाता है।" इसपर, विमानमे बैठे-बैठे ही मंत्रीने कहा कि "क्या आपने अपने शत्रु विराधितको नही देखा। प्रबल यशस्वी विशालबाहु वह, अनुराधाका पुत्र विराधित है। रथ और अपनी सेना लेकर वह, चंद्रोदरका पुत्र है" ॥१-१०॥

[६] राजा खर और मंत्रीमे जब इस प्रकार बात-चीत हो रही थी तभी लक्ष्मण और विराधितने मिलकर शत्रुसेनाको घेर लिया। अरिदमन लक्ष्मणने खरको ललकारा और विद्याधर विराधितने रथ बढ़ाकर दूषणको। सचमुच युद्धसे समर्थ, हाथमे धनुष-वाण लिये हुए, आरक्तनयन, गज कुभंस्थलोंको विदीर्ण करनेवाला वह (विराधित) देखनेसे अत्यन्त भयंकर हो रहा था। अपने पूर्व वैरका स्मरणकर उसने दूपणको (ललकारकर) चुनौती दी। बस, अश्वपर अश्व और गजपर गज प्रेरित कर दिये गये। रथपर रथ हॉके जाने लगे। और योधापर योधा दौड़ पड़े। इस प्रकार दोनो ही सेनाएँ एक दूसरेके निकट जाकर आपसमें लड़ने लगीं। वे दोनो ही सेनाएँ सगुड ? संनद्ध कवच आयुध और वाहनोसे परिपूर्ण थीं ॥१-१०॥

[७] उस तुमुल युद्धमे सेनासे सेना भिड़ गई। विराधित दूपणसे, लक्ष्मण खरसे भिड़ गये। पट-पटह वज उठे, तूर्योंका

तहिँ रण-सगमेँ । वुण्ण - तुरङ्गमेँ ॥२॥
रह-गय-गोन्दलेँ । वज्जिय - मन्दलेँ ॥३॥
भड - कडमद्दणेँ । मोडिय-सन्दणेँ ॥४॥
णरवर-दण्डिएँ । किय-किलिविण्डिएँ ॥
वाला - लुञ्चिएँ । रह-सय-खञ्चिएँ ॥६॥
तहिँ अपरायण । खर - णारायण ॥७॥
भिडिय महव्वल । वियड - उरत्थल ॥८॥
वे वि समच्छर । वे वि भयङ्कर ॥९॥
वे वि अकायर । वे वि जसायर ॥१०॥
वे वि महब्भड । वे वि अणुब्भड ॥११॥
वे वि धणुद्धर । वेण्णि वि दुद्धर ॥१२॥

घत्ता

वेण्णि वि जय-लुद्धा अमरिस-कुद्धा तिहुयण-मल्ल समावडिय ।
अमरिन्द-दसणण विप्फुरियाणण णाइँ परोप्परु अब्भिडिय ॥१३॥

[८]

दुवई

ताम जणद्दणेण अद्धेन्दु विसज्जिउ रणेँ भयङ्करो ।
ण खय-कालेँ कालु उद्धाइउ तिहुअण-जण-खयङ्करो ॥१॥
सचल्लु वाणु । णहयल - समाणु ॥२॥
रिउ-रहहोँ ढुक्कु । सरु कह वि चुक्कु ॥३॥
सारहि वि भिण्णु । धय-दण्डु छिण्णु ॥४॥
धणुहरु वि भग्गु । कय वि ण लग्गु ॥५॥
पाडिउ विमाणु । विज्जएँ समाणु ॥६॥
खरु विरहु जाउ । थिउ असि-सहाउ ॥७॥
धाइउ तुरन्तु । मुह - विप्फुरन्तु ॥८॥
एत्तहेँ वि तेण । णारायणेण ॥९॥
त सूरहासु । किउ करेँ पगासु ॥१०॥
अब्भिट्ट वे वि । असिवरइँ लेवि ॥११॥

भीषण और गम्भीर कलकल होने लगा। अश्वोंके मुख ऊपर थे। रथ और गजोंकी भीड़ मची थी। ढोल बज रहे थे। योधाओंका संहार होने लगा। रथ मुड़ने लगे। नरवर ध्वस्त हो रहे थे। केश घसीटे जा रहे थे। सैकड़ो रथ वहीं खच गये थे। इस प्रकार उस युद्धमें अपराजित कुमार लक्ष्मण और खरमे मुटभेंड़ हो रही थी। दोनोंके उर विशाल थे, दोनो मत्सरसे भरे हुए भयङ्कर हो रहे थे। दोनो ही वीर यशकी आकांक्षा रखते थे! दोनो ही उद्धत और धनुर्धारी थे। दोनो ही यशके लोभी, अमर्शसे क्रुद्ध और त्रिभुवन-मल्ल थे। वे ऐसे भिड़े मानो दशानन और इन्द्र ही भिड़े हो ॥१-१२॥

[८] तब लक्ष्मणने भयङ्कर अर्धचन्द्र तीर छोड़ा वह तीर मानो तीनो लोकोको क्षय करनेवाला क्षयकाल ही था। आकाशतलमे सरीता हुआ वह तीर खरके रथके निकट पहुँचा। खर तो किसी प्रकार बच गया, परन्तु उसका सारथि और ध्वज-दण्ड छिन्न-भिन्न हो गये। उसका धनुष भी टुकड़े-टुकड़े हो गया। किसी तरह वह तीर उसे नही लगा। विद्या सहित उसका रथ खण्डित हो गया। अब खर विरथ हो गया, केवल उसके हाथमे तलवार थी। तब तमतमाकर दौड़ा। यह देखकर नारायण लक्ष्मणने भी सूर्यहास खड्ग अपने हाथमें ले लिया। अब उत्तम खड्गोंसे इनमे द्वन्द्व होने

घत्ता

णाणाविह-थाणँहिँ णिय-विण्णाणेँहिँ वावरन्ति असि-गहिय-कर ।
कसणङ्गय दीसिय विज्जु-विहूसिय ण णव-पाउसेँ अम्बुहर ॥१२॥

[९]

दुवई

हत्थि व उद्ध-सोण्ड सीह व लङ्गूल-वलग्ग-कन्धरा ।
णिट्ठुर महिहर व्व अइ-खार समुद्द व अहि व दुद्धरा ॥१॥
अब्भिट्ट वे वि सोण्डीर वीर । सगाम - धीर ॥२॥
एत्थन्तरेँ अमर-वरङ्गणाहँ । हरिसिय-मणाहँ ॥३॥
अवरोप्परु वोल्लालाव हूय । 'कहोँ गुण पहूय' ॥४॥
त णिसुणेँवि कुवलय-णयणियाएँ । ससि- वयणियाएँ ॥५॥
णिब्भच्छिय अच्छर अच्छराएँ । वहु-मच्छराएँ ॥६॥
'खरु मुएँ वि अण्णु कि को वि सूरु । पर-सिमि-रचूरु ॥७॥
अण्णोक्क पजम्पिय तक्खणेण । 'सहुँ लक्खणेण ॥८॥
खरु गद्दहु किह किज्जइ समाणु । जो अघडमाणु ॥९॥
एत्थन्तरेँ णिसियर-कुल-पईवेँ । खरु पहउ गीवेँ ॥१०॥

घत्ता

कोवाणल-णालउ कंटि-कण्टालउ दसण-सकेसरु अहर-दलु ।
महुमहण-सरग्गेँ असि-णहरग्गेँ खुण्टेँवि घत्तिउ सिर-कमलु ॥११

[१०]

दुवई

एत्तहेँ लक्खणेण विणिवाइउ णिसियर-सेण्ण-सारओ ।
एत्तइँ दूसणेण किउ विरहु विराहिउ विण्णि वारओ ॥१॥
छुडु छुडु समरेँ परज्जिउ साहणु । रह- गय- वाहणु ॥२॥
छुडु छुडु जीव-गाहि आयामिउ । पर-वल-सामिउ ॥३॥
छुडु छुडु चिहुरहँ हत्थु पसारिउ । कह वि ण मारिउ ॥४॥
ताव खरहोँ सिरु खुडेँवि महाइउ । लक्खणु धाइउ ॥५॥

लगा। हाथमें खड्ग लिये हुए वे नाना स्थानोंसे अपनी पैतरेबाजी दिखाने लगे। श्याम (गौर) वर्ण वे दोनों ऐसे जान पड़ते थे मानो नव वर्षागम कालमें बिजलीसे शोभित मेघ हों ॥१-१२॥

[६] वे दोनों ऐसे लगते थे मानो सूँड उठाये हुए हाथी हो या पीठपर पूँछ लहराये हुए सिंह। पर्वतकी तरह निष्ठुर, समुद्रकी तरह खारे, और सर्पराजकी तरह दुर्धर हो रहे थे। युद्धधीर वे दोनों वीर आपसमें भिड़ गये। इसी बीच आकाशमें देवबालाएँ प्रसन्न होकर आपसमें बात-चीत करने लगी। एक बोली—"बताओ, किसमें अधिक गुण है?" यह सुनकर, चन्द्रमुखी और कमलनयनी दूसरी अप्सराने मत्सरसे भरकर उसे झिड़कते हुए कहा—'अरे युद्धमें शत्रु-शिविरको खरको छोड़कर दूसरा कौन चकनाचूर कर सकता है।" इस अवसरपर कई अप्सराओंने कहा—"अरे लक्ष्मणके साथ इस खर (गधे) की तुलना क्यों करती हो। उसकी तुलनामें खर तो एक दम निकम्मा है।" इतनेमें खर कण्ठमें आहत हो उठा। लक्ष्मणके तीरोंकी नोक और सूर्यहास खड्गके नखाग्रसे खरका सिरकमल तोड़कर लक्ष्मणने फेंक दिया। कोपाग्नि? उसकी मृणाल थी। युद्धसे कटकटाते उसके दाँत पराग थे। और अधर पत्ते ॥१-११॥

[१०] जिस समय कुमार लक्ष्मणने निशाचर-सेनाके सार श्रेष्ठ खरको मार गिराया उसी समय विराधितको दूषणने रथ-विहीन कर दिया। उसकी सेना रथ, गज और वाहनोंके साथ शीघ्र ही पराजित होने लगी। इस प्रकार शत्रु-सेनाका स्वामी जीते जी पकड़ लिया गया। हाथ फैलाकर उसने विराधितके बाल पकड़ लिये, किसी प्रकार उसे मारा भर नहीं। इसी बीच खरका सिरकमल काटकर लक्ष्मण उस ओर दौड़े जहाँ विराधित था।

णिय-साहणेँ मम्भीस करन्तउ । रिउ कोक्कन्तउ ॥६॥
दूसण पहरु पहरु जइ सक्कहि । अहिमुहु थक्कहि ॥७॥
तं णिसुणेवि वयणु आरुट्टउ । चित्तेँ दुट्टउ ॥८॥
वलिउ णिसिन्दु गइन्दु व सीहहोँ । रण- सय- लीहहोँ ॥९॥

घत्ता

दससन्दण-जाएं वर-णाराए वियड-उरत्थलेँ विद्धु अरि ।
रेवा-जल-वाहेँ मयर-सणाहेँ णाइँ वियारिउ विञ्झइरि ॥१०॥

[११]

दुवई

उद्धुअ - पुच्छ - दण्ड - वेयण्ड - रसन्तय—मत्त-वाहणं ।
पाडिएँ अतुल-मल्लेँ खरेँ दूसणेँ पडियमसेस-साहणं ॥१॥

सत्त सहास भिडन्तेँ मारिय । दूसणेण सहुँ सत्त वियारिय ॥२॥
चउदह सहस णरिन्दहुँ घाइय । ण कप्पदुम व्व विणिवाइय ॥३॥
मण्डिय मेइणि णरवर-छत्तेँहिँ । णावइ सरय-लच्छि सयवत्तेँहिँ ॥४॥
कत्थइ रत्तारत्त पदीसिय । णाइँ विलासिणि घुसिण-विहूसिय ॥५॥
तो एत्थन्तरेँ रह-गय-वाहणेँ । कलयलु घुट्ठु विराहिय-साहणेँ ॥६॥
दिण्णाणन्द-भेरि अणुराएँ । रणु परिअञ्चिउ दसरह-जाएँ ॥७॥
'चन्दोभर-सुअ महु करेँ वुत्तउ । ताम महाहवेँ अच्छु मुहुत्तउ ॥८॥
जाव गवेसमि भाइ महारउ । सहुँ वइदेहिएँ पाण-पियारउ' ॥९॥

घत्ता

खर-दूसण मारेँ वि जिणु जयकारेँ वि लक्खणु रामहोँ पासु गउ ।
ण तिहुअणु घाएँवि जम-पहेँ लाएँ वि कालु कियन्तहोँ सम्मुहउ ॥१०॥

अपनी सेनाको अभयदान देकर और शत्रुको ललकारते हुए उन्होंने कहा—"दूषण, सम्मुख मै हूँ, यदि सम्भव हो तो मुझपर प्रहार करो।" यह दुष्ट वचन सुनते ही दूषण भड़क उठा। शत-शत युद्धोंमे प्रवीण दूषण लक्ष्मणके सम्मुख वैसे ही आया जैसे सिंहके सम्मुख गज आता है। लक्ष्मणने उसे भी तीरसे आहत कर दिया। मानो मगरसे सहित रेवा नदीके प्रवाहने विन्ध्याचलको ही विदीर्ण कर दिया हो ॥१-१०॥

[११] इस प्रकार अतुल बली खर और दूषणका पतन होने पर, उसकी सेनाको भी पराजित होना पड़ा। उसकी पताकाएँ उड़ रही थीं। और रणतूर्यसे उन्मत्त उसके वाहन थे। सात हजार सैनिक तो पहले ही मारे जा चुके थे, अब शेष सात हजार दूषणके युद्धमें काम आये। इस तरह कुल मिलाकर उसने चौदह हजार राजाओंको ऐसे साफ कर दिया मानो कल्पवृक्षको काट दिया हो। (उस समय) नरवरोंके छत्रोंसे पटी हुई धरती ऐसी मालूम होती थी मानो कमल-दलोंसे युक्त शरद्-लक्ष्मी हो। कहीं पर रक्त-रञ्जित धरती केशरसे अलंकृत विलासिनीकी तरह दीख पड़ती थी। इतनेमें रथ, गज, वाहनवाली विराधितकी सेनाने कलकल शब्द किया। लक्ष्मणने भी अनुरागसे आनन्दकी भेरी बजवाकर युद्धकी परिक्रमाकर विराधितसे कहा—"जब तक मैं सीता-सहित अपने भाईको खोजता हूँ तब तक तुम यहीं पर रहो।" इस प्रकार खर, दूषणका वधकर, और जिनवरकी जय बोलकर लक्ष्मण रामके निकट ऐसे गये मानो काल ही त्रिभुवनका घातकर और उसे यमके पदपर पहुँचाकर कृतान्तके पास गया हो ॥१-१०॥

[१२]

दुवई

हलहरु लक्खणेण लक्खिज्जइ सीया-सोय-णिब्भरो।
घत्तिय तोण-बाण महि-मण्डलें कर-परिचत्त-धणुहरो ॥१॥
विओय - सोय - तत्तओ। करि व्व भग्ग-दन्तओ ॥२॥
तरु व्व छिण्ण-डालओ। फणि व्व णिप्फणालओ ॥३॥
गिरि व्व वज्ज-सूडिओ। ससि व्व राहु-पीडिओ ॥४॥
अपाणिउ व्व मेहवो। वणे विसण्ण-देहओ ॥५॥
वलो सुमित्ति-पुत्तिण। पपुच्छिओ तुरन्तिण ॥६॥
'ण दीसए विहङ्गओ। स-सीयओ कहि गओ' ॥७॥
सुणेवि तस्स जम्पियं। तमक्खियं ण जं पियं ॥८॥
'वणे विणट्ठ जाणई। ण को वि वत्त जाणई ॥९॥

घत्ता

जो पक्खि रणेऽज्जउ दिण्णु सहेज्जउ सो वि समरें सघारियउ।
केणावि पचण्डें दिढ-भुअ-दण्डे णेवि तलप्पएं मारियउ' ॥१०॥

[१३]

दुवई

ए आलाव जाव वट्टन्ति परोप्परु राम-लक्खणे।
ताव विराहिओ वि वल-परिमिउ पत्तु तहि जि तक्खणे ॥१॥
तो ताव कियञ्जलि-हत्थएण। महिवीढोणामिय - मत्थएण ॥२॥
वलएउ णमिउ विज्जाहरेण। जिणु जम्मणें जेम पुरन्दरेण ॥३॥
आसीस देवि गुरु-मलहरेण। सोमित्ति पपुच्छिउ हलहरेण ॥४॥
'सहुँ सेण्णे पणमिउ कवणु एहु। ण तारा-परिमिउ हरिणदेहु' ॥५॥
त वयणु सुणेप्पिणु पुरिस-सीहु। थिर-थोर-महाभुअ - फलिह-दीहु ॥६॥
सब्भावें रामहों कहइ एम। 'चन्दोयर-णन्दणु एहु देव ॥७॥
खर-दूसणारि महु परम-मित्तु। गिरि मेरु जेम थिर-थोर-चित्तु' ॥८॥
तो एम पससेंवि तक्खणेण। 'हिय जाणइ' अक्खिउ लक्खणेण ॥९॥

घत्ता

कहिँ कुढें लग्गेसमि कहि मि गवेसमि दइवें परम्मुहें किं करमि।
वलु सीया-सोएं मरइ विओएं एण मरन्तें हउँ मरमि' ॥१०॥

[१२] लक्ष्मणने जाकर देखा कि राम सीताके वियोगमें दुःखसे परिपूर्ण हो रहे है। धनुष तीर और तूणीर, सभी कुछ हाथ से छूटकर धरतीपर पड़ा है। वियोगके शोकसे आकुल राम, ऐसे ही म्लान शरीर हो रहे थे जैसे भग्नदन्त गज, छिन्नशाखा वृक्ष, फणरहित सर्प, वज्र पीड़ित पर्वत, राहुग्रस्त चन्द्र, और जल-रहित मेघ मलिन होता है। तुरन्त ही लक्ष्मणने रामसे पूछा—"अरे जटायु दिखाई नहीं देता, सीताके साथ वह कहाँ गया।" यह सुनकर रामने जो कुछ कहा, लक्ष्मणको वह किसी भी प्रकार अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा—"सीता वनमे नष्ट हो गई, मैं अब और कोई बात नहीं जानता" तथा जो अजेय पक्षिराज जटायु था उसका भी रणमें संहार हो गया—किसी दृढ़ बाहु और प्रचंडवीरने उसे धरतीपर पटक दिया ॥१-६॥

[१३] इस तरह राम और लक्ष्मणमे बाते हो ही रही थीं, तभी अपनी गिनी-चुनी सेना लेकर विराधित वहाँ आया। हाथोंमे अंजलि लेकर और पीठ तक माथा झुकाकर विद्याधर विराधितने रामको वैसे ही प्रणाम किया जैसे इन्द्र जन्मके समय जिनेन्द्रको प्रणाम करता है। निर्मल रामने भी उसे आशीर्वाद देकर लक्ष्मण से पूछा कि "यह कौन है जो तारोंसे वेष्टित चंद्रकी तरह, सेना सहित मुझे नमस्कार कर रहा है।" यह सुनकर लक्ष्मणने सद्भाव-पूर्वक कहा, "देव, मंदराचलकी तरह विशाल और दृढ़ हृदय चंद्रोदरका पुत्र विराधित है, मेरा पक्का मित्र और खरदूपणका कट्टर शत्रु है।" इस प्रकार उसकी प्रशंसा करके लक्ष्मणने तत्काल कहा,—"सीता हर ली गई हैं, उन्हें अब कहाँ खोजूँ। दैवके विमुख होनेपर क्या करूँ। राम सीताके वियोगमे मर रहे हैं। इनके मरनेपर मैं भी मर जाऊँगा" ॥१-१०॥

[१४]

दुवई

तं णिसुणेवि वयणु चिन्ताविउ चन्दोयरहों णन्दणो ।
विमणु विसण्ण-देहु गह-पीडिउ ण सारङ्ग-लञ्छणो ॥१॥
'जं ज किं पि वत्थु आसङ्कमि । त त णिप्फलु कहिं अवठम्भमि ॥२॥
एय मुएवि कालु किह खेविउ । णिद्धणो वि वरि वड्डउ सेविउ ॥३॥
होउ म होउ तो वि ओलग्गमि । मुणि जिह जिण दिढु चलणहिँ लग्गमि॥४॥
विहि केत्तडउ कालु विणडेसइ । अवसें क दिवसु वि सिय होसइ' ॥५॥
एम भणेवि वुत्तु णारायणु । 'कुढें लग्गेवउ केत्तिउ कारणु ॥६॥
ताव गवेसहुँ जाम णिहालिय' । लहु सण्णाह-भेरि अप्फालिय ॥७॥
साहणु दस-दिसेहिँ सचल्लिउ । आउ पडीवउ जय-सिरि-मेल्लिउ ॥८॥
जोइस-चक्कु णाइँ परियत्तउ । ण सिद्धत्तणु सिद्धि ण पत्तउ ॥९॥

घत्ता

विज्जाहर-साहणु स-धउ स-वाहणु थिउ हेट्ठामुहु विमण-मणु ।
हिम-वाए दड्ढउ मयरन्दड्ढउ णं कोमाणउ कमल-वणु ॥१०॥

[१५]

दुवई

वुत्तु विराहिएण 'सुर-डामरें तिहुअण-जण-भयावणे ।
घणें णिवसहुँ ण होइ खर-दूसणें मुएँ जीवन्तें रावणे ॥१॥
सम्बुक्कु वहेँवि असि-रयणु लेवि । को जीवइ जम-मुहें पइसरेवि ॥२॥
जहिँ अच्छइ इन्दइ भाणुकण्णु । पञ्चामुहु मउ मारिच्चि अण्णु ॥३॥
घणवाहणु जहिँ अक्खय-कुमारु । सहसमइ विहीसणु दुण्णिवारु ॥४॥
हणुवन्तु णीलु णलु जम्बवन्तु । सुग्गीउ समर-भर-उव्वहन्तु ॥५॥
अङ्गङ्गय-गवय - गवक्ख जेत्थु । तहों वन्धु वहेँवि को वसइ एत्थु' ॥६॥

[१४] यह सुनकर राहुग्रस्त चंद्रकी तरह खिन्नशरीर और विमल चन्द्रोदरपुत्र विराधित चिंतित हो उठा। वह अपने मनमें सोचने लगा कि "मै जिसकी आशंसा (शरण) मे जाता हूँ वही असफल क्यों हो जाता है। इनके विना मै अपने समयका यापन कैसे करूँगा ? निर्धन होनेपर भी वड़ेकी सेवा करना अच्छा। हो न हो मै इनकी ही सेवामें रहूँगा। आखिर भाग्यकी विडम्बना कवतक रहेगी। एक न एक दिन अवश्य संपदा होगी।" यह विचारकर उसने लक्ष्मणसे कहा, "पीछा करना कौन वड़ी बात है, मै तवतक सीतादेवीकी खोज करता हूँ, कि जवतक वह मिल न जाय।" यह कहकर उसने तुरन्त भेरी बजवा दी। दशो दिशाओ मे सेना इस प्रकार चल पड़ी मानो विजय-लक्ष्मी ही लौट रही हो या फिर ज्योतिपचक्र ही घूम रहा हो या सिद्धको सिद्धि प्राप्त हो रही हो। किंतु (प्रयत्न करनेके अनंतर) विद्याधर सेना ध्वज और वाहनो सहित अपना मुख नीचा करके ऐसे रह गई मानो हिम-वातसे आहत, म्लान और परागविहीन कमलिनीवन हो ॥१-१०॥

[१५] तदनन्तर विराधितने आकर रामसे कहा, "खरदूषण के मारे जानेके अनंतर रावणके जीवित हुए, देवभीपण और त्रिभुवनके जनोके लिए भयंकर इस वनमे रहना ठीक नहीं। शम्बूकका वधकर सूर्यहास उत्तम खड्गको लेकर एवं (इस प्रकार) कालके मुखमे प्रवेशकर कौन (यहॉ) बच सकता है। जहॉ इन्द्रजीत भानुकर्ण पंचमुख मय और मारीच हैं। तथा जहॉ मेघ-वाहन अक्षयकुमार तथा सहस्त्रबुद्धि और दुर्निवार विभीपण विद्य-मान है। हनुमान नल नील जाम्ववंत तथा युद्धभार उठानेमे समर्थ सुग्रीव वर्तमान हैं, जहॉ अंग अंगद गवय और गवाक्ष है। वहॉ उसके वहनोईको मारकर कौन जीवित रह सकता है।" यह सुन-

वयणेण तेण लक्खणु विरुद्धु । गय-गन्धें णाइँ मइन्दु कुद्धु ॥७॥
'सुट्ठु वि रुट्ठेहिँ मयङ्गमेहिँ । किं रुम्भइ सीहु कुरङ्गमेहिँ ॥८॥
रोमग्गु वि वङ्कु ण होइ जेहिँ । किं णिसियर-सण्ढहिँ गहणु तेहिँ ॥९॥

घत्ता

जे णरवइ अक्खिय रावण-पक्खिय ते वि रणङ्गणेँ णिट्ठवमि ।
छुडु दिन्तु णिरुत्तउ जुज्झु महन्तउ दूसण-पन्थें पट्ठवमि' ॥१०॥

[१६]

दुवई

भणइ पुणो वि एम विज्जाहरु 'अच्छेँ वि किं करेसहुँ ।
तमलङ्कार-णयरु पइसेप्पिणु जाणइ तहिँ गवेसहुँ' ॥१॥
बलु वयणेण तेण, सहुँ साहणेण, सचल्लिउ ।
णाइँ महासमुद्दु, जलयर-रउद्दु, उत्थल्लिउ ॥२॥
दिण्णाणन्द-भेरि, पडिवक्ख-खेरि, खर-वज्जिय ।
ण मयरहर-वेल, कल्लोलबोल, गलगज्जिय ॥३॥
उब्भिय कणय-दण्ड, धुव्वन्त धवल, धुअ-धयवड ।
रसमसकसमसन्त-, तडतडयडन्त-, कर गय-घड ॥४॥
कत्थइ खिलिहिलन्त, हय हिलिहिलन्त, णीसरिया ।
चञ्चल-चडुल-चवल, चलवलय पवल, पक्खरिया ॥५॥
कत्थइ पहेँ पयट्ट, दुग्घोट्ट-थट्ट, मय-भरिया ।
सिरेँ गुमुगुमुगुमन्त, -चुमुचुमुचुमन्त,-चच्चरिया ॥६॥
चन्दण - बल-परिमलामोय-सेय - किय-कद्दमेँ ।
रह-खुप्पन्त-चक्क - वित्थक्क-छइय - भड-मद्दवेँ ॥७॥
एम पयट्टु सिमिरु, ण बहल-तिमिरु, उद्धाइउ ।
तमलङ्कार-णयरु णिमिसन्तरेण सपाइउ ॥८॥
पय-विरहेण रासु, अद्ध-खाम-खासु, झीणङ्गउ ।
त्रिय-मग्गेण तेण, कन्तहेँ तणेण, ण लग्गउ ॥९॥

घत्ता

दहवयणु स-सीयउ पाणहँ भीयउ मच्छुडु एत्तहेँ णट्ठु खलु ।
मेइणि विहारेँ वि मग्गु समारेँ वि णं पायालेँ पइट्ठु बलु ॥१०॥

कर लक्ष्मण मदांध गजकी तरह एकदम भड़क उठा। वह बोला, "क्यों क्या सिंह रुष्ट गजों या मृगोंसे अवरुद्ध हो सकता है, जिसका कोई भी बाल बाँका नहीं कर सकता भला उसे निशाचर-समूह क्या खाक पकड़ सकता है। तुमने रावणके पक्षके जिन राजाओंका उल्लेख किया है मैं उन्हें भी युद्धमें नष्ट कर दूँगा।" ॥१-१०॥

[१६] इसपर विद्याधर विराधितने निवेदन किया, 'यहाँ रहकर भी आखिरकार हम करेंगे क्या ? चलो तमलंकार नगरमें चलें, फिर सीताकी खोज की जाय।" उसके अनुरोध करनेपर राम और लक्ष्मण सेनाके साथ ऐसे चल पड़े मानो जलचरोंसे भरा हुआ महासमुद्र ही उछल पड़ा हो। शत्रुको क्षुब्ध करनेवाली आनन्दकी भेरी बज उठी। मानो समुद्र ही अपनी तरंग-ध्वनिसे गरज पड़ा हो। गजघटाएँ कसमसाती रसमसाती और तड़-तड़ करती हुई निकल पड़ी। बख्तर पहने, अपनी चंचल गर्दन झुकाये और अश्व हिनहिनाते और खलबलाते वलयसे चले जा रहे थे। उनके सिरोंपर गुनगुनाते हुए भ्रमर घूम रहे थे। इस प्रकार घनीभूत तमकी तरह उस सेनाने प्रस्थान किया। तब, प्रचुर चंदनरेणु और प्रस्वेदसे मार्ग पंकिल हो उठा। गड़े हुए रथ चक्रोंसे निरुद्ध सैनिकोंमें रेल-पेल मची हुई थी। सेना उड़कर पलभरमें तमलंकार नगर जा पहुँची। प्रिया-विरहमें अत्यंत क्षीणाङ्ग राम ऐसे लगते थे मानो वे सीताके ही मार्गका अनुगमन कर रहे हों। धरती विदीर्ण करती हुई सेना, उस पाताल नगरमें मानो यह सोचती हुई घुस रही थी कि कहीं दुष्ट रावण अपने प्राणोंसे भयभीत, सीता देवीके साथ यहीं तो नहीं आया ॥१-१०॥

[१७]

दुवई

ताव पचण्डु वीरु खर-दूसण-णन्दणु तण्णिवारणो ।
सो सण्णहेँ वि सुण्डु पुर-वारेँ परिट्ठिउ गहिय-पहरणो ॥१॥
जं थक्कु सुण्डु रणमुहेँ रउद्दु । उद्धाइउ राहव - वल-समुद्दु ॥२॥
णवर कलयलारावु उट्ठिउ दोहिं मि सेण्णेहिँ अब्भिट्टमाणेहिँ
जाय च जुज्झ महा - गोलुद्दाम-घोरारुण मुक्क-हाहारव ॥३॥
विरसिय-सय-सङ्ख - कसाल - कोलाहल काहल-टट्टरी-झल्लरी-
मद्दलुल्लोल - वजन्तभम्भीस - भेरी - सरुञ्जा - हुडुक्काउल ॥४॥
पसहिय-गय-गिल्ल - कल्लोल - गज्जन्त-गम्भीर-भीसावणोरालि-
मेल्लन्त-रुण्टन्त, घण्टा-जुअ पाडिय मेट्ठ-पाइक्कय भिण्ण-वच्छत्थल ॥५॥
सललिय-रह - चक्क - खोणी-पखुप्पन्त-धुप्पन्त-चिन्धावलि-हेम-
दण्डुज्जल-चामरुच्छोह-विज्जिज्जमाण स-जोह महासन्दणावीढय ॥६॥
हिलिहिलिय - तुरङ्गमुव्वुण्ण - कण्ण चल चञ्चलङ्ग महा-दुज्जय
दुद्धर दुण्णिरिक्ख मही - मण्डलावत्त-देन्त हयाण वल ॥७॥
हुलि-हल-मुसलग्ग-कोन्तेहिँ अद्धेन्दु-सूलेहिँ वावल्ल-भल्लेहिँ णाराय-
सल्लेहिँ भिण्णं कराल ललन्तन्त-माल अ-सीस कवन्ध पणच्चाविय ॥८॥

घत्ता

तहिँ सुन्द-विराहिय समर-जसाहिय अवरोप्परु वड्ढन्त-कलि ।
पहरन्ति महा-रणेँ मेइणि-कारणेँ ण भरहेसर-वाहुवलि ॥९॥

[१८]

दुवई

चन्दणहाएँ ताव जुज्झन्तु णिवारिउ णियय-णन्दणो ।
'दीसइ ओहु जोहु खर - दूसण-सम्वुकुमार-मद्दणो ॥१॥
जुज्झेवउ सुन्द ण होइ कज्जु । जीवन्तहँ होसइ अण्णु रज्जु ॥२॥
वरि गम्पिणु सुर-पञ्चाणणासु । कूवारउ करहु दसाणणासु ॥३॥
ओसरिउ सुण्डु वयणेण तेण । गउ लङ्क पराइउ तक्खणेण ॥४॥

[१७] सेना आती हुई देखकर खर-दूषणका वीर पुत्र प्रचंड सुण्ड उसका निवारण करनेके लिए तैयारी करने लगा। हाथोंमे अस्त्र लेकर वह आकर द्वारपर जम गया। रणमुखमे अत्यन्त भयङ्कर सुण्डके स्थित होते ही रामका सेना-समुद्र उबल पड़ा। दोनो सेनाओंमे कल-कल ध्वनि होने लगी। अत्यन्त भयङ्कर तथा उत्कट हाहारव मच गया। सैकड़ो शङ्ख, कंसाल, काहल, टट्टनी, झल्लरी, मृदङ्ग आदि वाद्यों, मम्भीस, भेरी, सरुञ्ज, और हुडुक्कका कोलाहल पूरित हो उठा। सज्जित मद झरते और गरजते हुए गजोंके घण्टोंसे भीषण रव उठा। वक्षस्थलोंमे आहत होकर समर्थ पैदल सेना धराशायी होने लगी। सुन्दर रथचक्रोंकी कतारें धरतीमे धँसने लगी। टूटती हुई पताकाओंके स्वर्णिम दण्डो और चामरोंकी कान्ति चमक उठी। रथकी पीठके साथ योधा गिरने लगे। चपलाङ्ग महान्, अजेय, दुर्दर्शनीय, हिनहिनाते और कान खड़े किये हुए अश्व धरती पर मंडलावर्त बना रहे थे। हलि, हल, मूसलाग्र, भाला, अर्धचन्द्र, शूल, वावल्ल, भाला, वाण और शल्योंसे भिन्न कराल मस्तकहीन धड़ धरतीपर अपनी मालाओंको हिलाते हुए नाचने लगे। इस प्रकार उस तुमुल युद्धमे यशस्वी विराधित और सुण्डके बीच घमासान भिड़न्त हुई। ठीक उसी तरह, जिस तरह धरतीके लिए, भरत और वाहुवलिके बीच हुई थी ॥१-६॥

[१८] परन्तु चन्द्रनखा (खरकी पत्नी) ने बीचमें ही अपने पुत्रको यह कहकर युद्धसे विरत कर दिया कि शम्बूक और खर-दूषणका हत्यारा लक्ष्मण दिखाई दे रहा है, इस प्रकार लड़नेसे काम नहीं चलेगा। जीवित रहने पर तुम्हे दूसरा राज्य मिल जायगा। अच्छा हो तुम सुरसंहारक रावणके पास जाकर गुहार करो। मॉके कहने पर सुण्ड युद्धसे विमुख हो गया। उसने तुरन्त

एत्थु स-विराहिउ पइट्ठु रामु । ण कामिणि-जणु मोहन्तु कामु ॥५॥
खर-दूसण - मन्दिरेँ पइसरेवि । चन्दोयर - पुत्तहोँ रज्जु देवि ॥६॥
साहारु ण वन्धइ कहि मि रामु । वइदेहि-विओए खामु खामु ॥७॥
रह-तिक्क - चउक्केँहिँ परिभमन्तु । दीहिय - विहार - मढ परिहरन्तु ॥८॥
गउ ताम जाम जिण-भवणु दिट्ठु । परिअञ्चेँवि अब्भन्तरेँ पइट्ठु ॥९॥

घत्ता

जिणवरु णिज्जाएँवि चित्तेँ झाएँवि जाइ णिरारिउ विउलमइ ।
आहुट्ठेँहिँ भासेँहिँ थोत्त-सहासेँहिँ थुअउ स य भु वणाहिवइ ॥१०॥

●

[४१. एकचालीसमो संधि]

खर-दूसण गिलेँवि चन्दणहिहेँ तित्ति ण जाइय ।
ण खय-काल-छुह रावणहोँ पडीवी धाइय ॥

[१]

सम्बुकुमार-वीरेँ अत्थन्तएँ । खर-दूसण-सगामेँ समत्तएँ ॥१॥
दूरोसारिएँ सुन्द-महव्वलेँ । तमलङ्कार-णयरु गएँ हरि-वलेँ ॥२॥
एत्थएँ असुर-मल्लेँ सुर-डामरेँ । लङ्काहिवेँ वहु-लद्ध-महावरेँ ॥३॥
पर-वल - वल - पवाणाहिन्दोलणेँ । वइरि - समुद्द - रउद्द - विरोलणेँ ॥४॥
मुक्कङ्कुस- मयगल - गलत्थल्लणेँ । दाण-रणङ्गणेँ हत्थुत्थल्लणेँ ॥५॥
विहडिय-भड-थड-किय-कडमद्दणेँ । कामिणि- जण-मख - णयणाणन्दणेँ ॥६॥
सीयएँ सहु सुरवर-सतावणेँ । छुडु छुडु लङ्क पइट्ठएँ रावणेँ ॥७॥
तहिँ अवसरेँ चन्दणहि पराइय । णिवडिय कम-कमलेँहिँ दुह-घाइय ॥८॥

ही लङ्काके लिए प्रस्थान किया। इधर तमलंकार नगरीमें रामने विराधितके साथ वैसे ही प्रवेश किया जैसे काम कामिनीजनमें प्रवेश करता है। खर-दूपणके भवनमे जाकर विराधितने राजपाट सौंप दिया। परन्तु राम किसी भी प्रकार अपनेको सान्त्वना नहीं दे पा रहे थे। सीताके वियोगमें वह क्षीणतम हो रहे थे। राज्य त्रिपथ और चतुष्पथोमे भ्रमण करते हुए वह विशाल विहार और मठोको छोड़ते हुए एक जिन-मन्दिरमें पहुँचे। तीन बार उसकी प्रदक्षिणा देकर उन्होने भीतर प्रवेश किया। वहाँ जिनवरका दर्शन और ध्यानकर विमल बुद्धि राम एकदम निराकुल हो गये। अपभ्रष्ट (अपभ्रंश) भाषाओमे हजारो श्लोकोसे वनपति रामने स्वयं जिनकी स्तुति की ॥१–६॥

•

इक्तालीसवीं सन्धि

खरदूषणके मारे जानेपर भी चन्द्रनखाकी तृप्ति नहीं हुई। क्षयकालकी भूखकी तरह, वह रावणके पास दौड़ी गई।

[१] उधर वीर शम्बूकका अन्त हो चुका था खरदूषण भी युद्धमें समाप्तप्राय थे। वीर सुण्डकी सेना हट चुकी थी। राम और लक्ष्मण ससैन्य तमलङ्कार नगरमें प्रवेश कर चुके थे। इधर देव-भयंकर, निशाचर, वीर रावण भी अनेक वर प्राप्त कर चुका था। वह अत्यन्त ही समर्थ था, सेनारूपी पवनको आन्दोलित करनेमे, भयंकर शत्रु-समुद्रके मंथनमे, निरंकुश-गजोको वश करनेमे, दान-युद्धमे, मुक्तदान करनेमे, विघटित भटसमूहको कुचलनेमे, कामिनियोके मन और नेत्रोको आनन्द देनेमें। सुरपीड़क उसने सीताके साथ जिस समय लंकामे प्रवेश किया, उसी समय दुखकी

घत्ता

सम्बुकुमारु मुउ खर-दूसण जम-पहँ लाइय।
पइँ जीवन्तएँ ण एही अवत्थ हउँ पाइय' ॥९॥

[२]

त चन्दणहिहेँ वयणु दयावणु। णिसुणेँवि थिउ हेट्ठामुहु रावणु ॥१॥
ण मयलञ्छणु णिप्पहु जायउ। गिरि व दवग्गि-दड्ढु विच्छायउ ॥२॥
ण मुणिवरु चारित्त-विभट्टउ। भविउ व भव-ससारहोँ तट्ठउ ॥३॥
वाह-भरन्त-णयणु मुह-कायरु। गहेँण गहिउ ण हूउ दिवायरु ॥४॥
दुक्खु दुक्खु दुक्खेणामेल्लिउ। सयण-सणेहु सरन्तु पवोल्लिउ ॥५॥
'घाइउ जेण सम्बु खरु दूसणु। त पट्ठवमि अज्जु जमसासणु ॥६॥
अहवइ एण काइँ माहप्पें। को ण मरइ अपूरें मप्पें ॥७॥
धीरी होहि पमायहि सोओ। कासु ण जम्मण-मरण-विओओ ॥८॥

घत्ता

को वि ण वज्जमउ जाए जीवें मरिएवउ।
अम्हेँहिँ तुम्हेँहि मि खर-दूसण-पहेँ जाएवउ ॥९॥

[३]

धीरेँ वि णियय वहिणि सिय-माणणु। रयणिहिँ गउ सोवणएँ दसाणणु ॥१॥
वर-पल्लङ्केँ चडिउ लङ्केसरु। णं गिरि-सिहरेँ मइन्दु स-केसरु ॥२॥
णं विसहरु णीसासु मुअन्तउ। ण सज्जणु खल-खेइज्जन्तउ ॥३॥
सीया-मोहेँ मोहिउ रावणु। गायइ वायइ पढइ सुहावणु ॥४॥
णच्चइ हसइ वियारेँहिँ भज्जइ। णिय-भूअहुँ जि पडीवउ लज्जइ ॥५॥
दंसण - णाण - चरित्त - विरोहउ। इह-लोयहोँ पर-लोयहोँ दोहउ ॥६॥

मारी चन्द्रनखा भी उसके निकट पहुँची। चरणोंमें गिरकर वह बोली, "शम्बूक कुमार मारा गया, खरदूषणने भी यमका रास्ता नाप लिया है। आपके जीते जी मेरी यह दशा" ॥१-६॥

[२] चन्द्रनखाके दीन हीन वचनोंको सुनकर, दशानन शीश झुकाकर ऐसे रह गया मानो चन्द्र ही कान्तिसे हीन हो उठा हो, या पर्वत दावानलमें जलकर प्रभाहीन हो उठा हो। या मुनि ही चरित्रसे भ्रष्ट हो गया हो, या भव्य जीव संसारसे त्रस्त हो उठा हो। उसकी आँखोंसे अश्रु प्रवाह निरन्तर जारी था। उसका मुख एकदम कातर हो उठा मानो सूर्य ही राहुसे ग्रस्त हो गया हो। बड़े कष्टसे किसी प्रकार अपने दुखको दूरकर, दशानन स्वजनके स्नेह स्वरमें बोला, "कुमार शम्बूक और खरदूषणका जिसने वध किया हैं मै उसे आज ही यमके शासनमें भेज दूँगा। अथवा इस माहात्म्यसे क्या। (अपूरे माप ??) असमयमें कौन नहीं मरता। धीरज धारण करो। शोक छोड़ो। जन्म जरा मरण और वियोग किसे नहीं होता, वज्रसे कोई नही बनता। जो जन्मा है वह मरेगा अवश्य। हम तुम भी (एक दिन) आखिर खर-दूषणके पदपर जायँगे ॥१-९॥

[३] लक्ष्मीका अभिमानी रावण अपनी बहिनको समझा बुझाकर रातको सोनेके लिए गया। वह लंकेश्वर उत्तम पलंगपर चढ़ा मानो अयाल सहित मृगेन्द्र ही गिरिशिखर पर चढ़ा हो, मानो विषधर ही निश्वास छोड़ रहा हो, या दुष्टजनोंसे सताया हुआ सज्जन ही हो। सीताके मोहमें विह्वल होकर रावण कभी गाता, कभी वजाता, कभी सुहावने ढंगसे पढ़ने लगता, नाचता और हँसता। इस प्रकार वह विकारग्रस्त हो रहा था। इन्द्रियसुख-की आकांक्षामें वह उल्टा लज्जित हो रहा था। दर्शन ज्ञान और

मलण-परव्वसु एउ ण जाणइ । जिह सघारु करेसइ जाणइ ॥७॥
अच्छइ मयण-सरेँहिँ जज्जरियउ । खर-दूसण-णाउ मि वीसरियउ ॥८॥

घत्ता

चिन्तइ दहवयणु 'धणु धण्णु सुवण्णु समत्थउ ।
रज्जु वि जीविउ वि विणु सीयएँ सव्वु णिरत्थउ' ॥९॥

[४]

तहिँ अवसरेँ आइय मन्दोवरि । सीहहोँ पासु व सीह-किसोयरि ॥१॥
वर-गणियारि व लीला-गामिणि । पियमाहविय व महुरालाविणि ॥२॥
सारङ्गि व विप्फारिय-णयणी । सत्तावीसंजोयण-वयणी ॥३॥
कलहंसि व थिर-मन्थर-गमणी । लच्छि व तिय-रूवें जूरवणी ॥४॥
अह पोमाणिहेँ अणुहरमाणी । जिह सा तिह एह वि पउराणी ॥५॥
जिह सा तिह एह वि वहु-जाणी । जिह सा तिह एह वि वहु-माणी ॥६॥
जिह सा तिह एह वि सुमणोहर । जिह सा तिह एह वि पिय-सुन्दर ॥७॥
जिह सा तिह एह वि जिण-सासणेँ । जिह सा तिह एह वि ण कु-सासणेँ ॥८॥

घत्ता

किं वहु जम्पिएँण उवमिज्जइ काहेँ किसोयरि ।
णिय-पडिछन्दएँण थिय सइँ जेँ णाइँ मन्दोयरि ॥९॥

[५]

तहिँ पल्लङ्कें चडेँवि रज्जेसरि । पभणिय लङ्कापुर - परमेसरि ॥१॥
'अहोँ दहमुह दहवयण दसाणण । अहोँ दससिर दसास सिय-माणण ॥२॥
अहोँ तइलोक्क - चक्क-चूडामणि । वइरि - महीहर - खर-वज्जासणि ॥३॥
वीसपाणि णिसियर-णरकेसरि । सुर-मिग-वारण दारण-अरि-करि ॥४॥
पर - णरवर - पायार-पलोट्टण । दुद्दम - दाणव - वल - दलवट्टण ॥५॥
जइयहुँ भिडिउ रणङ्गणे इन्दहोँ । जाउ कुल-क्खउ सजण-विन्दहोँ ॥६॥
तहिँ वि कालेँ पइँ दुक्खु ण णायउ । जिह खर-दूसण-मरणेँ जायउ' ॥७॥

चारित्रका विरोधी इहलोक और परलोकमें दुर्भाग्यजनक और कामके अधीन वह यह नहीं जान पा रहा था कि जानकी उसका कितना विनाश करेगी। कामके बाणोंसे इतना जर्जर हो बैठा था कि खर और दूषणका नाम तक भूल गया। रावण सोचता,—"धन-धान्य, सोना, सामर्थ्य, राज्य और यहाँ तक जीवन भी, सीताके बिना सब कुछ व्यर्थ है" ॥१-९॥

[४] इसी अवसरपर उसके पास मन्दोदरी आई मानो सिह के निकट सिंहनी आई हो। वह वन-हथिनीकी तरह लीला-पूर्वक चलनेवाली थी, प्रिय कोयलकी तरह मधुर आलाप करनेवाली थी, हिरनीकी तरह विस्फारित नेत्र थी। चन्द्रकी तरह मुखवाली थी, कल-हंसिनीकी तरह मन्थर गतिवाली, अपने स्त्रीरूपसे लक्ष्मीकी तरह सतानेवाली, इन्द्राणीकी तरह अभिमानिनी और उसीकी तरह यह पटरानी थी। जैसे वह (इन्द्राणी) वैसे यह भी बहुपण्डिता थी। जैसे वह वैसे यह भी सुमनोहर थी। जैसे वह, वैसे ही यह भी अपने पतिकी बहुत प्रिय थी। जैसे वह वैसे ही यह जिन-शासनको मानती थी। जैसे वह, वैसे यह भी कुशासनमें नहीं रहती थी। अधिक कहनेसे क्या उस सुन्दरीकी उपमा किससे दी जाय, अपने प्रति-उपमान के समान वही स्वयं थी ॥१-६॥

[५] पलङ्गपर चढ़कर लङ्का परमेश्वरी राजेश्वरीने कहा—"अहो दशमुख, दशवदन, दशानन, दशशिर, दशास्य, लक्ष्मीके मानी, अहो, त्रिलोकचक्रचूड़ामणि, शत्रुरूपी कुलपर्वतोंके लिए वज्र, बीस हाथवाले निशाचरराज सिह, सुरमृगगज, शत्रुरूपी गजको नष्ट करनेवाले, शत्रुमनुष्योंकी प्राचीरको तोड़नेवाले, दुर्दम दानव सेनाको चूरनेवाले, जब तुम इन्द्रसे लड़े थे उस समय अपने कुल का कितना माथा ऊँचा हुआ था। परन्तु उस समय तुम्हें उतना

भणइ पडीवउ णिसियर-णाहो । 'सुन्दरि जइ ण करइ अवराहो ॥८॥

घत्ता

तो हउँ कहमि तउ णउ खर-दूपण-दुक्खुऽच्छइ ।
एत्तिउ डाहु पर ज मइँ वइदेहि ण इच्छइ' ॥ ९ ॥

[६]

तं णिसुणेवि वयणु ससिवयणएँ । पुणु वि हसेवि वुत्तु मिगणयणएँ ॥१॥
'अहों दहगीव जीव-सतावण । एउ अजुत्तु वुत्तु पइँ रावण ॥२॥
किं जगेँ अयस-पडहु अप्फालहि । उभय विसुद्ध वस किं मइलहि ॥३॥
किं णारइयहों णरएँ ण वीहहि । पर-धणु पर-कलत्तु ज ईहहि ॥४॥
जिणवर-सासणेँ पञ्च विरुद्धइँ । दुग्गइ जाइ णिन्ति अविसुद्धइँ ॥५॥
पहिलउ वहु छज्जीव-णिकायहुँ । वीयउ गम्मइ मिच्छावायहुँ ॥६॥
तइयउ ज पर-दव्वु लइज्जइ । चउथउ पर-कलत्तु सेविज्जइ ॥७॥
पञ्चमु णउ पमाणु घरवारहों । आयहिँ गम्मइ भव-ससारहों ॥८॥

घत्ता

पर-लोएँ वि ण सुहु इह-लोएँ वि अयस-पडाइय ।
सुन्दर होइ ण तिय एँय-वेसेँ जमउरि आइय' ॥९॥

[७]

पुणु पुणु पिहुल-णियम्व किसोयरि । भणइ हिमयत्तणेण मन्दोयरि ॥१॥
'ज सुहु कालकूडु विसु खन्तहुँ । ज सुहु पलयाणलु पइसन्तहुँ ॥२॥
ज सुहु भव-ससारेँ भमन्तहुँ । ज सुहु णारइयहुँ णिवसन्तहुँ ॥३॥
ज सुहु जम-सासणु पेच्छन्तहुँ । ज सुहु असि-पञ्जरेँ अच्छन्तहुँ ॥४॥
ज सुहु पलयाणल-मुह-कन्दरेँ । ज सुहु पञ्चाणण - दाढन्तरेँ ॥५॥
ज सुहु फणि-माणिक्कु खुडन्तहुँ । त सुहु एह णारि भुञ्जन्तहुँ ॥६॥
जाणन्तो वि तो वि जइ वञ्छहि । तो कज्जेण केण मइँ पुच्छहि ॥७॥

दुख नहीं हुआ था जितना खर और दूषणके वियोगमें अभी हुआ। तब निशाचरनाथने कहा—"हे सुन्दरी, यदि अपराध न माना जाय तो मैं तुमसे कहना चाहता हूँ कि मुझे खर-दूषणके मरणका कुछ भी दुख नहीं है, दुख केवल यही है कि सीता मुझे नहीं चाहती" ॥१-६॥

[६] यह वचन सुनकर शशिवदना मृगनयनी मन्दोदरीने हँसकर कहा—"अरे दशग्रीव, जीव-संतापकारी रावण, यह तुमने अत्यन्त अनुपयुक्त कहा। क्यों दुनियामें अपने अयशका डङ्का पिटवाते हो, दोनों ही विशुद्ध कुलोंको क्यों कलङ्कित करते हो, नरकके नारकियोंसे क्या नहीं डरते, जो तुम परस्त्री और परधन की इच्छा करते हो। जिनवर शासनमें पाँच चीजें विरुद्ध हैं। ये दुर्गतिमें ले जानेवाली और नित्यरूपसे अशुद्ध हैं। पहले छह निकायों के जीवोंका वध, दूसरे मिथ्यात्ववाद लगाना, तीसरे पर-द्रव्यका अपहरण, चौथे परस्त्री सेवन करना और पाँचवे अपने गृहद्वार (गृहस्थी) का परिमाण न करना। इनसे भव—संसारमें भटकना पड़ता है, परलोकमें तो अयश फैलता ही है। स्त्री सुन्दर नहीं होती, इसके रूपमें मानो यमपुरी ही आई है" ॥१-६॥

[७] पृथुलनितम्बा कृशोदरी मन्दोदरी बार-बार हृदयसे यही कहती—"कालकूट विष खानेमें जो सुख है, जो सुख प्रलय की आगमें प्रवेश करनेमें है, जो सुख भव-सागरमें घूमनेमें हैं, जो सुख नारकियोंके बीच निवास करनेमें है, जो सुख यमका शासन देखनेमें है, जो सुख, तलवारकी धारपर बैठनेमें है, जो सुख प्रलयानल मुख—गुहामें प्रवेश करनेमें है, जो सुख सिंहकी दंष्ट्राके नीचे आनेमें है, जो सुख शेषनागकी फणमणि तोड़नेमें है, वही सुख इस नारीका भोग करनेमें है, जानते हुए भी यदि तुम इसे

तउ पासिउ किं कोइ वि वलियउ । जेण पुरन्दरो वि पडिखलियउ ॥८॥

घत्ता

ज जसु आवडइ तहों त अणुराउ ण भज्जइ ।
जइ वि असुन्दरउ ज पहु करेइ तं छज्जइ' ॥९॥

[८]

तं णिसुणेवि वयणु दहवयणें । पभणिय णारि विरिञ्चिय-णयणें ॥१॥
'जइयहुँ गयउ आसि अचलिन्दहों । वन्दण-हत्तिएँ परम-जिणिन्दहों ॥२॥
तइहु दिट्ठु एक्कु मइँ मुणिवरु । णाउँ अणन्तवीरु परमेसरु ॥३॥
तासु पासेँ वउ लइउ ण भञ्जमि । मण्डएँ पर - कलत्तु णउ भुञ्जमि ॥४॥
अहवइ एण काइँ मन्दोअरि । जइ णन्दन्ति णियहि लङ्काउरि ॥५॥
जइ मग्गहि धणु धण्णु सुवण्णउ । राउलु रिद्धि - विद्धि-सपण्णउ ॥६॥
जइ आरुहहि तुरङ्ग-गइन्देंहिँ । जइ वन्दिज्जइ वन्दिण-वन्देंहिँ ॥७॥
जइ मग्गहि णिक्कण्टउ रज्जु । जइ किर मइँ वि जियन्तेँण कज्जु ॥८॥

घत्ता

सयलन्तेउरहों जइ इच्छहि णउ रण्डत्तणु ।
तो वरि जाणइहेँ मन्दोयरि करें दूअत्तणु' ॥९॥

[९]

तं णिसुणेँवि वयणु दहवयणहों । पभणिय मन्दोयरि पुरि मयणहों ॥१॥
'हो हो सव्वु लोउ जगेँ दूहउ । पइँ मेल्लेविणु अण्णु ण सूहउ ॥२॥
सुरकरि-अहिसिञ्चिय-सिय-सेविहेँ । जो आएसु देहि महएविहेँ ॥३॥
एव वि करमि तुम्हारउ वुत्तउ । पहु-छन्देण अजुत्तु वि जुत्तउ' ॥४॥
ए आलाव परोप्परु जावेँहिँ । रयणिहेँ चउ पहरा ह्य तावेँहिँ ॥५॥
अरुणुग्गमेँ अच्चन्त-किसोयरि । सीयहेँ दूई गय मन्दोयरि ॥६॥
सहुँ अन्तेउरेण उद्धूसिय । गणियारि व गणियारि-विहूसिय ॥७॥

चाहते हो, तो फिर मुझसे क्यो पूछते हो, तुझसे अधिक बलवान् और कौन है। तुमने तो इन्द्रप्रभको परास्त कर दिया। जिसपर जो आ पड़ता है उससे उसका प्रेम नष्ट नहीं होता ? यद्यपि यह अशोभन है फिर भी आप जो करेंगे वह शोभा ही देगा।

[८] यह वचन सुनकर विशालनयन रावणने अपनी पत्नीसे कहा, "जब मै जिनकी वन्दना-भक्तिके लिए मन्दराचल पर्वतपर गया हुआ था तो वहाँ अनन्तवीर्य नामक मुनिसे मेरी भेट हुई थी, उनसे मैने यह प्रतिज्ञा ली थी कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी उसका मै बलपूर्वक भोग नही करूँगा। अथवा इससे क्या ? हे मन्दोदरी, यदि तुम इस लङ्का-नगरीमे आनन्द करना चाहती हो, यदि धन-धान्य सुवर्णकी इच्छा करती हो, यदि ऋद्धि और वृद्धिसे पूर्ण राज्यका भोग करना चाहती हो, यदि तुरङ्ग और गजोंपर बैठना चाहती हो, यदि वन्दीजनोंसे अपनी स्तुति करवाना चाहती हो, यदि निष्कंटक राज्य चाहती हो, यदि मुझे भी जीवित देखना चाहती हो, और यदि यह भी चाहती हो कि समूचे अन्तःपुरका रड़ापा न आये तो जानकीके पास जाकर मेरा दौत्य-कार्य कर दो" ॥१-६॥

[६] यह वचन सुनकर, कामकी नगरीके समान मन्दोदरीने कहा, "हो हो, सब लोक दुखद है, तुम्हे छोड़कर मुझे अन्य कुछ भी सुभग नही है, ऐरावत द्वारा अभिषिक्त, श्रीसे सेवित, इस महादेवीको आप जो भी आज्ञा देगे, वह मै अवश्य करूँगी। क्योंकि पतिके स्वार्थके लिए अनुचित भी उचित होता है। इस प्रकारकी बाते होते-होते रातके चारो पहर बीत गये। सूर्योदय होते ही मन्दोदरी सीतादेवीके निकट दूती बनकर गई। अपने अन्तःपुरके साथ वह वैसी ही विभूषित थी जैसे हथिनियोंसे

वणु गिव्वाणरवणु सपाइय । राहव-घरिणि तेत्थु णिज्झाइय ॥८॥

घत्ता

वे वि मणोहरिउ रावण-रामहुँ पिय-णारिउ ।
दाहिण-उत्तरॅण ण दिस-गइन्द-गणियारिउ ॥९॥

[१०]

राम-घरिणि ज दिट्ठ किसोयरि । हरिसिय णिय-मणेण मन्दोयरि ॥१॥
'अहिणव-णारि-रयणु अवइण्णउ । एउ ण जाणहुँ कहिँ उप्पण्णउ ॥२॥
सुरहु मि कामुक्कोयण-गारउ । मुणि-मण-मोहणु णयण-पियारउ ॥३॥
साहु साहु णिउणोऽसि पयावइ । तुह विण्णाण-सत्ति को पावइ ॥४॥
अह किं वित्थरेण वहु-वोल्लएँ । सइँ कामो वि पडइ कामिल्लएँ ॥५॥
कवणु गहणु तो लङ्का-राएँ' । एम पससँवि मणेँ अणुराएँ ॥६॥
पिय-वयणेहिँ दसाणण-पत्तिएँ । वुच्चइ राम-घरिणि विहसन्तिएँ ॥७॥
'कि वहु-जम्पिएण परमेसरि । जीविउ एक्कु सहलु तउ सुन्दरि ॥८॥

घत्ता

सुरवर-डमर-करु तइलोक्क-चक्क-सतावणु ।
काइँ ण अत्थि तउ जहँ आणवडिच्छउ रावणु' ॥९॥

[११]

इन्दइ - भाणुकण्ण - घणवाहण । अक्खय-मय-मारिच्च - विहीसण ॥१॥
ज चलणेहिँ घिवहि आरूसँवि । तं सीसेण लयन्ति असेस वि ॥२॥
अण्णु वि सयलु एउ अन्तेउरु । सालङ्कारु स-दोरु स-णेउरु ॥३॥
अट्ठारह सहास वर-विलयहुँ । णिच्च-पसाहिय-सोहिय - तिलयहुँ ॥४॥
आयहुँ सव्वहुँ तुहुँ परमेसरि । णोम्मावण्णु रज्जु करि सुन्दरि ॥५॥
रावणु मुएँ वि अण्णु को चङ्गउ । रावणु मुएँ वि कवणु तणु-अङ्गउ ॥६॥
रावणु मुएँ वि अण्णु को सूरउ । पर-वल-महणु कुलासा-पूरउ ॥७॥

विभूषित हथिनी होती है। वह नन्दन वनमे पहुँची। वहाँ उसे रामकी पत्नी सीतादेवी दिखाई दीं। उस अवसर पर राम और रावणकी सुन्दर पत्नियाँ ऐसी शोभित हो रहीं थीं मानो दक्षिण तथा उत्तरके दिग्गजोंकी हथिनियाँ ही हों ॥१-९॥

[१०] कृशोदरा रामकी पत्नी सीताको देखकर मंदोदरी मन ही मन खूब प्रसन्न हुई, वह सोचने लगी, "यह तो अद्भुत नारी-रत्न अवतीर्ण हुआ है। यह कहाँ उत्पन्न हुई, यह तो देवोंको भी काम उत्पन्न करनेवाली, मुनियोंका मन मोहित करनेवाली अत्यंत नयनप्रिय है। साधु, साधु, विधाता! तुम बहुत चतुर हो, तुम्हारी विज्ञानकलाको कौन पा सकता है। अथवा बहुत कहनेसे क्या, इसे देखकर तो साक्षात् काम भी कामासक्त हो सकता है। रावण द्वारा इसका ग्रहण कैसे हो! मन ही मन अनुरागसे इस तरह उनकी प्रशंसा कर, रावणकी पत्नी मन्दोदरीने हँसकर रामकी पत्नी सीतादेवीसे प्रिय वचनोंमे कहा, "हे परमेश्वरी, बहुत कहनेसे क्या, एक तुम्हारा ही जीवन (दुनियामे) सफल है। तुम्हारा (अब) क्या नहीं है जो सुरवरोंको भ्रम उत्पन्न करनेवाला, त्रिलोक चक्र-संतापक, रावण भी तुम्हारा आज्ञाकारी है ॥१-६॥

[११] इन्द्रजीत, भानुकर्ण, घनवाहन, अक्षय, मय, मारीच और विभीषण, जिस किसीको अपने पैरोंसे ठुकरा देते है, वे ही सब रावणको अपने सिर-माथे लेते है। और भी यह समस्त, अलंकार, डोर और नूपुरोंसे सहित, अन्तःपुर है तथा उत्तम चूड़ियों और नित्य सजाये गये तिलकोंवाली अठारह हजार सुन्दर स्त्रियाँ हैं। भाग्यशील ये सब तुम्हारी हैं, तुम इनपर शासन करो, (अच्छा तुम्हीं बताओ) रावणको छोड़कर, अन्य कौन, शत्रुसेनाका संहारक, अपने कुलका आशापूर्वक है। रावणके

रावणु मुएँ वि अण्णु को वलियउ। सुरवर-णियरु जेण पडिखलियउ ॥८॥
रावणु मुएँ वि अण्णु को मल्लउ। जो तिहुयणहोँ मल्लु एक्कल्लउ ॥९॥
रावणु मुएँ वि अण्णु को सूहउ। जं आपेक्खेँवि मयणु वि दूहउ ॥१०॥

घत्ता

तहोँ लङ्केसरहोँ कुवलय-दल-दीहर-णयणहोँ।
भुञ्जहि सयल महि महएवि होहि दहवयणहोँ' ॥११॥

[१२]

तं तहेँ कडुअ-वयणु आयण्णेँवि। रावणु जीविउ तिण-समु मण्णेँवि ॥१॥
सील-वलेण वलिय णउ कम्पिय। रूसेँवि णिट्ठुर वयण पजम्पिय ॥२॥
'हलेँ हलेँ काइँ काइँ पइँ वुत्तउ। उत्तिम-णारिहिँ एउ ण जुत्तउ ॥३॥
किह दइयहोँ दूअत्तणु किज्जइ। एण णाइँ महु हासउ दिज्जइ ॥४॥
मच्छुडु तुहुँ पर-पुरिस-पइट्ठी। तं कज्जेँ महु देहि दुवुद्धि ॥५॥
मत्थएँ पडउ वज्जु तहोँ जारहोँ। हउँ पुणु भत्तिवन्त भत्तारहोँ' ॥६॥
सीयहेँ वयणु सुणेँवि मणेँ डोल्लिय। णिसियर-णाह-णारि पडिवोल्लिय ॥७॥
'जइ महएवि-पट्टु ण पडिच्छहि। जइ लङ्काहिउ कह वि ण इच्छहि ॥८॥

घत्ता

तो कन्दन्ति पइँ तिलु तिलु करवत्तेँहिँ कप्पइ।
अण्णु मुहुत्तएँण णिसियरहँ विहञ्जेँवि अप्पइ' ॥९॥

[१३]

पुणुपुणुरुत्तेँहिँ जणयहोँ धीयएँ। णिब्भच्छिय मन्दोवरि सीयएँ ॥१॥
'केत्तिउ वारवार वोल्लिज्जइ। जं चिन्तिउ मणेण तं किज्जइ ॥२॥
जइ वि अज्जु करवत्तेँहिँ कप्पहोँ। जइ वि धरेँवि सिव-साणहोँ अप्पहोँ ॥
जइ वि जलन्तेँ हुआसणेँ मेल्लहोँ। जइ वि महग्गय-दन्तेँहिँ पेल्लहोँ ॥४॥
तो वि खलहोँ तहोँ दुक्किय-कम्महोँ। पर-पुरिसहोँ णिवित्ति इह जम्महोँ ॥५॥
एक्कु जि णिय-भत्तारु पहुच्चइ। जो जय-लच्छिएँ खणु वि ण मुच्चइ ॥६॥

सिवाय, कौन ऐसा बलवान है जिसने सुरसमूहको सहसा परास्त कर दिया हो, तीनों लोकोंमे रावणको छोड़कर दूसरा वीर नहीं। रावणके अतिरिक्त और कौन सुभग है जिसे देखकर कामदेव भी विकल हो उठता है। तुम, कमलदलकी तरह विशालनयन लंकेश्वर उस रावणकी समस्त धरतीका भोग करो" ॥१-११॥

[१२] रानी मन्दोदरीकी इन कड़वी बातोंको सुनकर भी सीताने रावणको तिनके की तरह तुच्छ समझा और अपने शीलके तेजसेवह जरा भी नहीं डरी। और क्रुद्ध होकर वह एकदम कठोर शब्दोंमे बोली,—"हला-हला, तुमने क्या कहा, एक भद्र महिलाके लिए यह उचित नहीं है, तुम रावणका दूतीपन क्या कर रही हो। इस तरह मेरी हँसी मत उड़ाओ, जान पड़ता है तुम्हारी किसी परपुरुषमे इच्छा है, इसीसे यह दुर्बुद्धि मुझे दे रही हो। तुम्हारे यारके माथे पर वज्र पड़े, मैं तो अपने ही पतिमे दृढ़ भक्ति रखती हूँ।" सीताके वचन सुनकर मन्दोदरीका मन चञ्चल हो उठा। उसने कहा, "यदि तुम महादेवीका पट्ट नहीं चाहती, यदि तुम लंका-नरेशको किसी भी तरह नहीं चाहती, तो क्रन्दन करती हुई तुम्हें करपत्रसे तिल-तिल काटा जायगा, और दूसरे ही क्षण, निशाचरोंको बाँट दी जाओगी ॥१-६॥

[१३] तब जनककी पुत्री सीताने बार-बार मन्दोदरीको भर्त्सना करते हुए कहा, "बार-बार कितना बोलती हो जो तुम्हारे मनमें हो वह कर डालो, यदि तुम आज ही करपत्रसे काट दो, यदि तुम आज ही पकड़कर शानपर चढ़ा दो, यदि जलती हुई आगमे डाल दो, यदि गजराजके दाँतोंके आगे ठेल दो, तो आज ही, उस दुष्टके पापकर्म और परपुरुषसे इस जन्ममे ही छूट जाऊँगी। मुझे वही एक, अपना पति पर्याप्त है जिसे विजयलक्ष्मी कभी

जो असुरा-सुर-जण-मण-वल्लहु । तुम्हारिसहुँ कुणारिहिँ दुल्लहु ॥७॥
जो णरवर-मइन्दु भीसावणु । धणु-लङ्गूल-लील-दरिसावणु ॥८॥

घत्ता

सर-णहरारुणेँण धणुवेय-ललाविय-जीहें ।
दहमुह-मत्त-गउ फाडेवउ राहव-सीहें' ॥९॥

[१४]

रामण - रामचन्द - रमणीयहुँ । जाम वोल्ल मन्दोवरि-सीयहुँ ॥१॥
ताव दसाणणु सयमेवाइउ । हत्थि व गङ्गा-वेणि पराइउ ॥२॥
भसलु व गन्ध-लुद्धु विहडप्फडु । जाणइ-वयण-कमल-रस - लम्पडु ॥३॥
करयल धुणइ झुणइ वुक्कारइ । खेड्डु करेवि देवि पच्चारइ ॥४॥
विण्णत्तिएँ पसाउ परमेसरि । हउँ कवणेण हीणु सुर-सुन्दरि ॥५॥
किं सोहग्गें भोग्गें ऊणउ । कि विरूयउ कि अत्थ-विहूणउ ॥६॥
किं लावण्णें वण्णें हीणउ । किं समाणेँ दाणेँ रणेँ दीणउ ॥७॥
कहे कज्जेण केण ण समिच्छहि । जें महएवि-पट्टु ण पडिच्छहि' ॥८॥

घत्ता

राहव-गेहिणिएँ णिब्भच्छिउ णिसियर-राणउ ।
'ओसरु दहवयण तुहुँ अम्हहुँ जणय-समाणउ ॥९॥

[१५]

जाणन्तो वि तो वि म मुज्झहि । गेण्हेँवि पर-कलत्तु कहिँ सुज्झहि ॥१॥
जाम ण अयस-पडहु उब्भासइ । जाम ण लङ्काणयरि विणासइ ॥२॥
जाम ण लक्खण-सीहु विरुज्झइ । जाम ण राम-कियन्तु विवुज्झइ ॥३॥
जाम ण सरवर-धोरणि सन्धइ । जाम ण तोणा-जुअलु णिवन्धइ ॥४॥
जाव ण वियड-उरत्थलु भिन्दइ । जाव ण वाहुदण्ड तउ छिन्दइ ॥५॥
सरवरेँ हसु जेम दल-चिमलइँ । जाव ण तोडइ दस-सिर-कमलइँ ॥६॥

नहीं छोड़ती, जो सुर और असुरोंके मनको प्रिय है, और जो तुम जैसी खोटी स्त्रियोंके लिए दुर्लभ है। वह मनुष्योंमे सिंह है जो धनुषकी पूँछसे अपनी लीला दिखाता है, बाणरूपी अरुणनखोंसे सहित, धनुषकी चपल जीभवाला रामरूपी सिंह रावणरूपी मद-गजको अवश्य विदीर्ण करेगा" ॥१-९॥

[१४] राम तथा रावणकी पत्नियाँ (सीता और मन्दोदरी) मे इस तरह बातें हो रही थीं कि इतनेमे दशानन ऐसा आ धमका मानो गङ्गा नदीके तटपर हाथी आ गया हो या जानकीके मुखरूपी कमलका लम्पट गन्धलुब्ध भ्रमर ही व्याकुल हो उठा हो। हाथ बजाता, ध्वनि करता और कुछ बुदबुदाता और क्रीड़ा करके पुकारता हुआ वह बोला—"देवी, परमेश्वरी! मुझपर कृपा करो, मैं किसी बातमे हीन हूँ क्या? सौभाग्य या भोगमे हीन हूँ क्या? या अर्थ हीन हूँ? क्या सौन्दर्य या रङ्गमे कम हूँ, क्या सम्मान, दान, युद्ध की दृष्टिसे हीन हूँ, कहो किस कारणसे तुम मुझे नहीं चाहती? और जिससे तुम महादेवीके पदकी भी इच्छा नही करती।" तब राघवकी गृहिणी सीताने रावणकी भर्त्सना करते हुए कहा—"रावण मेरे सामनेसे हट, तू मुझे पिताके बराबर है" ॥१-९॥

[१५] जानकर भी तुम मुझपर मोहित हो रहे हो, परस्त्री ग्रहण करके कैसे शुद्ध होओगे, इसलिए जब तक तुम्हारी अकीर्तिका डंका नहीं पिटता, जब तक लंका नगरी नहीं ध्वस्त होती, जब तक लक्ष्मण रूपी सिंह क्रुद्ध नहीं होता, जब तक रामरूपी कृतान्त इसे नही जान पाते, जब तक वह तीरोंकी धाराका संधान नहीं करते, जब तक दोनो तरकस नहीं बाँधते, जब तक तुम्हारा विकट उरस्थल नहीं भेदते, जब तक तुम्हारा बाहुदण्ड छिन्न-भिन्न नहीं करते, जब तक सरोवरमे हंसकी तरह दलमल नहीं करते, जब

जाम ण गिद्ध-पन्ति णिव्वट्टइ । जाम ण णिसियर-वलु आवट्टइ ॥७॥
जाम ण दरिसावइ धय-चिन्धइँ । जाम ण रणेँ णच्चन्ति कवन्धइँ ॥८॥

घत्ता

जाम ण आहयणेँ कप्पिज्जहि वर-णारायहिँ ।
ताव णराहिवइ पडु राहवचन्दहोँ पायहिँ ॥९॥

[१६]

त णिसुणेँवि आरुट्ठु दसाणणु । ण घणेँ गज्जमाणेँ पञ्चाणणु ॥१॥
कोवाणल-पलित्तु लङ्केसरु । चिन्तइ विज्जाहर-परमेसरु ॥२॥
'किं जम-सासण-पन्थेँ लायमि । किं उवसग्गु कि पि दरिसावमि ॥३॥
अवसेँ भव-वसेण इच्छेसइ । महु मयणग्गि समुल्हावेसइ' ॥४॥
तहिँ अवसरेँ स-तुरङ्गु स-रहवरु । गउ अत्थवणहोँ ताम दिवायरु ॥५॥
आय रत्ति णाणाविह-रूवेँहिँ । अट्टहास मेल्लन्तेँहिँ भूएँहिँ ॥६॥
खर-खाणउल- विराल-सियालेँहिँ । वहु-चामुण्ड - रुण्ड - वेयालेँहिँ ॥७॥
रक्खस-सीह-वग्घ गय - गण्डेँहिँ । मेस-महिस-वस-तुरय-णिसण्डेँहिँ ॥८॥
त उवसग्गु णिएवि भयावणु । तो वि ण सीयहेँ सरणु दसाणणु ॥९॥
घोरु रउद्दु झाणु सचूरेँवि । थिय मणेँ धम्म-झाणु आऊरेँवि ॥१०॥

घत्ता

'जाव ण णीसरिय उवसग्ग-भयहोँ गम्भीरहोँ ।
ताव णिवित्ति महु चउविह-आहार-सरीरहोँ ॥११॥

[१७]

पहय पओस पणासेँवि णिग्गय । हत्थि-हड व्व सूर-पहराहय ॥१॥
णिसियरि व्व गय वोणावक्किय । भग्ग-मडप्फर माण-कलङ्किय ॥२॥
सूर-भएण णाइँ रणु मेल्लेँवि । पइसइ णयरु कवाडइँ पेल्लेँवि ॥३॥

तक तुम्हारा दस मुखरूपी कमल नहीं तोड़ते, जब तक गीधोंकी पाँत नहीं झपटती, जब तक निशाचर-सेना नहीं मथी जाती, जब तक उनके ध्वजचिह्न नहीं दीख पड़ते, जब तक युद्ध-स्थलमें कबन्ध नहीं नाचते, जब तक तुम युद्धमें बाणोंसे नहीं काटे जाते तब तक, हे राजन्! तुम रामके पैरोंमें पड़ जाओ" ॥१-६॥

[१६] यह सुनकर रावण कुपित हो उठा, वैसे ही जैसे मेघ गरजने पर सिंह गरज उठता है। कोपकी ज्वालासे प्रदीप्त होकर, विद्याधरोंका राजा और लंकाधिपति रावण सोचने लगा— "क्या इसे यमके शासन पथपर भेज दूँ, या किसी घोर उपसर्गका प्रदर्शन करूँ, अवश्य ही यह उस समय मुझे चाहने लगेगी और मेरी कामज्वालाका शमन करेगी।" ठीक उसी समय रथ और अश्वोंके साथ, सूर्यका अस्त हो गया। नाना रूपोंसे रात आ पहुँची, भूत अट्टहास करने लगे, खर (गधा) श्वानकुल, शृगाल, चामुण्ड, रुण्ड, बेताल, राक्षस, सिंह, गज, मेड़ा, मेष, महिष, बैल, तुरग और निसुण्डोंसे उपसर्ग होने लगा। उस भयङ्कर उपसर्गको देखकर भी रावणको सीताकी शरण नहीं मिली। घोर रौद्र ध्यानको दूरकर, वह धर्मध्यानकी अवधारणाकर अपने मनमें लीन होकर बैठ गई। और उसने यह नियम ले लिया कि जब तक मैं गम्भीर उपसर्ग-भयसे मुक्त नहीं होती तब तक चार प्रकारके आहारसे मेरी निवृत्ति है ॥१-११॥

[१७] रातका प्रहर नष्ट होकर वैसे ही चला गया जैसे शूरवीरके प्रहारसे आहत होकर गजघटा चली जाती है, रात, मन्त्रोंसे ताड़ित, भग्न अहङ्कार, और मान कलङ्कित करनेवाली निशाचरीकी तरह चली गई। सूरके भयसे मानो वह रण छोड़कर किवाड़ोंको धक्का देकर नगरमें प्रवेश कर रही थी। शयन-स्थानसे

दीवा पज्जलन्ति जे सयणेँहिँ । ण णिसि वलेँवि णिहालइ णयणेँहिँ ॥४॥
उट्ठिउ रवि अरविन्दाणन्दउ । ण महि-कामिणि-केरउ अन्दउ ॥५॥
ण सञ्झाएँ तिलउ दरिसाविउ । ण सुकइहेँ जस-पुञ्जु पहाविउ ॥६॥
ण मम्भीस देन्तु वल-पत्तिहेँ । पच्छलेँ णाइँ पधाइउ रत्तिहेँ ॥७॥
ण जग-भवणहोँ वोहिउ दीवउ । णाइँ पुणु वि पुणु सो ज्जे पडीवउ ॥८॥

घत्ता

तिहुअण-रक्खसहोँ दारेँवि दिसि-वहु-मुह-कन्दरु ।
उवरेँ पईसरेँवि णं सीय गवेसइ दिणयरु ॥९॥

[१८]

रयणिहेँ तिमिर-णियर-रएँ भग्गएँ । णिव रावणहोँ आय ओलग्गएँ ॥१॥
मय - मारिच्च - विहीसण - राणा । अवरेँ वि भुवणेक्केक्क-पहाणा ॥२॥
खर-दूसण-सोएण णयाणण । ण णिक्केसर वर पञ्चाणण ॥३॥
णिय-णिय-आसणेहिँ थिय अविचल । भग्ग-विसाण णाइँ वर मयगल ॥४॥
मन्ति-महल्लएहिँ एत्थन्तरेँ । णिसुणिय सीय रुअन्ति पडन्तरेँ ॥५॥
भणइ विहीसणु 'एँहु को रोवइ । वारवार अप्पाणउ .सोअइ ॥६॥
णावइ पर-कलत्तु विच्छोइउ' । पुणु दहवयणहोँ वयणु पजोइउ ॥७॥
'मञ्छुडु एउ कम्मु तुह केरउ । अण्णहोँ कासु चित्तु विवरेरउ' ॥८॥
णिसुणेवि सीय आसासिय । कलयण्ठि व पिय-वयणेँहिँ भासिय ॥९॥
एहु दुज्जणहोँ मज्झेँ को सज्जणु । णिम्बे-वणहोँ अब्भन्तरेँ चन्दणु ॥१०॥

घत्ता

विहुरेँ समावडिएँ एँहु को साहम्मिय-वच्छलु ।
जो महँ धीरवइ एवड्डु कासु स इँ भु व-वलु' ॥११॥

जो दीप जल रहे थे मानो रात उनके बहाने अपने नेत्रोंको मोड़कर देख रही थी, अरविन्दोंको आनन्द देनेवाला रवि उदित हो गया। वह मानो धरतीरूपी कामिनीका दर्पण था, या मानो संन्ध्याका तिलक था, या मानो कवि यशःपुञ्ज चमक रहा था, या मानो रामकी पत्नी सीतादेवीको अभय देता हुआ रातके पीछे दौड़ा हो। या विश्व-भुवन दीपक जला दिया गया हो। और बार-बार वही लौट आ रहा हो। त्रिभुवनरूपी निशाचरकी दिशा-वधूके मुख-कन्दराको फाड़कर और ऊपर आकर मानो सूर्य सीता देवीको खो रहा था ॥१-६॥

[१८] रातके अन्धकार-पटलकी धूल भग्न होनेपर राजा लोग रावणकी सेवामे उपस्थित हुए। उनमे मय, मारीच, विभीषण तथा और भी दूसरे प्रधान राजा थे। खर और दूषणके शोकमे उनके मुख ऐसे आनत थे जैसे बिना अयालके सिंह हों। सभी अपने अपने आसनपर अविचल भावसे बैठे थे मानो भग्नदन्त गज हो। मन्त्रियों और सभ्यजनोंने इसी समय पर्देके भीतर रोती हुई सीता देवीकी आवाज सुनी। तब विभीषणने कहा—"यह कौन रो रही है? कौन यह वार-वार अपनेको सन्तप्त कर रही है। कही यह कोई वियोगिनी स्त्री न हो?" फिर उसने रावणके मुखको लक्ष्य करके कहा, "शायद यह तुम्हारा काल तो नही है। क्योंकि दुनियामे तुम्हे छोड़कर और किसका चित्त विपरीत हो सकता है।" यह सुनकर सीता देवी आश्वस्त हो उठीं और उन्होंने अपने कोकिल की तरह मधुर स्वरमे कहा—"अरे दुर्जनोंके बीचमे यह सज्जन कौन है वैसे ही जैसे नीमके वनमे चन्दनका वृक्ष? घोर संकटमें यह कौन मेरा साधर्मी जन है कि जो इस प्रकार मुझे धीरज बँधा रहा है। किसका इतना प्रबल बाहुबल है?" ॥१-११॥

[४२. वायालीसमो संधि]

पुणु वि विहीसणेंण दुव्वयणेंहिँ रावणु दोच्छइ ।
तेत्थु पडन्तरेंण आसण्णउ होएँवि पुच्छइ ॥

[१]

'अक्खहि सुन्दरि वत्त णिभन्ती । कहिँ आणिय तुहुँ एत्थु रुवन्ती ॥१॥
कासु धीय कहि को तुम्हहँ पइ' । अक्ख वहन्तु विहीसणु जम्पइ ॥२॥
'कवणु ससुरु कहि को तुह देवरु । अत्थि पसिद्धउ को तुह भायरु ॥३॥
सप्परियण कहि तुहुँ एक्कल्ली । अक्खहि केम वणन्तरेँ भुल्ली ॥४॥
कें कज्जेंण वणवासु पइट्ठी । चक्केसरेंण केम तुहुँ दिट्ठी ॥५॥
कि माणुसि कि खेयर-णन्दिणी । कि कुसील किं सीलहों भायणि ॥६॥
अण्णु वि कवणु तुम्ह देसन्तरु । कहहि वियारेंवि णियय-कहन्तरु' ॥७॥
एम विहीसण-वयणु सुणेविणु । लग्ग कहेव्वएँ जिम णिसुणइ जणु ॥८॥

घत्ता

'अह कि वहुएण लहुअ वहिणि भामण्डलहों ।
हउँ सीयाएवि जणयहों सुअ गेहिणि वलहों ॥९॥

[२]

वन्धेंवि राय-पट्टु भरहेसहों । तिण्णि वि सचलिय वणवासहों ॥१॥
सीहोयरहों मडप्फरु भज्जेंवि । दसउर-णाहहों णिय-मणु रञ्जेंवि ॥२॥
पुणु कल्लाणमाल मम्भीसेंवि । णम्मय मेल्लेंवि विञ्झु पईसेवि ॥३॥
रुद्दभुत्ति णिय-चलणेंहिँ पाडेंवि । वालिखिल्लु णिय-णयरहों धाडेंवि ॥४॥
रामउरिहिँ चउ मास वसेप्पिणु । धरणीधरहों धीय परिणेप्पिणु ॥५॥
फेडेंवि अइवीरहों वीरत्तणु । पइसरेवि खेमञ्जलि-पट्टणु ॥६॥
तेत्थु वि पञ्च पडिच्छेंवि सत्तिउ । सत्तुदवणु मसि-वण्णु पवित्तिउ ॥७॥

बयालीसवीं सन्धि

बार-बार विभीषणने रावणकी खोटे शब्दोंमें निन्दा की। उसने पटकी ओटमें बैठी हुई सीता देवीसे पूछा।

[१] "हे सुन्दरी ! तुम अपनी बात निर्भ्रान्त होकर कहो। रोती हुई तुम्हें यह (दशानन) किस प्रकार ले आया। तुम किसकी कन्या हो, और तुम्हारा पति कौन है ?" चिंतित होकर, विभीषणने पुनः कहा, "तुम्हारा ससुर कौन है, और कौन तुम्हारा देवर है ? तुम्हारा सुप्रसिद्ध भ्राता कौन है, तुम्हारे कोई कुटुम्बीजन है, या तुम अकेली हो ? बताओ इस वनमें तुम भूल कैसे पड़ों ? किस कारणसे तुम्हें वनवासके लिए आना पड़ा। चक्राधिपति रावणने तुम्हें किस प्रकार देख लिया ? तुम मनुष्यनी हो या खेचरपुत्री कुशीला हो या शीलकी पात्र हो ? तुम्हारा देशान्तर कौन-सा है ? अपनी कहानी जरा विस्तारसे कहो।" विभीषणके इन वचनोंको सुनकर सीतादेवीने उत्तरमें कहा, "(और विभीषण शान्तिसे सुनता रहा) बहुत कहनेसे क्या मैं भामण्डलकी बहन सीता देवी हूँ। जनककी पुत्री, और रामकी पत्नी ॥१-६॥

[२] भरतेश्वर भरतको राज्यपट्ट बाँधकर हम तीनों वनवासके लिए निकल पड़े थे। सिंहोदरका मान नष्ट कर, दशपुर-नाथके मनका अनुरंजन कर, कल्याणमालाको अभयदान देकर रेवा नदीको छोड़कर हम लोगोंने—विन्ध्याटवीमें प्रवेश किया। वहाँपर रुद्रभूतिको अपने पैरोंमें झुकाकर, बालिखिल्यको उसके अपने नगरमें पुनः प्रतिष्ठित किया। रामपुरीमें चार माह रहकर राजा धरणीधरकी कन्यासे पाणिग्रहण कर, अतिवीर्यकी वीरताको खण्डितकर वह क्षेमंजलि नगरमें पहुँचे। वहाँ भी पाँच शक्तियोंको

घत्ता

हरि-सीय-वलाइँ आयइँ सज्जइँ आइयइँ ।
ण मत्त-गयाइँ दण्डारण्णु पराइयइँ ॥६॥

[३]

तहिँ मि कालेँ मुणि-गुत्त-सुगुत्तहँ । सजम - णियम - धम्म-सजुत्तहँ ॥१॥
वर्णे आहार-दाणु दरिसावेँवि । सुरवर-रयण-वरिसु वरिसावेँवि ॥२॥
पक्खिहेँ पक्ख सुवण्ण समारेँवि । सम्वुकुमारु वीरु संघारेँवि ॥३॥
अच्छहुँ जाव तेत्थु वण-कीलएँ । एक्क कुमारि आय णीय-लीलएँ ॥४॥
पासु वढुक्किय करिणि व करिणहोँ । पुणु णिल्लज्ज भणइ "मइँ परिणहोँ" ।५।
वल-णारायणेहिँ उवलक्खिय । पुणु थोवन्तरेँ जाय विलक्खिय ॥६॥
गय खर-दूसणाहुँ कूवारेँहिँ । भिडिय ते वि सहुँ समरेँ कुमारेँहिँ ॥७॥

घत्ता

किं मुक्कु ण मुक्कु सीह-णाउ रणेँ लक्खणेँण ।
त सद्दु सुणेवि रामु पधाइउ तक्खणेण ॥८॥

[४]

गउ लक्खणहोँ गवेसउ जावँहिँ । हउँ अवहरिय णिसिन्देँ तावँहिँ ॥१॥
अज्जु वि जण-मण-णयणाणन्दहोँ । पासु णेहु मइँ राहवचन्दहोँ' ॥२॥
लइउ णाउँ ज दसरह-जणयहुँ । हरि-हलहर - भामण्डल-तणयहुँ ॥३॥
चित्तु विहीसण-रायहोँ डोल्लिउ । 'तुम्हेँहिँ सुयउ सुयउ ज वोल्लिउ ॥४॥
ते हउँ भाउ आसि विणिवाएँवि । णवर जियन्ति भन्ति उप्पाएँवि ॥५॥

पराजितकर, अरिदमन राजाका मुख कालाकर, उसकी कन्याका पाणिग्रहण किया। फिर वहाँसे (चलकर) उन्होने दो मुनियोंका उपसर्ग दूर किया। उसके बाद राम, लक्ष्मण और सीता देवी, यहाँ इस साज से आये मानो मत्तगजने ही दण्डकारण्यमे प्रवेश किया हो ॥१-६॥

[३] वहाँ उस समय संयम, नियम और धर्मसे युक्त मुनिवर गुप्त और सुगुप्तको वनमे हमने आहार दिया। जिससे सुरवरोंने रत्नोकी वर्षा की। पक्षिराज जटायुके पंख सोनेके हो गये। फिर लक्ष्मणने वीर शम्बुक कुमारको मारा। इस प्रकार जब हम वनमे क्रीड़ा कर रहे थे। तभी लीलापूर्वक एक कुमारी वहाँ आई। वह राम लक्ष्मणके पास उसी प्रकार पहुँची जिस प्रकार हथिनी हाथीके पास पहुँचती है। निर्लज्ज वह बोली कि मुझसे विवाह कर लो। फिर राम-लक्ष्मणसे तिरस्कृत होकर, वह थोड़ी दूर पर जाकर अत्यन्त विद्रूप हो उठी। क्रन्दन करती हुई वह खर-दूषणके पास पहुँची। वे भी राम-लक्ष्मणसे युद्ध करने आये थे। युद्धमे चाहे लक्ष्मणने सिंहनाद किया हो या नहीं, किन्तु उस शब्दको सुनकर राम तत्काल दौड़े ॥१-८॥

[४] जब तक वह लक्ष्मणकी खोज-खबरके लिए गये कि इतनेमे निशाचर रावणने मेरा अपहरण कर लिया। आज भी मेरा प्रेम जनोके मन और नेत्रोको आनन्द देने वाले रामचन्द्रके प्रति है।" इस प्रकार जब सीता देवीने दशरथ पुत्र राम, लक्ष्मण और भामण्डलका नाम लिया तो राजा विभीषणका चित्त जल उठा। उसने कहा, "रावण, तुमने सुना है क्या? जो कुछ इसने कहा। अरे, मैं तो उन दोनो (दशरथ और जनक) को मारकर आया था। मुझे बड़ी भारी भ्रान्ति है। क्या वे दोनो जीवित हैं। तो

दुक्कु पमेगणहों मुणिवर-भासिउ । जिह "खउ लक्खण-रामहों पासिउ ॥६॥
एय वि करहि महारउ वुत्तउ । उत्तिम-पुरिसहुँ एउ ण जुत्तउ ॥७॥
एक्कु विणासु अण्णु लज्जिज्जइ । धिद्धिक्कारु लोएँ पाविज्जइ ॥८॥

घत्ता

णिय-कित्तिहेँ राय सायर-रसण-खलन्तियहेँ ।
मं भञ्जहि पाय तिहुयणेँ परिसक्कन्तियहेँ ॥९॥

[५]

रावण जे रमन्ति परदारइँ । दुक्खइँ ते पावन्ति अपारइँ ॥१॥
जहिँ ते सत्त णरय भय-भीसण । हसहसहसहसन्त स-हुवासण ॥२॥
हुहुहुहुहुहुहुहन्त स-उपद्दव । सिमिसिमिसिमिसिमन्त-किमि-कद्दम ॥३॥
रयणि-सकर - वालुय - पङ्क-प्पह । धूमप्पह - तमपह - तमतमपह ॥४॥
तहिँ असरालु कालु अच्छेवउ । पहिलएँ उवहि-पमाणु जिवेवउ ॥५॥
तिण्णि सत्त वीसद्ध रउद्दइँ । सत्तारह वावीस समुद्दइँ ॥६॥
पुणु तेतीस-जलहि-परिमाणइँ । जहिँ दुक्खइँ गिरि-मेरु-समाणइँ ॥७॥
जो पुणु णरउ णिगोउ सुणिज्जइ । मेइणि जाव ताव तहिँ छिज्जइ ॥८॥
तें कज्जें पर-दारु ण रम्मइ । त किज्जइ ज सुगइहिँ गम्मइ' ॥९॥

घत्ता

आरुट्ठु दसासु 'कि पर-दारहों एह किय ।
तिहुँ खण्डहुँ मज्झें अक्खु पराइय कवण तिय' ॥१०॥

[६]

तो अवहेरि करेवि विहसिएँ । चडिउ महग्गएँ तिजगविहूसणेँ ॥१॥
सीय वि पुप्फ-विमाणेँ चडाविय । पट्टणेँ हट्ट-सोह दरिसाविय ॥२॥
सचल्लउ णिय-मण-परिओसें । झल्लरि - पडह - तूर - णिग्घोसें ॥३॥
'सुन्दरि पेक्खु महारउ पट्टणु । वरुण - कुवेर - वीर - दलवट्टणु ॥४॥
सुन्दरि पेक्खु पेक्खु चउ-वारइँ । ण कामिणि-वयणइँ स-वियारइँ ॥५॥

फिर मुनिवरका कहा सच होना चाहता है। अब तुम्हारा राम-लक्ष्मण-से विनाश होगा। अब भी तुम मेरा कहना मानो। उत्तम पुरुषके लिए यह उचित नहीं है। एक तो विनाश और दूसरे लोक-लाज। फिर दुनिया थू थू करेगी। हे राजन्, तीनों लोकोंमे व्याप्त समुद्रके स्वरसे स्खलित अपनी कीर्तिको नष्ट मत करो। उसकी रक्षा करो ॥१–६॥

[५] रावण, जो परस्त्री-रमण करते हैं वे अपार दुख प्राप्त करते है। आग-सहित हस-हस करते हुए जो सात भयङ्कर नरक है उनमे उपद्रव और हूहू शब्द होते रहते है। सिम-सिमाती कृमि और कीचड़से वे सराबोर है। उनके नाम हैं। रत्न शर्करा, बालुका, पङ्कप्रभा, धूमप्रभा, तमप्रभा और तमतमप्रभ। उनमे तुम अनन्त काल तक रहोगे। पहले नरकमे एक सागरप्रमाण तक, उसके बाद फिर तीन, सात, दस, ग्यारह, सत्तरह और बाईस सागरप्रमाण समय दूसरे-दूसरे नरकोंमे रहना पड़ेगा। उसके अनन्तर तेतीस सागरप्रमाण काल तक वहाँ रहोगे जहाँ सुमेरु पर्वत बराबर बड़े-बड़े दुख हैं। फिर निगोद सुना जाता है उसमे भी तुम तब तक सड़ते रहोगे कि जब तक यह धरती है। इसलिए पर-स्त्रीका रमण करना ठीक नहीं। ऐसा काम करो जिससे देवगति प्राप्त हो। यह सुनकर रावणने क्रुद्ध हो कहा—"क्या परस्त्रीमे यह कृत्य है? अरे, तीनों लोकोंमे किसी स्त्रीने इन्द्रियोंको पराजित किया ॥१–१०॥

[६] तब विभीषणकी उपेक्षा करके रावण अपने त्रिजग-भूषण हाथीपर चढ़ गया और सीता देवीको पुष्पक विमानमे बैठा-कर नगरमे बाजारकी शोभा दिखानेके लिए ले गया। झल्लरी, पटह और तूर्यके निर्घोषसे अपने मनमे सन्तुष्ट होकर वह निकला। उसने सीता देवीसे कहा—"देवी! मेरा नगर देखो, वह वरुण और कुबेर जैसोको धूलमे मिलानेवाला है। सुन्दरी, देखो-देखो ये चार

सुन्दरि पेक्खु पेक्खु धय-छत्तइँ । पप्फुल्लियइँ णाइँ सयवत्तइँ ॥६॥
सुन्दरि पेक्खु महारउ राउलु । हीर-गहणु मणि-खम्भ-रमाउलु ॥७॥
सुन्दरि करहि महारउ वुत्तउ । लइ चूडउ कण्ठउ कडिसुत्तउ ॥८॥
सुन्दरि करि पसाउ लइ चेलिउ । वीणउ लाडु घोडु हरिकेलिउ ॥९॥

घत्ता

महु जीविउ देहि वोल्लहि वयणु सुहावणउ ।
चडु गयवर-खन्धें लइ महएवि-पसाहणउ' ॥१०॥

[७]

सम्पइ दक्खवन्तु इय सेज्जएँ । दोच्छिउ रावणु राहव-भज्जएँ ॥१॥
'केत्तिउ णियय-रिद्धि महु दावहि । अप्पउ जणहोँ मज्झें दरिसावहि ॥२॥
एउ ज रावण रज्जु तुहारउ । त महु तिण-समाणु हलुआरउ ॥३॥
एउ ज पट्टणु सोमु सुदसणु । त महु मणहोँ णाइँ जमसासणु ॥४॥
एउ ज राउलु णयण-सुहङ्करु । त महु णाइँ मसाणु भयङ्करु ॥५॥
एउ ज दावहि खणें जोव्वणु । त महु मणहोँ णाइँ विस-भोयणु ॥६॥
एउ ज कण्ठउ कडउ स-मेहलु । सील-विहूणहँ त मलु केवलु ॥७॥
रहवर-तुरय-गइन्द-सयाइ मि । आयहिँ मसु पुणु गण्णु ण काइ मि ॥८॥

घत्ता

सग्गेण विं काइँ जहिँ चारित्तहोँ खण्डणउ ।
कि समलहणेण महु पुणु सीलु जेँ मण्डणउ' ॥९॥

[८]

जिह जिह चिन्तिय आस ण पूरइ । तिह तिह रावणु हियएँ विसूरइ ॥१॥
'विहि तेत्तडउ देइ ज विहियउ । कि वढ जाइ णिलाडएँ लिहियउ ॥२॥
हउँ कम्मेण वेण सखोहिउ । जाणन्तो वि तो वि ज मोहिउ ॥३॥
धिधि अहिलसिय कुणारि विलीणी । वुण्ण-कुरङ्गि जेम मुह-दीणी ॥४॥

द्वार हैं। जो विकार-पूर्ण कामिनियोंके मुखोंके समान लगते है। सुन्दरी, देखो-देखो ये ध्वज और छत्र है। मानो कमल ही खिल उठे हों। सुन्दरी! देखो-देखो, हीरोंसे गम्भीर और मणियोंके खम्भों से सुन्दर यह मेरा राजकुल है। सुन्दरी, तुम मेरा कहना भर कर दो। और लो यह चूड़ामणि कण्ठा और कटक-सूत्र। सुन्दर चीनी वस्त्र, ताड़, अश्व और हरिकेल लेकर मुझपर प्रसाद करो। मुझे जीवन दो। मीठे शब्द बोलो। इस महागजपर आरूढ़ होकर महादेवीका प्रसाधन अङ्गीकार करो ॥१–१०॥

[७] इसपर राघवकी पत्नी आदरणीया सीतादेवीने भर्त्सना करते हुए रावणको उत्तर दिया—"अरे, मुझे कितनी अपनी ऋद्धि दिखाता है, अपने लोगोंको ही दिखा। यह जो तुम्हारा राज्य है, वह मेरे लिए तिनकेकी तरह तुच्छ है, चन्द्रमाकी तरह सुन्दर जो यह नगर है वह मेरे लिए मानो यमशासनकी तरह है। नयन-शुभङ्कर तुम्हारा यह राजकुल, मेरे लिए भयङ्कर श्मशानकी तरह है। और जो तुम बार-बार अपने यौवनका प्रदर्शन कर रहे हो, वह मेरे लिए विष-भोजनकी तरह है। और जो यह मेखला-सहित कण्ठा और कटक हैं, शीलविभूषिताके लिए केवल मल है। सैकड़ों रथवर तुरग और गज भी जो है उन्हें मैं कुछ भी नही गिनती। उस स्वर्णसे भी क्या जहाँ चारित्र्यका खण्डन हो, यदि मैं शीलसे विभूपित हूँ तो मुझे और क्या चाहिए" ॥१–६॥

[८] जैसे-जैसे अचिन्तित आशा पूरी नही होती वैसे-वैसे रावण मनमे दुखी होने लगा। विधाता उतना ही देता है जितना भाग्यमे होता है, जो ललाटमे लिखा है, उससे क्या बढ़ती होता है, मैं किस कर्मके उदयसे इतना पतित बना, जो जानते हुए भी इसपर मोहित हुआ। मुझे धिक्कार है कि जो मैने विपन्न हिरनीकी

आयहिँ पीसिउ जाउ सु-वेसउ । महु वरें अत्थि अणेयउ वेमउ' ॥५॥
एव विचित्तु चित्तु साहारेंवि । दुक्खु दुक्खु मण पसरु णिवारेंवि ॥६॥
सीयएँ समउ खेड्डु आमेल्लेंवि । त गिव्वाणरमणु वणु मेल्लेंवि ॥७॥
णरवर-विन्देंहिं परिमिउ दहमुहु । सचल्लिउ णिय-णयरिहेँ अहिमुहु ॥८॥

घत्ता

गिरि दिट्ठु तिकूडु जण-मण-णयण-सुहावणउ ।
रवि-डिम्भहों दिण्णु ण महि-कुलवहुअएँ थणउ ॥९॥

[९]

ण धरु धरहेँ गब्भु णीसरियउ । सत्तहिँ उववणेहिँ परियरियउ ॥१॥
पहिलउ वणु णामेण पइण्णउ । सज्जण-हियउ जेम वित्थिण्णउ ॥२॥
बीयउ जण-मण-णयणाणन्दणु । णावइ जिणवर-बिम्बु स-चन्दणु ॥३॥
तइयउ वणु सुहसेउ सुहावउ । जिणवर-सासणु णाइँ स-भावउ ॥४॥
चउथउ वणु णामेण समुच्चउ । वग-वलाय - कारण्ड - सकोञ्चउ ॥५॥
चारण-वणु पञ्चमउ रवण्णउ । चम्पय - तिलय-वउल - सछण्णउ ॥६॥
छट्ठउ वणु णामेण णिवोहउ । महुअर-रुणुरुण्टन्तु सुसोहउ ॥७॥
सत्तमु वणु सीयलु सच्छायउ । पमउज्जाणु णाम-विक्खायउ ॥८॥

घत्ता

तहिँ गिरिवर-पट्टेँ सोहइ लङ्काणयरि किह ।
थिय गयवर-खन्धेँ गहिय-पसाहण वहुअ जिह ॥९॥

[१०]

घत्ता

ताव तेत्थु णिज्झाइय वावि असोय-मालिणी ।
हेमवण्ण स-पओहर मणहर णाइँ कामिणी ॥१॥

तरह दीन मुखवाली विलाप करनेवाली कुमारीकी अभिलाषा को। इसके पास जो सुन्दर रूप है, मेरे घर तो उससे भी सुन्दर अनेक रूप हैं ? इस प्रकार अपने विचित्र-चित्तको सहारा देकर और बड़े कष्टसे मनके प्रसारको रोककर, सीताके साथ क्रीड़ाका त्यागकर उसे उसने नन्दन वनमें छोड़ दिया। और श्रेष्ठ पुरुषोंसे घिरा हुआ वह अपनी नगरीकी ओर चला। मार्गमें उसे जनोंके मन और नेत्रोंको सुहावना लगनेवाला त्रिकूट नामक पहाड़ ऐसा दीख पड़ा, मानो सूर्यरूपी बालकके लिए धरतीरूपी कुलवधूने अपना रतन दे दिया हो ॥१–६॥

[६] या मानो धराका गर्भ (अन्तर) ही निकल आया हो। वह सात उपवनोंसे घिरा हुआ था। उसमेंसे पहले 'पइण्ण' वन सज्जनके हृदयकी तरह विस्तीर्ण जन-मन-नयनप्रिय, दूसरा उपवन, जिनके बिम्बकी तरह चन्दन (पेड़ और चन्दन) से सहित था, सुहावना तीसरा सुहसंत ? वन जिनवर-शासनकी तरह, सावय (श्रावक और वृक्षविशेष) से सहित। चौथा समुच्चय नामका वन बलाका, कारंडव और क्रौंच पक्षियोंसे भरा हुआ था। पाँचवाँ सुन्दर चारण वन था, छठा निबोधित नामक वन सुन्दर और भौंरोंसे गुञ्जित था और सातवाँ प्रसिद्ध प्रमद वन था जो सुन्दर छाया सहित और शीतल था। गिरिवरकी पीठपर लंका नगरी ऐसी शोभित हो रही थी मानो महागजकी पीठपर नई दुलहिन ही खूब सज-धजकर बैठी हो ॥१–६॥

[१०] वहीं पर उसे अशोकमालिनी नामकी सुन्दर वापिका दिखाई दी जो कामिनी की तरह, सुनहरे रङ्गकी, पयोधर (स्तन

चउ-दुवार-चउ-गोउर - चउ-तोरण - रवण्णिया ।
चम्पय - तिलय-वउल-णारङ्ग- लवङ्ग - छण्णिया ॥२॥
तहिँ पएसेँ वइदेहि ठवेप्पिणु गउ दसाणणो ।
झिज्जमाणु विरहेण विसंथुलु विमणु दुम्मणो ॥३॥
मयण-वाण-जज्जरियउ जरिउ दुवार-वारओ ।
दूइआउ आवन्ति जन्ति सयवार-चारओ ॥४॥
वयणएहिँ खर-महुरेँहिँ मुहु सूसइ विसूरए ।
छोहेँ छोहेँ णिवडन्तएँ जूआरो व्व जूरए ॥५॥
सिरु धुणेइ कर मोडइ अङ्गु वलेइ कम्पए ।
अहरु लेवि णिज्झायइ कामसरेण जम्पए ॥६॥
गाइ वाइ उव्वेल्लइ हरिस-विसाय दावए ।
वारवार मुच्छिज्जइ मरणावत्थ पावए ॥७॥
चन्दणेण सिञ्चिज्जइ चन्दण-लेउ दिज्जए ।
चामरेहिँ विजिज्जइ तो वि मणेण झिज्जए ॥८॥

घत्ता

किं रावणु एक्कु जो जो गरुअइँ गज्जियउ ।
जिण-धवलु मुएवि कामें को ण परज्जियउ ॥९॥

[११]

थिएँ दसाणणेँ विरह-भिम्भले । जाय चिन्त वर-मन्ति-मण्डले ॥१॥
'एत्थु मल्लु को कुइएँ लक्खणे । सिद्धु जासु असि-रयणु तक्खणे ॥२॥
णिहउ सम्वु जें दूसणो खरो । होइ कु-इ ण सावण्णु सो णरो' ॥३॥
भणइ मन्ति सहसमइ-णामेँण । 'कवणु गहणु एक्केण रामेँण ॥४॥
लक्खणेण सह साहणेण वा । रह-तुरङ्ग-गय-वाहणेण वा ॥५॥
दुत्तरे दुसञ्चार-सायरे । कहिँ पएसु विच्चीं-भयङ्करे ॥६॥

और जल) से सहित थी। चार द्वार, चार गोपुर और तोरणोंसे रमणीय थी। चम्पक, तिलक, मौलश्री, नारंगी और लवंगसे आच्छन्न उस प्रदेशमें सीताको छोड़कर रावण चला गया। विरहसे क्षीण और अस्त-व्यस्त, विमन दुर्मन, कामवाणोंसे जर्जर द्वार-पालकी तरह बूढ़ा वह रावण दूतीकुलकी तरह बार-बार आता और लौट जाता। कठोर और मधुर वचनोंसे उसका मुख सूख रहा था? क्षोभसे जुआरी की तरह गिरता पड़ता वह कभी अपना सिर धुनने लगता, कभी हाथ मरोड़ता, कभी अंग-अंग झुकाकर काँप उठता। कभी अधर पकड़कर चितामग्न हो जाता। कभी कामके स्वरमें बोल पड़ता। गाता बजाता हुआ, कभी-कभी हर्ष और विपादकी दीप्तिसे उद्वेलित हो उठता। बार-बार मूर्छित होकर वह मरणदशाको पहुँच गया। चंदनके (जल) सिचन और उसीके लेपसे तथा चामरोंसे हवा करनेसे वह मन ही मन छीज रहा था। क्या रावण अकेला ही पीड़ित हुआ? जिनको छोड़कर, कौन ऐसा है जो गर्वसे गरजता नहीं और कामसे पराभूत नही हुआ ॥१-६॥

[११] इस प्रकार रावणके विरहव्याकुल होने पर रावणके मंत्री-मंडलमें चिता व्याप्त हो गई। वे विचार करने लगे कि लक्ष्मणके क्रुद्ध होने पर, यहाँ कौन-सा वीर है। जिसे तत्काल सूर्यहास खड्ग सिद्ध हो गया। जिसने खरदूपण और कुमार शम्बूक की हत्या की, वह कोई साधारण मनुष्य नहीं है। इसपर सहस्र-मति नामके मंत्रीने कहा कि एक रामको पकड़नेकी क्या बात है। सेना, रथ, तुरंग, गज और वाहनों सहित लक्ष्मणको पकड़नेमें भी क्या रखा है। रावणकी सेना दुस्तर लहरोंसे भयंकर

रावणस्स पवलं वल महा । अत्थि वीर एक्केक्क दूसहा ॥७॥
किं मुएण दूसणेण सम्बुणा । सायरो किमोहु विन्दुणा' ॥८॥

घत्ता

त वयणु सुणेवि विहसेंवि पञ्चामुहु भणइ ।
'किं वुच्चइ एक्कु जो एक्कु जें सइसइँ हणइ ॥९॥

[१२]

अण्णुएँ णिसुअ वत्त मइँ एहिय । रावण-मन्दिरें णीसन्देहिय ॥१॥
जे जे णरवइ के-इ कइद्धय । जम्वव - णल - सुग्गीवङ्गङ्गय ॥२॥
समउ विराहिएण वण-सेवहुँ । मिलिया वासुएव-वलएवहुँ' ॥३॥
त णिसुणेवि दसाणण-भिच्चें । वुच्चइ पञ्चामुहु मारिच्चें ॥४॥
'एह अजुत्त वत्त पइँ अक्खिय । रावणु मुएँ वि ण अण्णहों पक्खिय ॥५॥
का वि अणङ्गकुसुम वलवन्तहों । दिण्णी खरेण धीय हणुवन्तहों ॥६॥
त किं माम-वइरु वीसरियउ । जें पडिवक्ख मिलइ भय-डरियउ' ॥७॥
तो एत्थन्तरे भणइ विहीसणु । 'केत्तिउ चवहु वयणु सुण्णासणु ॥८॥
एवहिँ सो उवाउ चिन्तिज्जइ । लङ्का-णाहु जेण रक्खिज्जइ' ॥९॥
एम भणेवि चउदिसु ताडिय । पुरें आसालिय विज्ज भमाडिय ॥१०॥

घत्ता

तियसहु मि दुलङ्घु दिढु माया-पायारु किउ ।
णीसङ्कु णिसिन्दु रज्जु स य भु ञ्जन्तु थिउ ॥११॥

अउज्झा कण्डं समत्तं !

●

आइच्चुएवि-पडिमोवमाएँ आइच्चम्विमाए (?) ।
वीअमउज्झा-कण्डं सयम्भु-घरिणीएँ लेहविय ॥

●

समुद्रसे भी प्रबल है। उसका एक-एक योधा असाध्य है। शम्बूकके घातसे क्या ? एक बूँद पानी सूख जानेसे समुद्रका क्या बिगड़ता है। यह सुनकर पंचमुखने हँसकर उत्तर दिया, "अरे, एक क्या कहते हो, अकेले ही वह हजारोंका काम तमाम कर देगा" ॥१-९॥

[१२] तब उसने और भी निवेदन किया, "दूसरोंके मुखसे मैंने यह सुना है कि जाम्बवंत, नल, सुग्रीव, अंग और अंगद प्रभृति जो कपिध्वज हैं, निसंदेह वे सब राजा विराधितके साथ, वनवासमें ही राम और लक्ष्मणसे जा मिले है"। यह सुनकर रावणके अनुचर मारीचने पंचमुखसे कहा, "उन्हें रावणके सिवा किसी दूसरेसे नहीं मिलना था। खरने अपनी कन्या अनंगकुसुम हनुमानको दी थी। क्या वह भी उसकी माताके शत्रुको भूल गया जो इस प्रकार डरकर प्रतिपक्षीसे जा मिला है"। तब बीचमें ही टोककर विभीषणने कहा—"खाली विचार करनेसे क्या लाभ, कोई उपाय सोचना चाहिए। जिससे लंकानरेश रावणको बचाया जा सके।" यह कहकर उसने आशाली विद्याको बुलाया और नगरके चारों ओर उसकी परिक्रमा दिलवा दी। इस प्रकार देवों द्वारा अलंघ्य दृढ माया प्राचीर बनवाकर निशाचरराज वह निश्शंक होकर राज्य करने लगा ॥१-११॥

अयोध्याकाण्ड समाप्त

आदित्य देवीकी प्रतिमासे उपमित स्वयंभू कविकी पत्नी आदित्य देवी द्वारा लिखित यह दूसरा अयोध्याकाण्ड समाप्त हुआ।

●

हमारे सुरुचिपूर्ण हिन्दी प्रकाशन

उर्दू शायरी

१.	शेर-ओ-शायरी	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
२	शेर-ओ सुखन [भाग १]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	८)
३.	शेर-ओ-सुखन [भाग २]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
४	शेर-ओ-सुखन [भाग ३]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
५	शेर-ओ-सुखन [भाग ४]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)
६	शेर-ओ-सुखन [भाग ५]	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	३)

कविता

७.	वर्द्धमान [महाकाव्य]	श्री अनूप शर्मा	६)
८	मिलन-यामिनी	श्री बच्चन	४)
९.	धूपके धान	श्री गिरिजाकुमार माथुर	३)
१०.	मेरे बापू	श्री हुकमचन्द्र बुखारिया	२॥)
११	पञ्च-प्रदीप	श्री शान्ति एम० ए०	२)

ऐतिहासिक

१२	खण्डहरोंका वैभव	श्री मुनि कान्तिसागर	६)
१३.	खोजकी पगडण्डियाँ	श्री मुनि कान्तिसागर	४)
१४	चौलुक्य कुमारपाल	श्री लक्ष्मीशङ्कर व्यास	४)
१५.	कालिदासका भारत [भाग१-२]	श्री भगवतशरण उपाध्याय	८)
१६	हिन्दी जैन साहित्य-परिशीलन १-२	श्री नेमिचन्द्र शास्त्री	५)

नाटक

१७	रजत-रश्मि	श्री डा० रामकुमार वर्मा	२॥)
१८	रेडियो नाट्य शिल्प	श्री सिद्धनाथ कुमार	२॥)
१९	पचपनका फेर	श्री विमला लूथरा	३)
२०	और खाई बढती गई	श्री भारतभूषण अग्रवाल	२॥)
२१.	तरकश के तीर	श्रीकृष्ण एम० ए०	३)

ज्योतिष

२२.	भारतीय ज्योतिष	श्री नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)
२३.	करलक्खण [सामुद्रिकशास्त्र]	प्रो० प्रफुल्लकुमार मोदी	।।।)

कहानियाँ

२४.	संघर्षके बाद	श्री विष्णु प्रभाकर	३)
२५.	गहरे पानी पैठ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
२६.	आकाशके तारे : धरतीके फूल	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२)
२७.	पहला कहानीकार	श्री रावी	२॥)
२८.	खेल-खिलौने	श्री राजेन्द्र यादव	२)
२९.	अतीतके कम्पन	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)
३०.	जिन खोजा तिन पाइयाँ	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
३१.	नये बादल	श्री मोहन राकेश	२॥)
३२.	कुछ मोती कुछ सीप	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
३३.	कालके पंख	श्री आनन्दप्रकाश जैन	३)
३४.	नये चित्र	श्री सत्येन्द्र शरत्	३)
३५.	जय-दोल	श्री अज्ञेय	३)

उपन्यास

३६.	मुक्तिदूत	श्री वीरेन्द्रकुमार एम० ए०	५)
३७.	तीसरा नेत्र	श्री आनन्दप्रकाश जैन	२॥)
३८.	रक्त-राग	श्री देवेशदास	३)
३९.	संस्कारोंकी राह	राधाकृष्ण प्रसाद	२॥)

संस्मरण, रेखाचित्र

४०.	हमारे आराध्य	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४१.	संस्मरण	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
४२.	रेखाचित्र	श्री बनारसीदास चतुर्वेदी	४)
४३.	जैन जागरणके अग्रदूत	श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

सूक्तियाँ

४४.	ज्ञानगङ्गा [सूक्तियाँ]	श्री नारायणप्रसाद जैन	६)
४५	शरत्की सूक्तियाँ	श्री रामप्रकाश जैन	२)

राजनीति

४६	एशियाकी राजनीति	श्री परदेशी साहित्यरत्न	६)

निबन्ध, आलोचना

४७	जिन्दगी मुसकराई	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४)
४८.	सस्कृत साहित्यमे आयुर्वेद	श्री अत्रिदेव 'विद्यालङ्कार'	३)
४९	शरत्के नारी-पात्र	श्री रामस्वरूप चतुर्वेदी	४॥)
५०	क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	श्री रावी	२॥)
५१	बाजे पायलियाके घुँघरू	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	४)
५२	माटी हो गई सोना	श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'	२)

दार्शनिक, आध्यात्मिक

५३	भारतीय विचारधारा	श्री मधुकर एम० ए०	२)
५४	अध्यात्म-पदावली	श्री राजकुमार जैन	४॥)
५५	वैदिक साहित्य	श्री रामगोविन्द त्रिवेदी	६)

भाषाशास्त्र

५६	सस्कृतका भाषाशास्त्रीय अध्ययन	श्री भोलाशकर व्यास	५)

विविध

५७	द्विवेदी-पत्रावली	श्री बैजनाथ सिंह 'विनोद'	२॥)
५८	ध्वनि और सगीत	श्री ललितकिशोर सिंह	४)
५९.	हिन्दू विवाहमें कन्यादानका स्थान	श्री सम्पूर्णानन्द	१)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी